क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन

(शोध प्रबन्ध)

डॉ. मनीषा शुक्ला

मनीषा प्रकाशन एवं शोध विवेक संस्था
वाराणसी, उ.प्र. (भारत)

प्रकाशक : मनीषा प्रकाशन एवं शोध विवेक संस्था
वाराणसी, उ.प्र. (भारत)

© : डॉ. मनीषा शुक्ला

संस्करण : प्रथम, १ जुलाई २००७

दूरभाष : ९९३५७८४३८७
९४१५२८४५८४

मूल्य : ४०० रुपये

Kshatrapaticharitam Mhakavya ka
Samikshatamak Addhyayan
by
Dr. Maneesha Shukla

समर्पित

मेरे जीवन के छः अमूल्य वर्षो, (सन् २००१-२००७) को
अपने आशीष से सिञ्चित कर, उसे नवीन दिशा देकर,
अद्‌भुत शिखर की ओर प्रेषित करने वाले
डॉ. विवेक पाण्डेय एवं **डॉ. माधवी पाण्डेय**
को सादर एवं हार्द समर्पित है यह शोध प्रबन्ध

आमुख

संस्कृत काव्यशास्त्र की मान्यता के अनुसार महाकाव्य का नायक इतिहास कथोद्भूत होना चाहिये और ऐसा न हो सका तो उसे अवश्य ही सदाश्रित होना चाहिये। यह निर्देश आपाततः काव्य के 'कान्तासम्मित उपदेश' रूप प्रयोजन की चरितार्थता की ओर संकेत करता है, जिसमें नायक और कथा-दोनों की प्रसिद्धि बिना किसी विचिकित्सा के सहृदय सामाजिक को **'रामादिवत् वर्तितव्यम् न रावणादिवत्'** के संदेश को सहज ही अधिगत कराता जाता है। प्रसिद्ध इतिवृत्ताश्रित होते हुये भी एक कथा दूसरे कथा की पुनरावृत्ति नहीं होती और फिर चर्वितचर्वणा में आस्वादनीयता रह भी कहाँ सकती है? कुन्तक ने सही ही कहा है-

''निरन्तर रसोद्गारगर्भसन्दर्भनिर्भराः।

गिरः कवीनां जीवन्ति न कथामात्रमाश्रितः।

(कवियों की वाणी केवल कथा पर ही आश्रित होकर नहीं, अपितु निरन्तर रस का आस्वादन कराने वाले प्रसङ्गों के अतिशय से मुक्त होकर जीवित रहती है।)

ऐसी स्थिति में प्रसिद्ध इतिवृत्ताश्रितता का भला क्या प्रयोजन? इसका समाधान 'आनन्द' को ही परमप्रयोजन मानने वाले आनन्दवर्धन ने बड़ी ही कुशलता से दिया है। रस का परम उपनिषद् औचित्य का निर्वाह है और इस औचित्य निर्वहन में प्रसिद्ध इतिवृत्तता तथा प्रख्यात नायकत्व से कवि को कहीं भी संदेह की स्थिति में नहीं रहना होता है। **''अतएव च भरते प्रख्यातवस्तुविषयत्वं प्रख्यातोदात्त नायकत्वं च नाटकस्या वश्यकर्त्तव्य-तयोपन्यस्तम्। तेन हि नायकौचित्यानौचित्यविषये कविर्न व्यामुह्यति। यस्तूत्पाद्य वस्तु नाटकादि कुर्यात्, तस्याप्रसिद्धानुचितनायक- स्वभाववर्णने महान् प्रमादः।''** (ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत)

आनन्दवर्धन का स्पष्ट मत है कि कवि का संरम्भ रस ही होता है मात्र इतिवृत्त का उल्लेख तो इतिहास के ग्रन्थों से भी हो जाता है **नहि कवेरितिवृत्तमात्रनिर्वहणेन किञ्चित् प्रयोजनम् इतिहासादेव तत्सिद्धेः।** (ध्वन्यात्नोक)। इस पृष्ठभूमि में ऐतिहासिक महाकाव्यों की समीक्षा विशेष रूप से ध्यातव्य है। श्री उमाशंकर शर्मा ने अपने महाकाव्य 'क्षत्रपतिचरितम्' में ऐतिहासिकता के निर्वहन के साथ काव्य के अन्तस्तत्त्व रस की अजस्र स्रोतस्विनी को कहीं बाधित नहीं होने दिया है। चरित नायक के रूप में शिवाजी का चरित्र एक ओर राष्ट्र प्रेम का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर मातृशक्ति की अपरिमेय महिमा को ख्यापित करता है। जीजाबाई के विचारों का प्रतिफलित रूप शिवाजी की अदम्य शक्ति और साहस की गाथा है। ऐतिहासिकता सहृदय सामाजिक को तभी आकृष्ट करती है जब कवि अपने मानुष मात्र को दिव्यकोटि में रूपान्तरित नहीं कर देता। कवि ने शिवाजी के चरित्र में इस मानवीय सम्भावना का पूर्ण स्पर्श प्रदान कर इतिवृत्त की रोचकता को बनाये रखा है। इस महाकाव्य में शिवाजी के चरित्र के माध्यम से कवि ने राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रीय एकता के प्रति कटिबद्धता, राष्ट्र के लिये आत्मोत्सर्ग की तत्परता, अनवरत उद्योगपरता आदि लक्षित किया है। स्वातन्त्रोत्तर भारत में लिखे गये इस महाकाव्य में स्वतन्त्रता की प्रप्ति तो महान् लक्ष्य के रूप में निरूपित है ही साथ ही संकल्प की महती शक्ति और उद्योग के द्वारा स्वतंत्रता की रक्षा प्रमुख ध्येय के रूप में निर्दिष्ट है, इसके लिये कवि ने क्षेत्रीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता से ऊपर उठकर अखण्ड राष्ट्र का स्वप्न चरितार्थ करने की बात कही है।

डॉ. मनीषा शुक्ला ने इस ग्रन्थ का विधिवत् आलोड़न किया है और उसके विविध पक्षों की यथेष्ठ समीक्षा प्रस्तुत की है। महाकाव्य के साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक महत्त्व के बिन्दुओं का रेखाङ्कित करने के साथ-साथ समसामयिक सन्दर्भ में उसकी प्रासंगिकता पर भी प्रकाश डाला है। समसामयिक सन्दर्भों से निरपेक्ष काव्य युगान्तकारी प्रभाव डालने में असमर्थ होता है। डॉ. मनीषा शुक्ला के उद्योग की मैं सराहना करती हूँ और यह आशा करती हूँ कि वह अनवरत सरस्वती की अमन्द साधना में लगी रहेंगी।

विभारानी दुबे
उपाचार्य, संस्कृत
महिला महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध का विषय एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक महाकाव्य 'क्षत्रपतिचरितम्' है। यह महाकाव्य श्री उमाशंकर शर्मा 'त्रिपाठी' जी के द्वारा उन्नीस (१९) सर्गों में निबद्ध है। इस महाकाव्य पर उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दिया जाने वाला 'कालिदास पुरस्कार' प्राप्त हुआ है।

इस महाकाव्य में 'त्रिपाठी' जी ने मुख्यतः दो ही घटनाओं का वर्णन किया है सर्ग ५ से ९ तक अफजल खान का आतंक, युद्ध एवं उसकी समाप्ति का वर्णन एवं सर्ग १२ से १५ तक शिवाजी का आगरा प्रस्थान, नजरबन्द रहना एवं वहाँ से सकुशल अपने राज्य में लौटना वर्णित है। अन्य घटनाओं का वर्णन या तो इन घटनाओं की भूमिका के रूप में अथवा इनके परिवृंहण के रूप में किया गया है।

संक्षेप में देखा जाय तो प्रथम सर्ग में कवि ने आत्मनिवेदन किया है, द्वितीय सर्ग में भारत वर्णन है, तृतीय सर्ग में शिवाजी के विजय का वर्णन है, चतुर्थ सर्ग में स्वतन्त्रता देवी द्वारा शिवाजी के समक्ष भारत की भूत एवं वर्तमान स्थितियों का वर्णन है, पञ्चम सर्ग में बीजापुर में शिवाजी के विरुद्ध मन्त्रणा का वर्णन है, षष्ठ सर्ग में ऋतु वर्णन है, सप्तम सर्ग में सैनिक अभियान पर विचार किया गया है, अष्टम सर्ग में 'अफजल खान' के वध का उल्लेख है, नवम में 'वाजी प्रभु देशपाण्डे' की गाथा वर्णित है, दशम सर्ग में शिवाजी द्वारा दिल्ली का सफल प्रतिरोध वर्णित है, एकादश सर्ग 'गुरु समर्थ द्वारा शिष्य शिवाजी की परीक्षा' पर आधृत है, द्वादश में आमेर-नरेश मिर्जा राजा जयसिंह तथा शिवाजी के संघर्षों का वर्णन है, त्रयोदश सर्ग में हास-परिहास का वर्णन है, चतुर्दश सर्ग में शिवाजी का शत्रु नगरी में कैद होना वर्णित है, पञ्चदश सर्ग में शिवाजी का दक्षिण गमन (वृन्दावन, प्रयाग, वाराणसी, विन्ध्याचल, महाराष्ट्र) वर्णित है, षोडश सर्ग में 'कोण्डना' दुर्ग का विजय वर्णित है, सप्तदश सर्ग में शिवाजी द्वारा भेजे गये, स्मृति-पत्र का वर्णन है, अष्टादश सर्ग में शिवाजी के अभिषेक का वर्णन है, एकोनविंश सर्ग में क्षत्रपति की राज्यपद्धति का वर्णन है।

श्री उमाशङ्कर शर्मा द्वारा रचित महाकाव्य पर कालिदास के रघुवंश के वर्णन-क्रम का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। कालिदास ने जिस प्रकार मेघदूतम् में मेघ की रामगिरि से अलकापुरा तक की यात्रा वर्णन के द्वारा अथवा रघुवंश महाकाव्य में रघु के दिग्विजय वर्णन के द्वारा भारत का स्वरूप वर्णन किया है प्रकृत महाकाव्य में कवि ने भी इसी प्रकार भारत वर्णन किया है।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध छः अध्यायों में विभक्त है–

शोधप्रबन्ध की भूमिका का आरम्भ प्राचीन आचार्यों के महाकाव्य लक्षण की चर्चा के साथ हुआ है, साथ ही साहित्यदर्पण से महाकाव्य का लक्षण भी दिया गया है। इसके पश्चात् क्रमशः महाकाव्य के उद्भव एवं विकास की भी चर्चा की गई है। कालिदास के पूर्ववर्ती लुप्त महाकाव्यों पर भी दृष्टि डाली गई है तदुपरान्त अभ्युत्थान युग एवं ह्रास युग के महाकाव्यों पर भी विचार किया गया है। अन्त में आधुनिक युग के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के महाकाव्यों की गणना भी प्रस्तुत की गयी है।

प्रथम अध्याय तीन भागों में विभाजित है।

प्रथम भाग में डॉ० उमाशङ्कर शर्मा का जीवन परिचय दिया गया है। जीवन परिचय के अन्तर्गत कवि का जन्म, माता-पिता एवं पूर्वज, प्रारम्भिक अवस्था, शिक्षा-दीक्षा, नौकरी, परिवार, प्राप्त पुरस्कार, कृतियों एवं अन्तिम अवस्था (मृत्यु) का वर्णन किया गया है।

द्वितीय भाग में शिवाजी विषयक ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। शिवाजी एक ऐतिहासिक चरित्र नायक हैं एवं संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक चरित्र नायक को लेकर लिखी गई रचनाएँ अल्प मात्रा में हैं; किन्तु संस्कृत साहित्य में शिवाजी-विषयक अनेक काव्य, नाटक, गद्य साहित्य पाये जाते हैं। प्रस्तुत अध्याय में शिवाजी-विषयक कुछ महाकाव्यों, गद्यकाव्यों, खण्डकाव्यों, नाटकों एवम् अवान्तर ग्रन्थों का नाम दिया गया है साथ ही शिवभारत, शिवराजाभिप्रयोग, श्येनजातिनिर्णय, शिवार्कोदय, राजव्यवहारकोश, करणकौस्तुभ, श्रीशिव-राजाभिषेककल्पतरु, बुधभूषण, पर्णालपर्वतग्रहणाख्यानम्, राधामाधव-विलासचम्पू, शिवराज्याभिषेक, शिवाजीविजयम्, छत्रपतिसाम्राज्यम्,

शिवराज्योदय और शिवराजविजय आदि रचनाओं का संक्षिप्त परिचय भी प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय भाग में महाकाव्य के लक्षण के निकष पर क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य की परीक्षा की गयी है।

प्रस्तुत शोध के द्वितीय अध्याय में 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य के १९ सर्गों की कथा सर्ग क्रमानुसार दी गई है। कवि उमाशंकर शर्मा के आत्म निवेदन के साथ इस अध्याय का आरम्भ हुआ है। मध्य में शिवाजी का जन्म, अफजल खान के साथ युद्ध, दुर्ग विजय इत्यादि प्रसङ्ग आये हैं। शिवाजी के राज्याभिषेक एवं उनके शासन के वर्णन के साथ इस अध्याय की कथा समाप्त हुई है।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के तृतीय अध्याय में क्रमशः मराठों के उत्कर्ष में सहायक निम्नलिखित तथ्यों का उल्लेख है– १. महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थितियाँ, २. भाषा की एकता, ३. वीर मावले लोग। इसके बाद मराठा-इतिहास में शिवाजी का योगदान, शिवाजी के विनाश की बीजापुर में मन्त्रणा, शिवाजी का ऐतिहासिक मूल्यांकन, शायिस्ताखान मुगल सेनापति का पराभव, सूरत पर आक्रमण, औरंगजेब का राजा जयसिंह को शिवाजी के विरुद्ध भेजना, कोण्डना दुर्ग विजय इत्यादि प्रसङ्ग वर्णित हैं।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय महाकाव्य के नायक के चरित्र-चित्रण के साथ आरम्भ हुआ है। साथ ही महाकाव्य के अन्य पात्र यथा– अफजल खान, कृष्णाजी भास्कर, गोपीनाथ, बाजीप्रभु देशपाण्डे, शाइस्ताखान, समर्थ गुरु बाबा रामदास, आमेर नरेश राजा जयसिंह, औरंगजेब, जीजाबाई, तानाजी मालसुरे के चरित्र चित्रण भी संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के पञ्चम अध्याय में महाकाव्य का साहित्यिक दृष्टि से परिशीलन किया गया है, जिसमें रस, छन्द, अलङ्कार एवं महाकाव्य में वर्णित प्राकृतिक-चित्रण का वर्णन किया गया है। छन्द की दृष्टि से महाकाव्य के समस्त सर्गों के छन्दों का वर्णन है। अलङ्कार के अध्ययन की दृष्टि से कुछ अलङ्कारों यथा– उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनन्वय, अतिशयोक्ति इत्यादि अलङ्कारों का वर्णन किया गया है। प्राकृतिक-चित्रण की दृष्टि से महाकाव्य के कुछ प्राकृतिक सजीव दृश्यों का वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के षष्ठ अध्याय में शिवाजी के काल की सामाजिक व्यवस्था का वर्णन किया गया है। सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं पर संक्षिप्त विचार प्रस्तुत किया गया है– वर्णव्यवस्था, परिवार, नारी का स्वरूप, वेश्यावृत्ति, बहुविवाह प्रथा, विवाह संस्कार, मनोरञ्जन, स्वप्नमान्यता, अतिथिसेवा, वेद का महत्त्व, धर्म, सैनिक अनुशासन और वर्ग संघर्ष का अभाव।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध का परिशिष्ट तीन भागों में विभक्त है–

इसके प्रथम भाग में क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में आये हुए प्रमुख स्थलों के नाम प्रस्तुत किये गये हैं। इन स्थलों के महत्त्व को भी दृष्टिगत कराया गया है।

इसके द्वितीय भाग में महाकाव्य में आये हुए प्रमुख व्यक्तियों एवं पात्रों का नाम उल्लिखित है। साथ ही यह भी बताया गया है कि इनमें से कुछ व्य क्ति महाकाव्य के प्रमुख पात्र हैं एवं अन्य व्यक्तियों का उल्लेख महाकाव्य के श्लोकों में प्रसङ्गवश आया है।

इसके तृतीय भाग में महाकाव्य के शिक्षाप्रद श्लोकों का संग्रह प्रस्तुत किया गया है।

अन्त में उपसंहार एवं सहायक ग्रन्थ की सूची संलग्न है।

*****

कृतज्ञता-ज्ञापन

बाबा विश्वनाथ की कृपा से जब आज मेरा शोध-कार्य ग्रन्थ के रुप में प्रकाशित हो चुका है तब समझ में ही नहीं आ रहा कि मैं किन शब्दों में उन सभी को कृतज्ञता-ज्ञापित करुँ जिनके आशीर्वाद एवम् उत्साहवर्धन के फलस्वरूप यह शोध-कार्य ग्रन्थाकार ले सका।

सर्वप्रथम मैं अपनी शोध-निर्देशिका **डॉ० विभारानी दूबे** के प्रति नतमस्तक हूँ जिनके स्नेहपूर्ण सहयोग से यह शोध-कार्य ग्रन्थ रुप में प्रकाशित हो सका। उन्होंने न केवल वैषयिक ज्ञान दिया अपितु मेरा प्रत्येक दृष्टिकोण से उत्साहवर्धन किया जिसे विस्मृत कर पाना मेरे लिए असम्भव है।

इसी क्रम में संस्कृत-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सभी गुरुजनवृन्दों के प्रति मैं आभार व्यक्त करना चाहती हूँ। गुरुवर **प्रो० श्रीनारायण मिश्र** महोदय (भूतपूर्व 'डीन' कला सङ्काय) की मैं सदैव आभारी रहूँगी जिन्होंने शोध-कार्य में आने वाली (विभागीय) सभी बाधाओं को दूर कर मेरे शोध-कार्य की निर्विघ्न समाप्ति में योगदान दिया। **प्रो० जयशङ्करलाल त्रिपाठी**, विभागाध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, **प्रो० के०पी० सिंह**, **डॉ० रामायण प्रसाद द्विवेदी** जी की भी मैं सदैव आभारी रहूँगी जिनके समय-समय पर मार्गदर्शन से शोध-कार्य कुशलतापूर्वक पूर्ण हो सका। संस्कृत-विभाग के अन्य सभी गुरुजनों के भी सहयोग की मैं सदैव ऋणी रहूँगी जिन्होंने व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप में मुझे सहयोग प्रदान किया।

यहाँ विशेष रूप से संस्कृत साहित्य के पारदृश्वा विद्वान् अपने परम पूज्य पिता **डॉ. महेन्द्र शुक्ल** जिन्होंने मुझे संस्कृत शिक्षा दी, प्रतिदिन मेरे ज्ञान में नवीन श्रीवृद्धि करने के साथ ही क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के अनेकानेक बिन्दुओं पर विशेष दिशानिर्देश दिया तथा उन्हीं के आढ्य ज्ञान एवं सतत आशीर्वाद से यह कार्य पूर्ण हो सका है; आपके प्रति आभार प्रदर्शन असंगत है अतः सारस्वत चरणों में प्रणमन।

डॉ. विवेक पाण्डेय प्रवक्ता, हण्डिया पी.जी. कॉलेज, इलाहाबाद जो मेरे शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने के उपरान्त मिले, यह शोध प्रबन्ध टंकण एवं बाइण्ड होने उपरान्त सर्वप्रथम उन्होंने ने ही देखा (१९ दिसम्बर २००१), जब मैंने यह शोध प्रबन्ध उन्हें दिखाया तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि इतनी छोटी उम्र में मैंने यह शोध कार्य (मात्र २४ वर्ष) पूर्ण किया; उन्होंने इस कार्य पर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की; किन्तु संस्कृत साहित्य के विद्वान् होने के नाते वे इस प्रबन्ध की कुछ कमियों को देखते हुए मौन ही रह गये; किन्तु मैंने उनकी मौन भाषा का तात्पर्य समझते हुए उनसे निवेदन किया कि जब मैं इस प्रबन्ध को ग्रन्थ रुप में प्रकाशित कराऊँ तो इसकी कमियों को दूर करने की कृपा करें। मुझे यह कहते हुए कोई संकोच नहीं कि यह ग्रन्थ आद्यन्त उनके द्वारा परिष्कृत एवं संशोधित किया गया है। मैंने इतने शीघ्र इस प्रबन्ध के ग्रन्थाकार होने की कल्पना तक न की थी; यह ग्रन्थ आप की प्रेरणा एवं उत्साहवर्धन का प्रतिफल है। मुझे आपका आशीर्वाद मिलता रहें जिससे अपनी मूढ़ अवस्था में मैं अनेक ग्रन्थों को प्रकाशित कर संस्कृत जगत को लाभान्वित करा सकूँ, अतः सारस्वत प्रतिभा सम्पन्न डॉ. विवेक पाण्डेय जी के दीर्घायुष्य की ईश्वर से कामना करती हूँ, उनकी कीर्ति से संस्कृत जगत प्रकाशित हो।

विशेषाधर्मण्य मेरी बड़ी बहन **डॉ. माधवी पाण्डेय**, (रीडर राजनीति विज्ञान, सावित्री बाई फुले राजकीय महाविद्यालय, चकिया, चन्दौली) आपने शोध कार्य की अवधि में सहयोग प्रदान किया, इस प्रबन्ध के छन्दों का निर्णय करने में आप पूर्ण सहायक रहीं। अपनी सरल, सहज एवं प्रिय बहन से मुझे शैक्षिक जीवन में अनवरत योगदान प्राप्त हुआ, इसके लिए मात्र आभार व्यक्त कर देना तुच्छता होगी, अतः ईश्वर से प्रार्थना है कि ईश्वर उन्हें जीवन में सफलता की ऊँचाइयाँ दे एवं उन्हें देख हम सभी छोटों उनसे आगे बढ़ने की प्रेरणा लें।

बिना पारिवारिक जनों की प्रेरणा या योगदान के किसी भी कार्य की सम्पूर्ति असंभव है अतः मैं अपनी **माँ श्रीमती सत्या शुक्ला** एवं पारिवारिक जनों (**डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र**, **डॉ. अंशुमाला मिश्रा**, **श्री अवनीश शुक्ल**, **श्रीमती विजयलक्ष्मी, श्री महेश्वर शुक्ल अनुश्री, अमृताश, अन्वीक्षा एवं विमन्यु**) के प्रति आभारी हूँ।

यह प्रबन्ध मूर्त रूप में आप सभी के समक्ष उपस्थित है इसके लिए मैं वसुन्धरा ग्राफिक्स के संरक्षक **डॉ. सत्येन्द्र शर्मा** को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ, एवं पुस्तक के सुरुचिपूर्ण कम्पोजिंग के टाइपिस्ट **राजबाबू मौर्य** तथा सरिता कम्प्यूटर्स, **अजय चौहान** के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करती हूँ। स्खलिति मानव प्रवृत्ति है, अतः यत्रकुत्रचित दोष दर्शन हो तो उसका स्वागत है, इन्हीं उद्‌गारों साहित यह ग्रन्थ आपके समक्ष प्रस्तुत है-

मनीषा शुक्ला

विषयानुक्रमणिका

		पृष्ठ नं०
	प्राक्कथन	
	कृतज्ञता-ज्ञापन	
	भूमिका	१-२८
१.	कवि परिचय, शिवाजी विषयक साहित्य एवं क्षत्रपतिचरितम् का महाकाव्यत्व	१९-३८
२.	क्षत्रपतिचरिम् महाकाव्य का कथानक	३९-९०
३.	मराठा शक्ति का उत्कर्ष (१६२७-१७०१ ई०)	९१-१२०
४.	महाकाव्य के नायक शिवाजी का चरित्र-चित्रण	१२१-१५४
५.	साहित्यिक परिशीलन	१५५-२१०
६.	समकालीन सामाजिक व्यवस्थायें	२११-२२८
परिशिष्ट		
क.	प्रमुख स्थलों के नाम	२२९-२३१
ख.	प्रमुख व्यक्तियों और महाकाव्य के पात्रों के नाम	२३२-२३४
ग.	शिक्षाप्रद श्लोक	२३५-२५६
	उपसंहार	२५७-२६२
	सहायक ग्रन्थ-सूची	२६३-२७०

*****

भूमिका

भूमिका

प्राचीन काल में अनेक ऐसे लक्षणकार हुए, जिन्होंने महाकाव्य का लक्षण अपने-अपने मतानुसार प्रस्तुत किया। महाकाव्य के लक्षणकारों में भामह (७०० ई०), दण्डी (७वीं शताब्दी), विश्वनाथ (१३५० ई०) का नाम सर्वथा दृष्टिगोचर होता है जिन्होंने क्रमशः भामहालङ्कार (१/१८-२३), काव्यादर्श (१/१४-२२) एवं साहित्यदर्पण (६/३१५ से ३२५) में महाकाव्य के लक्षण को प्रस्तुत किया। किन्तु साहित्यदर्पण में प्राप्त महाकाव्य का लक्षण सर्वाङ्गीण एवं व्यापक है। विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का लक्षण है–

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा वहवोऽपि वा।।
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः।।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।।
आदौ नमस्क्रियाऽऽशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुण कीर्तनम्।।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।।[1]

अर्थात् १. यह सर्गों में विभक्त होता है, २. इसका नायक देवता, कुलीन क्षत्रिय या एक वंशज कुलीन अनेक राजा होते हैं,

३. शृङ्गार, वीर और शान्त रस में से कोई एक प्रधान रस होता है और अन्य उसके सहायक, ४. इसमें सभी नाटकीय सन्धियाँ होती हैं, ५. इसका कथानक ऐतिहासिक होता है या किसी सज्जन व्यक्ति से सम्बद्ध, ६. इसमें चतुर्वर्ग– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन होता है और उनमें से किसी एक फल की प्राप्ति का वर्णन होता है, ७. प्रारम्भ में देवादि को नमस्कार, आशीर्वाद या वस्तु निर्देश होता है, कहीं दुर्जन निन्दा और सज्जन प्रशंसा भी रहती है, ८. प्रत्येक सर्ग में एक छन्द वाले पद्य रहते हैं; किन्तु अन्त में छन्द परिवर्तन हो जाता है, ९. इसमें आठ से अधिक सर्ग होते हैं, जो न बहुत छोटे और न बड़े होते हैं, १०. कहीं विभिन्न छन्दों वाले सर्ग भी होते हैं, ११. सर्ग के अन्त में भावी कथा का सङ्केत होता है, १२. महाकाव्य में इनका वर्णन रहता है– सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष (गोधूलिवेला), अन्धकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, युद्ध, प्रस्थान, विवाह, मन्त्र, पुत्र, उदय (उत्थान) आदि (दण्डी ने महाकाव्य के अङ्गों को परिभाषित कराने के अनन्तर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर सङ्केत किया है कि यदि उन परिगणित अङ्गों में से किन्हीं अङ्गों की न्यूनता भी हो जावे तो भी काव्य दोष युक्त नहीं माना जाता यदि उपात्त अङ्गों की प्रशंसा काव्यविदों के द्वारा की जाये),[2] १३. ग्रन्थ का नाम कवि, कथानक, नायक या प्रतिनायक के नाम पर रखना चाहिए, १४. सर्गों का नाम वर्णित कथा के आधार पर रखना चाहिए।

महाकाव्य का उद्भव एवं विकास

महाकाव्य का उद्भव ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों, इन्द्र, विष्णु और आदि की स्तुति में प्रयुक्त मन्त्रों तथा नाराशंसी गाथाओं से हुआ है। क्रमशः ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में भी इन आख्यानों का बृहद् रूप मिलता है। आगे चलकर आख्यानों का स्वरूप महाकाव्य के रूप में परिवर्तित हो गया है। परवर्ती काव्यों एवं महाकाव्यों के उपजीव्य ग्रन्थ रामायण एवं महाभारत बने। **मैक्डोनल** ने **महाभारत** को लोकमहाकाव्य, **रामायण** को अनुकृत महाकाव्य और बाद के महाकाव्यों को अलङ्कृत महाकाव्य कहा है।[3]

कालिदास के पूर्ववर्ती लुप्त महाकाव्य

वैयाकरण पाणिनि एक सिद्धहस्त काव्यकार भी थे। उन्होंने **जाम्बवतीविजय** नामक महाकाव्य की रचना की थी जिसमें १८ सर्ग थे। विभिन्न विषयों के प्राचीन-नवीन लगभग ३३ ग्रन्थों में पाणिनी के इस महाकाव्य के सम्बन्ध में सूचना मिलती हैं। व्याडि, पाणिनि के समकालीन थे उन्होंने **बालचरितम्** नामक महाकाव्य लिखा। ''व्याडि के काव्यकार होने की पुष्टि 'अमरकोष' की एक अज्ञातनामा टीकाकार की टीका से होती है। उसमें लिखा है कि 'भट्टिकाव्य' के १२वें सर्ग के सदृश व्याडि के काव्य में भी 'भाषा समावेश' नामक एक भाग या अध्याय था।''[४] महाराज **समुद्रगुप्त** के **कृष्णचरित** में वार्तिककार वररुचि **कात्यायन** को 'स्वर्गारोहण' नामक काव्य का कर्ता बताया गया है। वररुचि काव्य की पुष्टि 'महाभाष्यम्' में दिये श्लोकों से भी होती है।[५] **शार्ङ्गधरपद्धति, सदुक्तिकर्णामृत** एवं **सुभाषितमुक्तावलि** आदि ग्रन्थों के श्लोकों से भी वररुचि के काव्यकार होने के प्रमाण पाये जाते हैं। इसी प्रकार प्राचीन ग्रन्थों से विलुप्त महाकाव्यों के सम्बन्ध में अन्य सूचनायें भी प्राप्त हो सकती हैं।

महाकाव्यों की परम्परा का विकास

महाकाव्यों के उद्भव के क्रम को देखने के पश्चात् हम अभ्युत्थान युग में पहुँचते हैं तो सर्वप्रथम महाकवि **कालिदास** का नाम आता है जिन्हें कुछ ने **बंगाली**, कुछ ने **काश्मीरी** तथा कुछ ने **मालव** सिद्ध करने की चेष्टा की। महाकवि **कालिदास** के जन्म के विषय में विद्वानों में जितना मतभेद है उनकी कृतियों को लेकर उससे कम विवाद नहीं है। **कालिदास** की ६ रचनायें प्रसिद्ध हैं जिनमें **रघुवंश** महाकाव्य, **कुमारसम्भव** (दो आदि तथा अन्त भाग) महाकाव्य अत्यन्त उच्चकोटि के ग्रन्थ हैं। महाकवि **कालिदास** के अनन्तर महाकाव्यों की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले बौद्ध महाकवि **अश्वघोष** जी हैं। **कालिदास** एवम् **अश्वघोष** में से कौन पहले था यह विद्वानों में विवाद का प्रश्न रहा है। संस्कृत-काव्य-परम्परा में **कालिदास** एवम्

अश्वघोष की कृतियाँ अपना-अपना विशेष महत्त्व रखती हैं। **अश्वघोष** की प्रतिभा का परिचय देने वाले दो महाकाव्य अत्यन्त प्रसिद्ध हैं जिनमें सर्वप्रथम नाम **'बुद्धचरित'** का आता है। **सौन्दरनन्द** भी **अश्वघोष** की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है।

महाकवि **अश्वघोष** के बाद महाकाव्यों की परम्परा कुछ शताब्दियों तक विच्छिन्न रही। **बुद्धघोष** ने एक दस सर्गात्मक **पद्यचूड़ामणि** नामक काव्य की रचना की। पालि लेखकों एवं बौद्ध धर्म के व्याख्याकारों में **नागसेन, बुद्धदत्त, बुद्धघोष, धम्मपाल** का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा।[६] **बुद्धघोष** के ग्रन्थ **विसुद्धिमग्ग**, **महावंश**, **अट्ठकथाओं** पर कालिदास एवम् अश्वघोष की कृतियों का प्रभाव है।

बुद्धघोष के बाद महाकवि **भीम** (या भीमक) हुए, जिनकी कृति **रावणार्जुनीय** या **अर्जुनरावणीय** अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिसका प्रभाव **भट्टि** के **रावणवध** एवं **हलायुध** के **कविरहस्य** पर पड़ा।

भर्तृमेंठ ने **हयग्रीववध** नामक महाकाव्य लिखा, जो आज उपलब्ध नहीं है। सूक्ति संग्रह एवं सुभाषित-ग्रन्थों के रूप में उसके बहुत से श्लोक प्राप्त होते हैं। राजशेखर का कथन है कि ''पुराकाल का बाल्मीकि ही अवान्तर में **भर्तृमेंठ, भर्तृमेंठ** से **भवभूति** एवं **भवभूति** से **राजशेखर** नाम से हुए''।[७]

संस्कृत महाकाव्य-परम्परा में सर्वप्रथम सफल प्रतिनिधित्व महाकवि **कालिदास** एवम् **अश्वघोष** ने किया है उसके बाद उस परम्परा का निर्वाह जितना **भारवि** की रचनाओं में पाया जाता है उतना अन्य किसी की रचनाओं में नहीं। भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' नामक महाकाव्य की रचना की जिसे बृहत्त्रयी की श्रेणी में भी रखा जाता है। अर्थगौरव भारवि की सबसे बड़ी विशेषता है।

महाकाव्यों के क्षेत्र में **भारवि** के पश्चात् **भट्टि** का क्रम आता है। महाकवि **भट्टि** ने **भट्टिकाव्य** या **रावणवध** की रचना की।

कुमारदास, **भट्टि** के अनुवर्ती महाकवि हैं इन्होंने 'जानकीहरण' नामक २५ सर्गात्मक महाकाव्य की रचना की जिसके अब १५ सर्ग ही उपलब्ध हैं।

कुमारदास के अनन्तर महाकाव्यों की परम्परा को 'माघ' ने समृद्ध किया। महाकवि माघ की अमरकृति 'शिशुपालवध' महाकाव्य है।

महाकाव्यों की परम्परा में 'माघ' के बाद 'रत्नाकर' का नाम आता है। ये काश्मीर के कवि थे। इनके महाकाव्य का नाम 'हरविजय' है। इसमें ५० सर्ग एवं ४,३२० के लगभग श्लोक हैं। संस्कृत के महाकाव्यों में यह बृहद् महाकाव्य होने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

काश्मीर के ही एक अन्य कवि हुए जिनका नाम **शिवस्वामी** था, जिन्होंने **कफ्फिणाभ्युदय** नामक महाकाव्य की रचना की थी।

इसी क्रम में काश्मीर के **शतानन्द** के पुत्र **अभिनन्द** हुए उन्होंने ३६ सर्गों का **रामचरित** नामक महाकाव्य लिखा।

काश्मीर में एक **शंकुक** नामक कवि भी हुए, जो **नवम शताब्दी** के थे। महाकवि **शंकुक मम्मट** एवम् **उत्पलक** के समकालीन विद्वान् थे। इन दोनों भाइयों के महायुद्ध के वर्णन में **विद्वान्मानसिंधु** ख्यात से सुशोभित महाकवि **शंकुक** ने **भुवनाभ्युदय** नामक महाकाव्य की रचना की थी।[८]

महाकाव्यों की परम्परा में काव्यशास्त्रीय **क्षेमेन्द्र** के **दशावतारचरित** का महत्त्वपूर्ण स्थान है। **क्षेमेन्द्र** के ही समकालीन (१०२८ से १०६३ ई०) काश्मीर के महाकवि **मंखक** हुए। इन्होंने **श्रीकण्ठचरित** नामक महाकाव्य लिखा।

मंखक के बाद महाकाव्यों के क्षेत्र में महाकवि **हरिश्चन्द्र** का नाम उल्लेखनीय है। संस्कृत-साहित्य में **हरिश्चन्द्र** नामक अनेक ग्रन्थकार हुए है। एक हरिश्चन्द्र ने **जीवनधरचम्पू** की रचना **नवम शताब्दी** में की थी; किन्तु इस **हरिश्चन्द्र** से जैन महाकवि **हरिश्चन्द्र** का कोई सम्बन्ध नहीं है। इन्होंने 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य लिखा जिसका जैन साहित्य में अत्यन्त सम्माननीय स्थान है। इतिहासकारों ने इनका स्थितिकाल ११वीं शताब्दी निर्धारित किया है।[९]

१२वीं शताब्दी में महाकाव्यों की शृंङ्खला को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए **हेमचन्द्र** नामक कवि ने **द्वयाश्रयकाव्य** और **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित**

नामक दो महाकाव्य लिखे। इन्हीं के समकालीन **माधवभट्ट**, **चण्डकवि**, **बिल्वमंगल** कवि भी हुए।

माधवभट्ट कवि ने **रामायण** और **महाभारत** के आधार पर १३ सर्ग का **राघवपाण्डवीय** नामक महाकाव्य लिखा। इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए **हरिदत्त सूरि** ने **राघवनैषधीय**, **चिदंबर** ने **राघवपाण्डवीययादवीय**, **विद्यामाधव** ने **पार्वती रुक्मिणीय**, **वेंकटाध्वरि** ने **यादवराघवीय** नामक महाकाव्य की रचना की। चण्डकवि **बिल्वमंगल** ने १२वीं शताब्दी में **पृथ्वीराजविजय** नामक महाकाव्य लिखा, यह अष्टसर्गात्मक अपूर्ण महाकाव्य है।

१२वीं शताब्दी में ही **वाग्भट** (जैनकवि) ने 'नेमिनिर्माण' नामक महाकाव्य की रचना की। इतिहास ग्रन्थों में **वाग्भट** नामक चार ग्रन्थकारों का उल्लेख है। ये चार **वाग्भट** क्रमशः **अष्टाङ्गहृदय** कर्ता, **नेमिनिर्वाण** कर्ता, **वाग्भटालङ्कार** कर्ता, **काव्यानुशासन** कर्ता हैं। **नेमिनिर्वाण** नामक १५ सर्गात्मक महाकाव्य में जैन कवि **वाग्भट** ने जैन तीर्थङ्कर भगवान् **नेमिनाथ** के चरित्र का वर्णन किया है।

१२वीं शताब्दी में लिखे गये महाकाव्यों की परम्परा **श्रीहर्ष** के **नैषधचरित** के साथ अवसान को प्राप्त होती है। यह वृहत्त्रयी की श्रेणी में रखा गया तृतीय महाकाव्य है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से महाकाव्यों की लम्बी परम्परा का **अभ्युत्थान युग** (कालिदास से श्रीहर्ष तक) समाप्त होता है। श्रीहर्ष से पूर्व और कालिदास के बाद के द्वादश शतक समग्र संस्कृत-साहित्य की अभूतपूर्व एवम् आशातीत उन्नति के द्योतक शतक हैं।

१३वीं शताब्दी के आरम्भ से १७वीं शताब्दी के अन्त तक ऐतिहासिक दृष्टि से महाकाव्यों की लम्बी परम्परा का ह्रास युग माना जाता है। संस्कृत महाकाव्यों पर ध्यान दिया जाय तो १२वीं शताब्दी तक निम्नकोटि के महाकाव्य के साथ अत्यन्त उच्चकोटि के महाकाव्य भी लिखे गये। इस दृष्टि से यह अच्छी कृतियों का युग माना गया। संस्कृत विद्वानों ने इसे **मध्यकाल** भी माना।[१०]

महाकाव्यों के क्षेत्र में **श्रीहर्ष** के बाद इतने उच्चकोटि के दृष्टिकोण दिखायी नहीं देते। संस्कृत के महाकाव्यकारों की गति आगे क्षीण होती

गई। उसके बाद भी महाकाव्यों का निर्माण बड़ी संख्या में होता रहा; किन्तु उनमें इतनी स्वाभाविकता न आ सकी। महाकाव्यों की इस परम्परा का पर्यवसान **सत्रहवीं शताब्दी** में जाकर होता है।

महाकाव्यों की ह्रास की स्थितियाँ लगभग सत्रहवीं शताब्दी तक बनी रहीं। १३वीं शताब्दी के बाद महाकाव्यों के निर्माण जो भारी गतिरोध रहा वह लगातार बढ़ता ही रहा। १३वीं से १७वीं शताब्दी तक महाकाव्यों के निर्माण में दक्षिण के राजपरिवारों एवं काश्मीरी पण्डितों का योगदान है।

१३वीं शताब्दी के महाकाव्यकारों में पुरी के **कृष्णानन्द** ने १५ सर्गात्मक **सहृदयानन्द** नामक महाकाव्य लिखा। इसी क्रम में काश्मीरी निवासी **जयरथ** कवि ने ३२ सर्गात्मक 'हरचरितचिन्तामणि', (जैनकवि) **अभयदेव** ने १९ सर्गात्मक **जयन्तविजय**, **अमरसिंह** ने ११ सर्गात्मक **सुकृतसंकीर्तन** नामक महाकाव्य की रचना की। इस बीच लिखी गयी ये कृतियाँ हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के रूप में ग्रन्थगारों में सुरक्षित हैं, जिनका अध्ययन कर पाना सर्वसाधारण के लिए दुष्कर है। कुछ कृतियाँ केवल नाममात्र को ही सूची ग्रन्थों में दिखायी देती हैं। इसलिए इनमें से कुछ कृतियाँ भ्रान्तिजनक भी हैं।

१४वीं शताब्दी में **नयनचन्द्र** (१३१० ई०) ने १७ सर्गात्मक 'हम्मीरमहाकाव्य' चौहानवंशीय राजा **हम्मीर** की प्रशंसा में लिखा। **अगस्त्य** कवि ने २० सर्गात्मक 'बालभारत' नामक महाकाव्य लिखा, जो अत्यन्त प्रसिद्ध है। दाक्षिणात्य कवि **वेंकटनाथ** ने २४ सर्गात्मक **यादवाभ्युदय** नामक महाकाव्य लिखा जिस पर **अप्पयदीक्षित** ने टीका लिखी है। १४वीं शताब्दी में **गंगादेवीकृत मथुराविजय** नामक (अपूर्ण) महाकाव्य लिखा गया। **गंगादेवी** का समय १३८० ई० था। **मल्लाचार्य** ने भी १४वीं शताब्दी में 'उदारराघव' नामक एक १८ सर्गात्मक रामायण पर आधारित महाकाव्य लिखा।

१५वीं शताब्दी के महाकाव्यों में **वामनभट्ट बाणकृत** ३० सर्गात्मक **रघुनाथचरित** का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। **वामनभट्ट बाण** ने एक ८ सर्गात्मक **नलाभ्युदय** नामक महाकाव्य भी लिखा था। प्रसिद्ध काश्मीरी विद्वान् **कल्हण** की **राजतरंगिणी** परम्परा में **जोनराज** (१४५० ई०) और **जोनराज** के शिष्य **श्रीवर** ने **जैनराजतरंगिणी** तथा

प्राज्यभट्ट ने **राजाबलिपताका** आदि इतिहास आधारित महाकाव्यों की रचना का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। १५वीं शताब्दी में 'राजनाथ' कवि (१४३० ई० के लगभग) ने १३ सर्गात्मक एक 'सालवाभ्युदय' नामक महाकाव्य की रचना की।

१६वीं शताब्दी के महाकाव्यों में कवि **राजनाथ तृतीय** ने (१५४० ई० के लगभग) २० सर्गात्मक **अच्युतरायाभ्युदय** नामक महाकाव्य लिखा। इसी क्रम में **उत्प्रेक्षावल्लभ** ने ३९ पद्धति (अध्याय) का (अपूर्ण) **भिक्षानाटककाव्य** नामक महाकाव्य लिखा। **रूद्र** कवि ने भी १६वीं शताब्दी में (१५९६ ई०) २० सर्गात्मक **राष्ट्रौढवंश** नामक महाकाव्य लिखा।

१७वीं शताब्दी संस्कृत के महाकाव्य-निर्माण की अन्तिम शताब्दी है। इसमें पहले की अपेक्षा अत्यधिक महाकाव्यों का निर्माण हुआ। **यज्ञनारायण दीक्षित** ने १६ सर्गों में **रघुनाथभूपतिविजय** नामक महाकाव्य में अपने आश्रयदाता की प्रशंसा लिखी। इस महाकाव्य का दूसरा नाम **साहित्य रत्नाकर** भी है। **राजचूणामणि दीक्षित** ने १० सर्गात्मक **रुक्मिणी-कल्याण** नामक महाकाव्य लिखा। **अप्पयदीक्षित** के पौत्र **नीलकण्ठ** ने २२ सर्गों का एक महाकाव्य **शिवलीलावर्णन** लिखा। एक जैन दार्शनिक कवि **मेघविजयगणि** ने १६७१ ई० में ९ सर्गों का **सप्तसन्धान** महाकाव्य लिखा। इस ग्रन्थ के प्रत्येक श्लोक के ७-७ अर्थ निकलते हैं। इस काव्य की प्रेरणा कवि **धनञ्जय** के **द्विसन्धान-पद्धति** के काव्यों से उपलब्ध है। एक अन्य जैनकवि ने १७वीं शताब्दी में १७ सर्गात्मक **हीरसौभाग्य** नामक महाकाव्य लिखा। इसी क्रम में अष्टसर्गात्मक महाकाव्य **जानकीपरिणय** की रचना **चक्र** कवि ने की। इसी प्रकार **अद्वैत** कवि ने (१६०८ ई०) 'रामलिंगामृत', एवं 'मोहन स्वामी' ने (१७५० ई०) 'रामचरित' नामक महाकाव्य लिखा। यह हस्तलिखित है।

इस प्रकार महाकाव्य के उद्भव, अभ्युत्थान एवं ह्रास की विस्तृत परम्परा का परिचय समाप्त होता है।

ऐतिहासिक महाकाव्य

यद्यपि ऐतिहासिक महाकाव्यों की अन्तिम सीमा १७वीं शताब्दी के अन्त तक है;[११] किन्तु इतिहास निर्माण की दृष्टि से हमें १८वीं

से २०वीं शताब्दी तक के महाकाव्यों पर भी ध्यान देना होगा।

ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बद्ध संस्कृत साहित्य में एक बात सर्वथा दृष्टिगोचर होती है कि उनमें ऐतिहासिक तथ्यों की अपेक्षा भाषा सौष्ठव, अलङ्कार, रस इत्यादि को प्रमुखता दी गयी है जबकि आवश्यकता इस बात की थी कि 'तथ्य' स्पष्ट रूप में हमारे समक्ष उपलब्ध होते। फिर भी भारतीय साहित्य में इतिहास विषयक सामग्री के महत्त्व को प्राचीन काल से स्वीकार किया जाने लगा था। 'यास्क' (७०० ई०पूर्व) के 'निरुक्त' में ऋचाओं के स्पष्टीकरण के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों तथा प्राचीन अनार्यों की कथाओं को **इतिहासमाचक्षते** कहकर उल्लेख किया गया है।

निरुक्त के अध्ययनोपरान्त यह भी विहित होता है कि वेदार्थ के निरुपण करने वाले प्राचीनतम वेदव्याख्याकारों में एक सम्प्रदाय इतिहासकारों का भी था, जिन्हें **इति ऐतिहासिकाः**[१२] कहकर स्मरण किया जाता है।

इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। आचार्य कौटिल्य (४०० ई०पू०) कहते हैं कि ''अथर्ववेद और इतिहास दोनों वेद है। इतिहास के अन्तर्गत पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र में सभी का समावेश हो जाता है।'१३

संस्कृत वाङ्मय में ऐतिहासिक सामग्री चार रूपों में दिखायी देती है–

१. कुछ ग्रन्थकारों ने अपने पूर्व के ऐतिहासिक ग्रन्थों का उल्लेख किया है; किन्तु जो ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं हैं।

२. कुछ ऐतिहासिक सामग्री अन्तर्लेखों, दानपत्रों, प्रशस्तियों आदि में मिलती हैं।

३. कुछ ऐतिहासिक सामग्री 'रामायण', 'महाभारत', 'पुराण' आदि धर्मग्रन्थों में भी उपलब्ध है।

४. कुछ ऐतिहासिक सामग्री, काव्यपरक इतिहास के ग्रन्थों में भी मिलती है।

शोध-विषय की दृष्टि से काव्यपरक इतिहास ग्रन्थों के चर्चा की ही आवश्यकता है।

ऐतिहासिक महाकाव्यों में प्रथम नाम पालि के वंशग्रन्थों का आता है। पालि-साहित्य में वंशग्रन्थ उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि संस्कृत-वाङ्मय में अष्टादश पुराण, महाभारत, राजतरंगिणी इत्यादि का महत्त्व है। पालि के वंश ग्रन्थ सत्यता तथा तथ्यों पर आधारित हैं। इन वंश ग्रन्थों की संख्या १२ है; किन्तु उनमें **दीपवंश**, **महावंश**, **शासनवंश** और **ग्रन्थवंश** उत्कृष्ट ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं।

दीपवंश लङ्का की प्राचीन शासन-परम्परा को दर्शाता है। इसमें ऐतिहासिक सामग्री काव्यत्व गुण की अपेक्षा अधिक है जबकि **महावंश** में अपेक्षाकृत काव्यत्व, गुण अधिक हैं। **महावंश**, **दीपवंश** के ही आधार पर लिखा गया है। **शासनवंश** में बुद्ध परिनिर्वाण से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक के बौद्धधर्म के विकास की क्रमबद्ध स्थितियों का इतिहास वर्णित है। उपर्युक्त ग्रन्थों की तरह ही **ग्रन्थवंश** भी पालि-साहित्य के इतिहासकार एवं पालि-साहित्य के अध्येताओं के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

बाणभट्ट (७वीं शताब्दी) का 'हर्षचरित' ऐतिहासिक चित्रण पर आधारित है। **हर्षचरित** में एक ओर **बाण** और **हर्ष** की जीवन घटनायें वर्णित है तो दूसरी ओर तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदायों, रीति-रिवाजों, शासन-व्यवस्थाओं का वर्णन ऐतिहासिक ढंग से किया गया है।

कनकसेन वादिराज (८वीं शताब्दी) का 'यशोधराचरित' भी एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

सिन्धुराज के बड़े भाई राजा **मुंज** (९७० ई०) तथा राजा **भोज** (१००५ से १०५४ ई०) के आश्रित कवि **परिमल** ने १८ सर्गों का **नवसाहसांकचरित** महाकाव्य लिखा। यह महाकाव्य राजा भोज की प्रशंसा पर आधारित था। 'नवसाहसांकचरित' काव्य गुणों से ओत-प्रोत होने के साथ ही तथ्याधारित ऐतिहासिक महाकाव्य है।

इसी क्रम में १८ सर्गों का दूसरा महाकाव्य **विक्रमांकदेवचरित** (१८८५ ई०), **ज्येष्ठकलश** के पुत्र **विल्हण** ने लिखा। इस महाकाव्य में अनैतिहासिक एवं काल्पनिक घटनाओं का चित्रण है; फिर भी उसकी

मुख्य घटनाएँ एवं उसके मुख्य चरित विशुद्ध ऐतिहासिक हैं। **विल्हण** ने १०५० ई० में शिक्षा-दीक्षा लेने के पश्चात् अपनी जन्मभूमि **काश्मीर** कर त्याग किया एवं १०७० ई० के आस-पास वह अनहिल नाद के चालुक्यराजा **त्रैलोक्यमल** के दरबारी पण्डित रहे। कुछ समय पश्चात् वे कल्याण के राजा **विक्रमादित्य चतुर्थ** के आश्रित हुए। इसी विक्रमादित्य के चरित्र पर आश्रित **विक्रमाङ्कदेवचरित** महाकाव्य है।

इसी क्रम में राजपुरी के राजा **सोमपाल** की प्रशंसा पर आधारित कवि **जल्हण** (१२वीं शताब्दी) का **सोमपालविजय** नामक महाकाव्य भी है।

"ऐतिहासिक महाकाव्यों के क्षेत्र में लिखी हुई सर्वाधिक प्रौढ़ कृति **कल्हण** की **राजतरंगिणी** है।'[१४] इसमें काश्मीर के राजाओं का इतिहास प्राचीन काल से प्रारम्भ करके १२वें शतक तक लिखा हुआ है। **राजतरंगिणी** के आरम्भ में कवि ने अपने कुल का इतिहास भी प्रस्तुत किया है। काश्मीरनरेश राजा **जयसिंह** (११२७ ई०- ११४९ ई०) के राज्यकाल में **कल्हण** ने इस ग्रन्थ की रचना की थी। महाकवि **कल्हण** ने अपने पूर्ववर्ती ११ इतिहास के ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् 'राजतरंगिणी' की रचना की थी।

कल्हण की **राजतरंगिणी** की कथा को कुछ परवर्ती कवियों **जोनराज**, **श्रीवर**, **प्राज्यभट्ट**, **शुक** ने आगे बढ़ाया है।[१५] डॉ० कीथ का मत है– ये ऐतिहासिक कवि **कल्हण** की अपेक्षा मौलिकता तथा तथ्य चित्रण में निपुण नहीं हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और ऐतिहासिक ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं उनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है।

१. काश्मीर महाकवि शम्भु– राजेन्द्र कर्णपूर (कवि ने राजा हर्षदेव की प्रशस्ति इस ग्रन्थ में लिखी है) (१०८८)

२. हेमचन्द्राचार्य– कुमारपालचरितम् (इसमें अन्हलवाड़ के चालुक्य राजा कुमारपाल का जीवनचरित लिखा है) (११७२)

३. जयानक– 'पृथ्वीराजविजय' ('कीथ' ने इसको अज्ञात कवि की रचना माना है) (१२वीं ई० उत्तरार्द्ध)

४. सन्ध्याकर नन्दी– रामपालचरित (बंगाल के राजा रामपाल का

जीवन वर्णन इस ग्रन्थ में उपलब्ध है) (११०४-१३३० ई०)

५. सोमेश्वरदत्त या देव– कीर्तिकौमुदी, सुरथोत्सव (११७९-१२६२ ई०)

६. अरिसिंह– सुकृत-संकीर्तन (प्रशस्ति काव्य) (१३वीं शताब्दी)

७. मेरूतुंग– प्रबन्धचिन्तामणि (इसमें जैन कवियों और जैन महापुरुषों की आत्मकथाएँ वर्णित है) (१३०६ ई०)

८. राजशेखर– प्रबन्धकोश (१३४९ ई०)

९. सर्वानन्द– जगदूचरित (१४वीं शताब्दी)

१०. वामनभट्ट बाण– वेमभूपालचरित (इसमें कवि ने अपने आश्रयदाता वेमभूपाल का ऐतिहासिक वृत्त लिखा है) (१५०० ई०)

११. पं० सदाशिव शास्त्री– सिन्दे-विजय-विलास-चम्पू (इसमें ग्वालियर नरेशों का जीवन वर्णित है) (२०वीं शताब्दी)।

ठीक इसी प्रकार कुछ अन्य काव्य ग्रन्थों में भी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है–

१. गंगादेवीकृत **मधुराजविजय**
२. राजनाथ द्वितीयकृत **सालुवाभ्युदय**,
३. राजनाथ तृतीयकृत **अच्युतरायाभ्युदय**,
४. वासुदेवकृत **गंगावंशानुचरित**
५. गंगाधरकृत **गंगादास-प्रताप-विलास**,
६. रानी तिरूमलाम्बाकृत **वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू**,
७. यज्ञनारायणकृत **साहित्य रत्नाकर** एवं **रघुनाथ विलास**
८. रामभद्राम्बाकृत **रघुनाथाभ्युदय**,
९. रूद्रकविकृत **राष्ट्रोढवंश महाकाव्य**,
१०. देवविमलगणिकृत **हीरसौभाग्य**,
११. देवराजकृत **बालमार्तण्डविजय**,

१२. बाणेश्वरकृत **चित्र-चम्पू**।

संस्कृत महाकाव्य की परम्परा में विद्यमान कुछ महाकाव्यों की सूची यहाँ दी जा रही है–

१.	श्रीरामविजयम्	– रूपनाथ झा
२.	राघवीयम्	– रामपाणिपाद
३.	उत्तरनैषधमहाकाव्य	– अरुरमाधवन
४.	रामविलास महाकाव्य	– जगन्नाथकवि
५.	जयवंशयममहाकाव्यं	– सीतारामभट्ट पर्वमीकर
६.	अजितसिंहचरितम्	– बालकृष्ण
७.	वासुदेवचरितम्	– वट्टपल्लिभास्करन
८.	रामवर्ममहाराजचरितम्	– पाच्चुमुत्तत
९.	सुरुपाराघवम, रामोदयम्	– इलत्तूर रामास्वामी
१०.	सतीपरिणयम्, चन्द्रवंशमहाकाव्यं	– चन्द्रकान्तकालङ्कार
११.	श्रीकृष्णराजप्रभवोदयम्	– श्रीनिवास कवि
१२.	उत्तरनैषधम्	– वन्दारुभट्ट
१३.	विजयिनीमहाकाव्यम्, विक्रमभारतम्	– श्रीश्वरविद्यालङ्कार
१४.	अभिनवरामायणम्	– अधिराम कामाक्षी कामकोटि
१५.	मथुरादुर्विलासम्	– परमानन्दशास्त्री
१६.	जयपुरराजवंशावलिमहाकाव्यं	– रामनाथनन्द
१७.	उमापरिणयम्	– विधुशेखरभट्टाचार्य
१८.	हनुमद्विलासम्	– सुन्दराचार्य
१९.	इन्द्रोदयम्नाभ्युदयम्	– वेंकटेशवामनसोवाणी
२०.	सत्यभामापरिणयम्, परशुरामचरितम्	– हेमचन्द्रराय कविभूषण।
२१.	श्रीराममहाकाव्य	– गुरुप्रसन्नभट्टाचार्य

२२.	रामात्मचरितमहाकाव्यं	– चुनक्कर रामवरियार
२३.	कांचीविजयम्	– गणेश्वर रथ।

२०वीं शताब्दी में भी पौराणिक एवम् ऐतिहासिक महाकाव्यों की निर्मिति हुई। २०वीं शताब्दी की महाकाव्य-परम्परा में रचे गये कुछ महाकाव्य निम्नलिखित है–

१.	क्षत्रपतिचरितम्	– डॉ० उमाशङ्कर शर्मा 'त्रिपाठी'
२.	दयानन्ददिग्विजयम्, श्रीकृष्णचन्द्रामृतम्	– अखिलानन्द
३.	पारिजातहरणम्	– श्रीपति मिश्र
४.	तिलकनिलयम्	– काशीनाथ शास्त्री
५.	विन्ध्यवासिनीचरितम्, देवीचरितम्	– श्रीशेवडे जी
६.	श्रीकृष्णचरितम्	– महाकविघिरमिरे
७.	जवाहरज्योति	– पं० रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी
८.	शिवराज्योदयम्	– श्रीधर भास्कर वर्णेकर
९.	दशकण्ठवधमहाकाव्यम्	– पं० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी
१०.	सीताचरितम्	– डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी
११.	गणपतिसम्भवम्	– पं० प्रभुदत्तशास्त्री
१२.	नेहरू यशः सौरभम्	– पं० गोस्वामी बलभद्र प्रसाद शास्त्री
१३.	आर्योदयम्	– पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय
१४.	भरतानुवर्णनम्	– पं० रामावतार शर्मा
१५.	तुकारामचरितम्, श्रीरामदासचरितम्	– पण्डिताक्षमाराव
१६.	दयानन्द दिग्विजयम्	– श्रीमेधाव्रत
१७.	कनकवंशम्	– बालकृष्णभट्ट
१८.	दयानन्दचरितम्	– रमाकान्त उपाध्याय
१९.	महात्मागान्धिचरितम्	– स्वामी भगवताचार्य

२०. सुभाषचरितम् – श्रीविश्वनाथकेशव छत्रे
२१. स्वराज्यविजयम् – द्विजेन्द्रनाथ विद्यामार्तण्ड
२२. झांसीश्वरीचरितम् – सुबोधचन्द्र पन्त
२३. केरलोदयः – डॉ० के०एन० एलुतच्छन
२४. श्रीनेहरूचरितम् – पं० ब्रह्मानन्द शुक्ल
२५. विशालभारतम् – श्री श्यामवर्ण द्विवेदी
२६. श्रीस्वामीविवेकानन्दचरितम् – श्रीत्र्यम्बक शर्मा भण्डारकर
२७. व्रजयुवतिविलास[१६] – कविचन्द्रकमललोचन खड्गराय
२८. चर्चामहाकाव्य[१७] – डॉ० शिवदत्तशर्मा चतुर्वेदी
२९. वामनचरितम्[१८] – डॉ० इच्छा राम द्विवेदी प्रणव
३०. श्रीशङ्कराचार्यचरितम्[१९] – डण्डीस्वामी श्रीनिगमबोध तीर्थ
३१. अजितोदयमहाकाव्यम्[२०] – जगज्जीवन भट्ट
३२. श्रीकृष्णचरितम्महाकाव्यम्[२१] – आचार्य रमेशचन्द्र शुक्ल
३३. श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्[२२] – सत्यव्रतशास्त्री
३४. भीष्मचरितम्[२३] – डॉ० हरिनारायण दीक्षित
३५. भरतचरितममहाकाव्यम्[२४] – डॉ० रामकुमार शर्मा
३६. सम्भूयमहाकाव्यम्[२५] – महाकवि मायाप्रसाद त्रिपाठी
३७. भार्गवविक्रमनाममहाकाव्यम्[२६] – श्रीमतिनाथ मिश्र 'मतंग'
३८. श्रीराधाचरितमहाकाव्यम्[२७] – आचार्य कालिकाप्रसाद शुक्ल
३९. आत्मविज्ञानममहाकाव्यम्[२८] – डॉ० कपिलदेव द्विवेदी
४०. नेपालसाम्राज्योदयम्[२९] – पण्डित पशुपति झा
४१. मोहभङ्महाकाव्यं[३०] – डॉ० रसिकबिहारी द्विवेदी
४२. भरतबाहुबलिमहाकाव्यम्[३१] – श्रीपुण्यकुशलगणि
४३. गोमतीयंमहाकाव्यम् – डॉ० महेन्द्र शुक्ल
४४. शिवायनम् – डॉ० महेन्द्र शुक्ल

२०वीं सदी को हम आधुनिक युग कहते हैं इसी आधुनिक युगमें क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य रचा गया। आधुनिक युग के महाकाव्यों के क्रम में (२० सदी के) कुछ ऐतिहासिक महाकाव्य इस प्रकार हैं–

१. दयानन्ददिग्विजयम्, श्रीचन्ददिग्विजयम – अखिलानन्द
२. महात्मागांधिचरितम्, तिलकनिलयम् – काशीनाथ शास्त्री
३. जवाहरज्योति – श्री रघुनाथप्रसाद चतुर्वेदी
४. क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य – डॉ० उमाशङ्कर शर्मा 'त्रिपाठी'
५. श्रीगान्धिबान्धवम् – पं० जयराम शास्त्री
६. नेहरू यशः सौरभम् – गो० बलभद्रप्रसाद शास्त्री
७. आर्योदयम् – पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय
८. तुकारामचरितम्, श्रीरामदासचरितम् – पण्डित क्षमाराव
९. दयानन्ददिग्विजयम् – श्रीमेधाव्रत
१०. दयानन्दचरितम् – रमाकान्त उपाध्याय
११. महात्मागान्धिचरितम् – स्वामी भगवताचार्य
१२. सुभाषचरितम् – श्रीविश्वनाथकेशव दत्रे
१३. स्वराज्यविजयम् – द्विजेन्द्रनाथ विद्यामार्तण्ड
१४. झाँसीश्वरीचरितम् – सुबोधचन्द्र पन्त
१५. केरलोदय – डॉ० के०एन० एलुतच्छन
१६. श्रीनेहरूचरितम् – पं० ब्रह्मानन्द शुक्ल
१७. स्वामी विवेकानन्दचरितम् – श्री त्र्यम्बकशर्मा भण्डारकर
१८. श्रीतिलकयशोऽर्णवः – श्रीमाधवहरि अणे
१९. इन्दिरागान्धिचरितम् – डॉ० सत्यव्रत शास्त्री
२०. भक्तिसिंहचरितम् – स्वयंप्रकाश शर्मा
२१. आङ्ग्रेजचन्द्रिका – विनायक भट्ट
२२. राजाङ्ग्लमहोदयानम् – रामस्वामी
२३. आङ्ग्लसाम्राज्यमहाकाव्यम् – ए०आर० राजवर्मा
२४. महारानीविक्टोरिया विषयक गीतभारतम् – त्रैलोक्यमोहन गुह
२५. दिल्लीमहोत्सवकाव्यम् – श्रीश्वरविद्यालङ्कार
२६. एडवर्डराज्याभिषेकदरबारम् – श्रीराम पाण्डेय

२७. जार्जवंशम् – के०एस० अय्यास्वामी
२८. दिल्ली साम्राज्यम् – शिवराम पाण्डेय

इस प्रकार ऐतिहासिक महाकाव्यों की किञ्चित गणना पूरी होती है। संस्कृत-साहित्य का ऐतिहासिक विषय विवादित रहा है। फिर भी उपर्युक्त महाकाव्यों के अध्ययन के पश्चात् हमें प्रचुर मात्रा में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है।

सन्दर्भ

१. साहित्यदर्पण, परि० ६.३१५ से ३२५ श्लोक तक.
२. काव्यादर्श.
३. ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३२६.
४. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ० ८४१.
५. महाभाष्य, ४.३.१०१.
६. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ० ८५०.
७. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ० ८५१.
८. कल्हण, राजतरंगिणी, ४.७०५.
९. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ० ८६१.
१०. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ० ८६६.
११. संस्कृत के महाकाव्यों ..... सत्रहवीं ..... महाकाव्यों की अन्तिम सीमा वही है''– संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ० ८७२.
१२. यास्क, निरुक्त, ४.६.
१३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ० ८७२.
१४. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ० ८७५.
१५. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृ० ५९९.
१६. प्रथम संस्करण, १९९१.
१७. वही, १९८७.
१८. वही, १९९७.
१९. वही, १९८८.

२०. वही, १९८६.
२१. वही, १९७९.
२२. वही, १९९८.
२३. वही, १९९१.
२४. प्रथम संस्करण– १९९७.
२५. प्रथम संस्करण– १९९०.
२६. प्रथम संस्करण– १९९५.
२७. प्रथम संस्करण– १९८५.
२८. प्रथम संस्करण– १९९४.
२९. प्रथम संस्करण– १९८०.
३०. प्रथम संस्करण– १९७८.
३१. प्रथम संस्करण– १९७४.

*****

प्रथम अध्याय

कवि परिचय, शिवाजी विषयक साहित्य एवं क्षत्रपतिचरितम् का महाकाव्यत्व

१ कवि परिचय, शिवाजी विषयक साहित्य एवं क्षत्रपतिचरितम् का महाकाव्यत्व

(क) श्री उमाशङ्कर शर्मा त्रिपाठी का जीवन परिचय

कवि का जन्म– श्री उमाशङ्कर शर्मा 'त्रिपाठी' जी का जन्म देवरिया जिले के 'बाबू गाँव सिंगहा' में १ जनवरी १९२२ को हुआ था।

माता-पिता एवं पूर्वज– कवि के पिता पं० रामनरेशमणि त्रिपाठी जी थे। इनके पिता संस्कृत के विद्वान् थे, इनकी माता का स्वर्गवास (जब ये २ वर्ष के ही थे) हो गया था। कवि के पिता ने दूसरा विवाह भी कर लिया था। स्पष्ट है कि इनका लालन-पालन विमाता ने किया।

प्रारम्भिक अवस्था– माँ के स्वर्गवास के पश्चात् कवि के व्यक्तित्व के विकास में इनके पिता पं० रामनरेश मणि त्रिपाठी जी का योगदान रहा। श्री उमाशङ्कर शर्मा जी ने अपने पिता द्वारा दी गयी संस्कृत विद्या ग्रहण की। इन्होंने जब 'प्रथमा' एवं 'ज्योतिष' की परीक्षा उत्तीर्ण की उसी समय इनके पिता बीमार पड़ गये। पिता की बीमारी के कारण 'कवि' को 'क्लर्क' की नौकरी करनी पड़ी। नौकरी की अवधि में ही कवि ने पिता के निर्देशन से 'अंग्रेजी' भी पढ़ना आरम्भ कर दिया।

शिक्षा-दीक्षा – कवि ने १९३७-३८ में प्रथम परीक्षा उत्तीर्ण की एवं १९३९ में ज्योतिष परीक्षा (कुबेरनाथ संस्कृत पाठशाला से) भी उत्तीर्ण की। कवि ने १९४३ ई० में 'हाईस्कूल' की परीक्षा 'संस्कृत में विशेष योग्यता' के साथ द्वितीय श्रेणी में (प्राइवेट) उत्तीर्ण की एवं कवि ने हरिश्चन्द्र कॉलेज से इण्टरमीडिएट में प्रवेश लिया था। त्रिपाठी जी ने एकाग्र चित्त होकर चारों खण्ड मध्यमा, इण्टर प्रथम वर्ष एवं विशारद की परीक्षा एक साथ १९४४ ई० में उत्तीर्ण की। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से इन्होंने १९४७ ई० में बी०ए० पास किया एवं १९४९ ई० में एम०ए० किया। कवि ने विद्यापीठ से १९७४ में 'ए स्टडी ऑफ नेचर एण्ड सोर्सेज ऑफ लॉफ्टर विथ स्पेशल रिफरेन्स टू दी कॉमिक इन सेक्सपियर' विषय पर शोध करके पी-एच्०डी० की उपाधि भी प्राप्त की एवं १९६१ ई० में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से 'साहित्याचार्य' की परीक्षा उत्तीर्ण की।

नौकरी– कवि ने सर्वप्रथम १९ वर्ष की अवस्था में 'समकोल रेलवे स्टेशन' स्थित फैक्ट्री में क्लर्क की नौकरी की। इसके पश्चात् सन् १९४९ ई० में डी०ए०वी० इण्टर कॉलेज, गोरखपुर में अंग्रेजी के अध्यापक पद पर नियुक्त हुए। यहाँ तीन वर्ष तक अध्यापन के बाद वे त्याग-पत्र देकर बलिया टॉउन कॉलेज चले गये। बलिया टॉउन कॉलेज में एक वर्ष (५२-५३) रहने के पश्चात् वे पुनः डी०ए०वी० इण्टर कॉलेज चले गये। कवि को वहाँ का वातावरण पसन्द नहीं आया। उन्होंने पुनः वहाँ नौकरी छोड़ दी। सन् १९५८ ई० में उन्होंने काशी विद्यापीठ में अंग्रेजी व्याख्याता का कार्यभार ग्रहण किया। अपने मरणोपरान्त (१९८१ तक) वे यहीं अध्यापन कार्य कराते रहे।

परिवार – कवि के परिवार में उनकी पत्नी ३ पुत्रियाँ एवं एक पुत्र हैं। कवि की पत्नी का नाम भौंरा देवी एवं पुत्रियों का नाम क्रमशः इरारानी शर्मा, उत्तरामणि शर्मा, अनन्यामणि शर्मा एवं (सबसे छोटी सन्तान) पुत्र का नाम मिहिरमणि शर्मा त्रिपाठी है। कवि का परिवार सुसंस्कारित है। कवि की पुत्रियों ने अच्छी शिक्षा ग्रहण की। कवि ने अपने पुत्र का अभियान्त्रिकी में प्रवेश कराया था जिस समय पुत्र का प्रवेश अभियांत्रिकी में हुआ था एवं कवि की छोटी पुत्री बी०ए० में विद्यापीठ में अध्ययनरत थी उसी वर्ष कवि का स्वर्गवास हो गया।

कृतियाँ – कवि बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कवि ने न केवल संस्कृत अपितु आग्ल एवं हिन्दी साहित्य में भी रचनाएँ की। कवि की संस्कृत, आंग्ल एवं हिन्दी कृतियाँ क्रमशः निम्नलिखित है–

संस्कृत साहित्य

१. संस्कृत मौलिक रचनाएँ

(क) महाकाव्य – क्षत्रपतिचरितम् (१९ सर्ग)

(ख) खण्डकाव्य – १. अस्पृश्यात्मनिवेदनम्
(२५ छन्द मन्दाक्रान्ता)

२. कृषकः (२५ मन्दाक्रान्ता छन्द)
३. रासभारती (५६ मन्दाक्रान्ता छन्द)
४. बंगाल देश (५७ छन्द)
५. इन्दिराजयति (६९ छन्द)

(ग) गीतिकाव्य – भारतीयगीतम् (५२ गीत मात्रिक छन्द)

(घ) प्रकीर्ण रचनाएँ – अहं राष्ट्री (१२ मात्रिक छन्द)

२. अनूदित रचनाएँ–

(क) खय्याम भणितिः (१०० श्लोक मन्दाक्रान्ता छन्द)

(ख) सूक्तामृतम् (५०० सूक्तियाँ अनुष्टुप छन्द)

(ग) कबीर साखी (अनुष्टुप छन्द)

३. अपूर्ण –

'ऋतुवर्णन' (५६ श्लोक)

अंग्रेजी साहित्य –

१. "A Study of Nature and sources of laughter with special reference to the comic in Shakespeare". शोधप्रबन्ध।

२. Mahatama Gandhi – ४८ कविताएँ

३. Journey's End – ४० कविताएँ (नेहरु पर आधारित)

१३. विभिन्न विषयों पर १५० अंग्रेजी रचनाएँ और हैं।

हिन्दी साहित्य –

निबन्ध – १. दरिद्रनिःसारणम् (प्रकाशित)
२. भारतीय संस्कृति (प्रकाशित)
३. नई कविता (प्रकाशित)
४. मजनू मर गया (प्रकाशित)
५. सपाट बयानी (अप्रकाशित)

अन्य रचनाएँ –

१. उत्तर काव्यप्रकाश (हिन्दी भाषा में पाश्चात्य आलोचना साहित्य की समीक्षा)

२. अद्यतन (कविता संग्रह)

३. बालू के कण– हिन्दी निबन्धमाला (निबन्ध संग्रह)

४. अनद्यतन (हिन्दी काव्य संग्रह)

प्राप्त पुरस्कार –

१. कालिदास पुरस्कार – त्रिपाठी जी को उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सन् १९७६ ई० में 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य पर कालिदास पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

२. संस्कृत पाण्डुलिपियों पर पुरस्कार– त्रिपाठी जी को **खय्याम भणिति** (उमर खय्याम की रूबाइयों पर) की पाण्डुलिपियों पर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सन् १९५८ ई० में २५० रु० का पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य निर्माण का प्रेरणा प्रसङ्ग –

कवि ने बाल्यकाल में **शिवाजी की गुरुभक्ति** शीर्षक पाठ पढ़ा था। वे बाल्यकाल से शिवाजी के चरित्र को आदर्श चरित्र मानते थे।

शिवाजी की गुरुभक्ति से प्रभावित होकर उन्होंने एक बार ५१ श्लोक लिख डाले, जो शिवाजी के गुरु-शिष्य, परीक्षा एवं प्रेम पर आधारित था। ये श्लोक महाकाव्य के प्रणयन के पूर्व रचित श्लोक हैं, जो एकादश सर्ग में पाये जाते हैं। इसी के बाद कवि ने राष्ट्रनायक शिवाजी के चरित्र पर आधारित क्षत्रपतिचरितम् नामक १९ सर्गात्मक महाकाव्य का निर्माण किया।

कवि की अन्तिम अवस्था (मृत्यु) —

त्रिपाठी जी जीवन भर साहित्य सेवा करते रहे। कवि की मृत्यु ९ नवम्बर सन् १९८१ ई० को हुई। (दिन रविवार एवम् एकादशी की रात्रि को यह साहित्य प्रेमी परमात्मा की रची लीला से पञ्चतत्त्व में विलीन हो गया)। ये अपनी अन्तिम अवस्था में एक 'ऋतुपरिवर्तन' नामक रचना लिख रहे थे, यह रचना उनके असामयिक निधन से अपूर्ण रह गयी। त्रिपाठी जी के असामयिक निधन से उनके परिवार की आर्थिक स्थिति भी डवाडोल हो गयी; किन्तु काशी विद्यापीठ के अध्यापकों के योगदान एवं कवि के प्रताप से आगे उन्हें और किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा।

(ख) ग्रन्थ-परिचय

शिवाजी-विषयक ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

शिवाजी एक ऐतिहासिक चरित्र नायक हैं। संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक चरित्र नायक को लेकर लिखी गयी रचनाएं अल्प मात्रा में हैं। शिवाजी विषयक रचनाएं सभी भारतीय भाषाओं में पायी जाती है। संस्कृत-भाषा में भी शिवाजी के चरित्र पर आधारित साहित्य अनेक विधाओं में रचे गये हैं। संस्कृत के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में शिवाजी का ओजस्वी चरित्र एक सशक्त भूमिका रखता है।

शिवाजी महाराष्ट्र के हैं अतः वहाँ के प्रादेशिक भाषा में शिवाजी-विषयक महाकाव्य, नाटक, उपन्यास, आख्यायिका, निबन्ध, प्रबन्ध, गीत इत्यादि प्रकरण ग्रन्थ प्रचुर मात्रा में हैं। मराठी भाषा में अन्य ऐतिहासिक महापुरुषों की अपेक्षा शिवाजी विषयक साहित्य का निर्माण हो रहा है।

शिवाजी-विषयक साहित्य का यदि एक ग्रन्थालय बनाया जाय तो वह एक विशाल ग्रन्थालय होगा।

संस्कृत-साहित्य में भी शिवाजी-विषयक अनेक काव्य पाये जाते हैं। यह अपने आप में एक विशिष्ट बात है। शिवाजी-विषयक साहित्य पर शोध करना संस्कृत शोधच्छात्र/छात्राओं के लिये गर्व की बात है।

शिवाजी-विषयक निम्नलिखित संस्कृत साहित्य उपलब्ध हैं–

महाकाव्य—

१. क्षत्रपतिचरितम् – उमाशङ्करशर्मा 'त्रिपाठी'
२. शिवभारत – कवीन्द्रपरमानन्द नेवासेकर
३. शिवकाव्यम् – पुरुषोत्तम
४. शिवाजिचरितम् – कालिदासविद्याविनोद
५. शिवराज्योदय – श्रीधरभास्करवार्णेकर

गद्यकाव्य—

१. शिवराजविजयम् – पं० अम्बिकादत्त व्यास
२. क्षत्रपतिशिवाजीचरित – श्री पादशास्त्रीसूरकर
३. शिवावतारप्रबन्ध – व्यङ्कटेशवामनसोवनी

खण्डकाव्य

१. पर्णालपर्वतग्रहणाख्यानम् – जयरामपिण्डये
२. शिवप्रशस्ति – विश्वेश्वरभट्ट (गागाभट्टकाशीकर)
३. छत्रपति शिवराज – वासुदेवशास्त्री वागेवादीकर
४. आध्यात्मशिवायनम् – श्रीधरभास्कर वार्णेकर
५. शिवराजस्तोत्रम् – श्रीधरभास्करवार्णेकर

नाटक

१. छत्रपतिसाम्राज्यम् – मूलशङ्करयाज्ञिक
२. शिवाजिचरितम् – हरिदाससिद्धान्तवागीश
३. शिववैभवम् – श्रीकोकिल

४. छत्रपतिशिवराज – श्रीरामभिकाजी वोलणकर

अवान्तर ग्रन्थ

१. शिवराज्याभिषेक – गागाभट्टकाशीकर
२. शिवराजाभिषेककल्पतरू – निश्चलपुरी
३. राधामाधवविलासचम्पू – जयरामपिण्डये
४. राजव्यवहारकोश – रघुनाथपन्तहणमन्ते
५. करणकौस्तुभ – केशवदैव
६. दण्डनीतिप्रकरण – केशवपण्डित
७. बुधभूषणम् – छत्रपति शम्भाजी
८. जयसिंहप्रति श्रीमच्छत्रपतेः शिवप्रभोः पत्रम् – कविराज
९. साहित्यमंजूषा – सदाजि
१०. संस्कृतं दानपत्रम् – छत्रपति शम्भाजी

शिवाजी के समकालीन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

१. शिवभारत

इस महाकाव्य के रचयिता शिवाजी के आश्रित परमानन्दगोविन्दनिधि भास्कर हैं। वह नेवासा (महाराष्ट्र) के निवासी अर्थात् नेवासकर (उपाख्य श्री परमानन्द कवीन्द्र) हैं। ऐसे तो महाराष्ट्र वीर शिवाजी के चरित्र को लेकर अनेक काव्य एवं महाकाव्य लिखे गये; किन्तु उन सबों में शिवभारत शिवाजी के समकालीन महाकाव्य है। अतः प्रामाणिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भी है। इसकी रचना शक संवत् १५८३ ई० (सन् १६६१ ई०) के बाद शिवाजी के राज्यारोहण से पूर्व हुई प्रतीत होती है। काव्य की रचनाशैली बहुत कुछ महाभारत से मिलती-जुलती है। कवीन्द्र परमानन्द शिवाजी के राजनैतिक व्यवहार में भी सहायक थे, कवि ने १०० अध्यायों की योजना करते हुए शिवाजी के चरित्र पर एक महाकाव्य की रचना करने का निश्चय किया; किन्तु **सूर्यवंश** नामक इस नियोजित अनुपुराण ग्रन्थ के ३१ अध्याय एवं ३२ अध्याय के केवल ९ श्लोक ही रचे जा सके। इस अपूर्ण ग्रन्थ में शिवाजी द्वारा सन् १६६१ ई० में शृङ्गारपुर पर की गयी चढ़ाई तक शिवाजी के चरित्र का वर्णन किया गया है। इस

काव्यकृति पर शिवाजी ने श्री कवीन्द्र परमानन्द को 'कवीन्द्र' की उपाधि प्रदान की थी। वे एक बार काशी गये हुए थे, तब वहाँ के पण्डितों ने उनसे शिवचरित्र सुनाने का आग्रह किया तब उन्होंने गंगा के तट पर इस महाकाव्य का पाठ किया। तब पण्डितों ने कहा–

यः शास्ति वसुधामेतां राजा रायगिरीश्वरः।
.... नःशंशितव्रतः।।[1]

शिवाजी ने इनसे ग्रन्थ रचना करने का आग्रह किया था, ऐसा ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्य से पता चलता है। यह वचन प्रमाणित करता है–

योऽयं विजयते वीरः पर्वतानामधीश्वरः।
दाक्षिणात्यो महाराजः शाहराजात्मजः शिवः।।
स एकदात्मनिष्ठं मां प्रसादयेदमभाषत।
यानि यानि चरित्राणि विहितानि मया भुवि।।
विधीयन्ते च सुमते तानि सर्वाणि वर्णय।[2]

शिवाजी का आदेश प्रमाणित करके कवि ने प्रति अध्याय के अन्त में "इति अनुपुराणे सूर्यवंशे कवीन्द्र परमानन्द प्रकाशितायां शतसाहस्रधा" इस पुष्पिका को लिखा है। 'शिवभारत' प्रसाद तथा ओज गुण से परिपूर्ण एक हृद्य काव्य है। 'शिवभारत' की अधिकांश रचना अनुष्टुप छन्द में है; किन्तु प्रत्येक अध्याय के अन्त में कुछ श्लोक अन्य बड़े छन्दों में भी आबद्ध हैं।

'शिवाजी द्वारा अफजल खाँ का वध किया जाना' यह इस ग्रन्थ में कवि ने विस्तारपूर्वक वर्णित किया है।

पञ्चाशत वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ अज्ञात था। पुणेस्थित भारत इतिहास संशोधक मण्डल के भूतपूर्व कार्यवाहक ने तंजौर स्थित 'सरस्वती महाल' के संस्कृत ग्रन्थमाला में इस ग्रन्थ को पाया। दिवाकर महोदय (श्रीसदाशिव महादेव दिवाकर) ने १९२९ ई० में इस ग्रन्थ को पहली बार प्रकाशित कराया। प्रथम आवृत्ति में श्रीदत्तात्रेय विष्णु आप्टे महोदय ने २०० पृष्ठों की लम्बी प्रस्तावना लिखी। शिवचरित्र को जिज्ञासु लोग पढ़ें ऐसा निर्देश किया गया है। इस महाकाव्य में काव्य गुण की अपेक्षा ऐतिहासिक प्रामाणिकता अत्यधिक प्रशंसनीय है।

२. शिवराजाभिप्रयोग

विश्वेश्वरभट्ट नामक विद्वान् ने इस धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ को लिखा। धर्मशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में दस या पन्द्रह ग्रन्थ राज्याभिषेक सम्बन्धी हैं। शिवाजी के अभिषेक के समय विद्वान् मीमांसकों ने वैदिक मन्त्रों से परिपूर्ण एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का निर्माण किया। इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि पुणे निवासी श्री वेन्द्रमहोदय ने बीकानेर राज्य के हस्तलिखित ग्रन्थागार में पाया। इसका पहला प्रकाशन १९६० ई० में हुआ। इस ग्रन्थ में पुरोहितों द्वारा राज्याभिषेक के निमित्त क्या-क्या कर्म कराये जायँ इसका निर्देशन गागाभट्ट ने किया था। इस ग्रन्थ में शिवाजी के अभिषेक के लिये ही निर्देशन दिया गया था। इस ग्रन्थ को पढ़ने से पता चलता है कि राज्याभिषेक के पूर्व शिवाजी का सभी पत्नियों के साथ वेद मन्त्रोच्चारण द्वारा विधिपूर्वक पुनः विवाह संस्कार हुआ। सप्ताहान्त में शिवाजी वेद मन्त्रोच्चारण एवं मङ्गलगान के पश्चात् सोने के सिंहासन पर बैठे। ऐसा वर्णन वास्तविक ग्रन्थ (शिवराजाभिप्रयोग) में उपलब्ध होता है।

३. श्येनजातिनिर्णय

शिवाजी के आग्रह पर 'गागाभट्ट' ने इस ग्रन्थ को लिखा। इसमें शिवाजी के विषय में लिखा हुआ है–

यस्मिन्नसाधारणधैर्यशौर्यगाम्भीर्यसौन्दर्य .....
गुणैकधूर्ये ..... दिङ्मण्डलीमण्डपमातनोति।[3]

यह ग्रन्थ शिवराज्याभिप्रयोग से दश वर्ष पूर्व (१६६४ ई०) लिखा गया था।

४. शिवार्कोदय

यह गागाभट्ट का एक महान् मीमांसाशास्त्र विषयक ग्रन्थ है। उसमें उन्होंने लिखा है–

तत्तर्कपादे बहुनाग्रहेण श्लोकैः कृतं वार्तिकमार्यवर्यैः।
गागाभिधेनायमपूरि शेषः तस्याज्ञया क्षत्रपतेः शिवस्य।।[4]

५. राजव्यवहारकोष

मुगल काल में सर्वत्र उर्दू भाषा का प्रचार-प्रसार था। उर्दू राजभाषा थी। राजनैतिक व्यवहार में भी उर्दू भाषा प्रयोग में लायी जाती थी। शिवाजी ने उर्दू भाषा के प्रयोग को अपनी मराठी भाषा से निकालने के लिये, एवं प्रादेशिक भाषा में संशोधन के लिए, नये पारिभाषिक कोष की आवश्यकता का अनुभव किया, एतदर्थ 'राजव्यवहारकोष' नामक ग्रन्थ स्व आश्रित 'रघुनाथहणमन्ते' नामक अमात्य पण्डित को रचने का आदेश दिया। उस समय उर्दू लोलुप संस्कृत के उद्धार के प्रतिकूल थे। उनके उपहास को तिरस्कृत करते हुए रघुनाथ पन्त लिखते हैं–

विपश्चितसम्मतस्यास्य किं स्यादज्ञ विडम्बनैः।
रोचते किं क्रमेलाय मधुरं कदलीफलम्।।[5]

यह राजव्यवहारकोष अमरकोष की तरह छन्दोबद्ध एवं दशवर्गात्मक है। उसमें ऐसा लिखा गया है–

राजाज्ञेयः पातशाहः स्वामी साहेब ईरितः।
अन्तःपुरंतु दरूनीत्याहुर्यवनभाषया।।
युवराजः परिज्ञेया वलीयहृदनामकः।
शाहजादा राजपुत्रः प्रधानः पेशवा तथा।।[6]

६. करणकौस्तुभ

शिवाकालीन ज्योतिष विद्वान् कृष्णदैवज्ञ ने शिवाजी से प्रेरित होकर इस ग्रन्थ को लिखा। इस ग्रन्थ का विषय 'पञ्चाङ्ग-शुद्धि' है।

६. श्रीशिवराजाभिषेककल्पतरु

इस ग्रन्थ को शिवाश्रित तन्त्रविद्याविज्ञ पण्डित 'निश्चलपुरी' ने लिखा। उन्होंने गागाभट्टकृत 'राज्याभिषेक' को दोषपूर्ण माना, इस मत को प्रमाणित करके उन्होंने वैदिक राज्याभिषेक विधि के अनन्तर 'आश्विन सुदी पञ्चमी' तिथि को तान्त्रिक पद्धति से दूसरा राज्याभिषेक सम्पादित कराया। इसीलिए उन्होंने इस ग्रन्थ को लिखा। इस ग्रन्थ में कुछ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएं भी हैं।

८. बुधभूषणम्

शिवाजी के पुत्र शम्भुराज ने अपने पिता शिवाजी के गुणों की प्रशंसा करते हुए 'बुधभूषणम्' नामक एक सुभाषित ग्रन्थ लिखा।

९. पर्णालिपर्वतग्रहणाख्यानम्

शिवाजी के समकालीन ग्रन्थों में यह ग्रन्थ विविध भाषाविज्ञ 'जयरामपिड्य' नामक पण्डित ने लिखा। इस पञ्चप्रकरणात्मक ग्रन्थ में पर्णालपर्वत (पन्हला किला) जीतने के लिए जो युद्ध लड़ा गया उसका संवादात्मक वर्णन उपलब्ध होता है। यहाँ शिवाजी की रणनीतियों का भी विस्तृत वर्णन है।

१०. राधामाधवविलासचम्पू

ऐसा सभी जानते है कि इतिहास पर आधारित 'चम्पू साहित्य' उपलब्ध नहीं है; किन्तु 'राधामाधवविलासचम्पू' अपवाद स्वरूप है। इसके प्रथमार्द्ध में 'राधामाधवविलास' वर्णन है एवम् उत्तरार्द्ध में शिवाजी के पिता शाहजी की जीवनी वर्णित है। इसके कर्त्ता कवि जयराम हैं।

शिवाजी के समकालीन ग्रन्थों के अलावा कुछ अन्य ग्रन्थ भी शिवाजी पर आधारित हैं। उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है–

१. शिवराज्याभिषेक[७]

यह एक नाटक है। इसके लेखक श्रीधरभास्करवर्णेकर हैं। शिवाजी के राज्याभिषेक त्रिशताब्दी महोत्सव निमित्त महाराष्ट्र शासन के अनुदान से निर्मित सात अङ्क का नाटक है। इसमें प्रधानरूप में राज्याभिषेक की महत्त्वपूर्ण घटना का वर्णन है। इसके प्रकाशन में 'वसन्त गडगील पुणे' का योगदान है।

२. शिवाजी विजयम्[८]

यह 'प्रेक्षणक' है। इसके लेखक रङ्गाचार्य हैं। संस्कृत साहित्य परिषत् पत्रिका (कलकत्ता) से सन् १९३८ ई० में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इसके २ अङ्क हैं। इसमें नादी, प्रस्तावना, भरतवाक्य का अभाव-सा

है। इसके संवाद अत्यन्त लम्बे हैं। इसमें पद्य नहीं हैं। इसमें शिवाजी का आगरा में बन्दी होना एवं साधुवेश में राजधानी लौटना वर्णित है।

३. छत्रपति साम्राज्यम्[९]

इसके लेखक मूलशङ्कर माणिक लाल याज्ञिक हैं। उनका काल १८८६-१९६५ है। यह लेखक की अन्तिम रचना है। इसमें १० अङ्क हैं। यह छत्रपति शिवाजी के सन् १६४६-१६७४ तक के शासन काल की घटनाओं पर आधारित है। इसके अन्तिम अङ्क में राज्याभिषेक का वर्णन है।

४. शिवराज्योदय

ऐतिहासिक काव्य-परम्परा में श्रीधरभास्करवर्णेकर जी ने ६८ सर्गात्मक शिवराज्य-विषयक 'शिवराज्योदय' नामक महाकाव्य का निर्माण किया। इसमें भिन्न-भिन्न छन्दों में ४००० श्लोक रचे गये हैं। वर्णेकर जी कहते हैं कि इस महाकाव्य के प्रणयन की प्रेरणा उनमें बाल्यकाल से ही थी।[१०] इस महाकाव्य में उन्होंने शिवाजी के राज्याभिषेकपर्यन्त घटनाओं का वर्णन किया है।

५. शिवराजविजय

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसको अम्बिकादत्त व्यास ने लिखा है। इसमें शिवाजी का जीवन-चरित्र वर्णित है। इसमें १२ निःश्वास हैं। इसमें दो स्वतन्त्र कथाएँ हैं जो समानान्तर चली हैं, एवम् एक दूसरे की पूरक हैं। एक कथा का नायक रामसिंह है एवं दूसरी कथा के नायक शिवाजी हैं। इसके मुख्य पात्र हैं शिवाजी, गौर सिंह, अफजल खान, शाइस्ता खान, यशवन्त सिंह, रसनारि (रोशनारा) आदि। यह प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है।[११] इसकी भाषा शैली कादम्बरी के तुल्य है। इस पर बंगाली उपन्यासों का प्रभाव पड़ा है। इसमें प्राचीन काव्यशास्त्रीय परम्पराओं का निर्वाह, राजनीति का सम्मिश्रण एवम् ऐतिहासिक संयोग है। इसलिए यह ग्रन्थ नवीन एवं प्राचीन दोनों दृष्टियों से पाठकों के लिए आकर्षक रहा है। इसमें 'वीर' प्रधान रस है एवम् अन्य रस भी गौण रूप में हैं। इसके लेखक का जन्म १८५८ ई० में हुआ था।

(ग) क्या क्षत्रपतिचरितम् एक ऐतिहासिक महाकाव्य है?

क्षत्रपतिचरितम् की महाकाव्य के निकष पर परीक्षा

क्षत्रपतिचरितम् बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का एक उत्तम महाकाव्य है। इसके रचयिता श्री उमाशङ्कर शर्मा 'त्रिपाठी' जी आंग्ल भाषा के विद्वान् हैं। इस महाकाव्य के नायक 'शिवाजी' हैं। इस महाकाव्य में महाकाव्य के वे लक्षण[१२], जो अलङ्कारशास्त्र के आचार्य विश्वनाथ ने बताये हैं, घटित होते है। कुछ विशेष लक्षणों को देखा जा सकता है–

१. **'सर्गबन्धो महाकाव्यं'** महाकाव्य में सर्गबद्धता होनी चाहिए। क्षत्रपतिचरितम् १९ सर्गों में निबद्ध है। इस महाकाव्य में सर्गबद्धता है।

२. **''तत्रैको नायकः सुरः सद्वंशः क्षत्रियो वाऽपि धीरोदात्तगुणान्वितः''** महाकाव्य का नायक सद्वंश में उत्पन्न धीरोदात्तादि गुणयुक्त क्षत्रिय या देवता होना चाहिए। इस महाकाव्य के नायक शिवाजी धीरोदात्तादि गुणों से युक्त क्षत्रिय हैं।

३. **''शृङ्गारवीरशान्तानामेकोङ्गी रस इष्यते अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः''** महाकाव्य में शृङ्गार, वीर, शान्त में से एक रसप्रधान एवम् अन्य सभी रस गौण रूप से विद्यमान होने चाहिए। इस महाकाव्य में वीर रस प्रधान है एवम् अन्य रस गौण हैं।

४. **'सर्वेनाटकसन्धयः'** महाकाव्य में नाटक की सभी सन्धियों का होना आवश्यक है। इस महाकाव्य में भी प्रायः सभी सन्धियाँ पायी जाती हैं। इसे निम्नांकित क्रम में देखा जा सकता है–

मुख-सन्धि– बीज और आरम्भ के योग से मुख-सन्धि होती है–

यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।
प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुख परिकीर्तितम्।।[१३]

अर्थात् जहाँ अनेक अर्थ और अनेक रसों के सूचक बीज की उत्पत्ति प्रारम्भ नामक अवस्था से युक्त हो, उसे मुख-सन्धि कहते हैं। मुख-सन्धि में ही काव्य अथवा रूपक के बीज की सूचना दी जाती है। यही बीज काव्य अथवा रूपक के विभिन्न रसों को उत्पन्न करता है, उसका हेतु है। जिस प्रकार एक किसान अन्न फलादि की प्राप्ति के लिए खेत में बीज डालता है उसी प्रकार कवि अथवा नाटककार अपने कार्यरूप फल के कारण बीज का वपन काव्य अथवा रूपक प्रथम भाग अथवा आरम्भ में करता है।

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य १९ सर्गों का है। कवि ने द्वितीय सर्ग के निम्नलिखित श्लोक में बीज निक्षेप किया है–

आर्यप्रसूतिव्यसनाकुलेव सा स्वाधीनताऽनाप्तपदस्थितिर्ध्रुवा।
प्रत्यैक्षत स्वोदयमङ्गलायतिं भस्मच्छदा वह्निशिखेव सोत्सुकम्।।[१४]

अर्थात् आर्य सन्तानों की विपत्ति से मानो विकल, वैर रखने के लिए भी स्थान हीन स्वतन्त्रता अपने अभ्युदय के मङ्गल भविष्य की, भस्म में दबी अग्निशिखा के समान उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी।

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के नायक वीर शिवाजी ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अनेक प्रयत्न किये, यही इस महाकाव्य का प्रमुख विषय है। कवि ने मुख्य विषय पर आने के लिए प्रस्तुत श्लोक द्वारा महाकाव्य में 'बीज' निक्षेप किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में 'मुख-सन्धि पायी जाती है।

प्रतिमुख-सन्धि– विन्दु और यत्न के योग से प्रतिमुख-सन्धि बनती है–

फलप्रधानोपायस्य मुखसन्धिनिवेशिनः।
लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्र प्रतिमुखं च तत्।।[१५]

अर्थात् जहाँ मुखसन्धि में निवेशित प्रधान फल के उपाय का विकास कुछ लक्ष्य और कुछ अलक्ष्य हो उसे 'प्रतिमुख'-सन्धि का विषय कहते है। मुख-सन्धि में 'बीज' बोया जाता है, उसे उचित वातावरण में पोषण मिलता है। इस पोषण के द्वारा प्रतिमुख-सन्धि में आकर

वह फूटने लगता है, किन्तु जिस तरह पहले-पहल बीज का अङ्कुर निकलता हुआ कुछ-कुछ अस्पष्ट अवस्था में होता है, ठीक वैसे बीज का अङ्कुर थोड़े अस्पष्ट रूप में प्रतिमुख सन्धि में उद्भिन्न होता है।

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य चतुर्थ सर्ग में स्वातन्त्र्य लक्ष्मी का अपने गरिमापूर्ण अतीत एवम् अभिशप्त वर्तमान का वर्णन करना तथा क्षत्रपति का स्वतन्त्रता देवी के सम्मुख आत्म बलिदान की प्रतिज्ञा तथा तब तक भारत में रहकर प्रतीक्षा करने के लिए देवी से प्रार्थना करना इन सब के बीच महाकाव्य के 'बीज' (स्वतन्त्रता प्राप्ति) का अङ्कुर थोड़े अस्पष्ट रूप में उद्भिन्न होता हुआ दिखायी देता है तथा पञ्चम सर्ग में शिवाजी के विनाश की बीजापुर में रची गयी मन्त्रणा से तथा अफजल खान के सैनिक अभियान से 'मुख-सन्धि' में निवेशित फलप्रधान उपाय का विकास कुछ लक्ष्य और कुछ अलक्ष्य हो जाता है। इस प्रकार क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के चतुर्थ एवं पञ्चम सर्ग में प्रतिमुख-सन्धि पायी जाती है।

गर्भ-सन्धि– पताका और प्राप्त्याशा के संयोग से गर्भ-सन्धि होती है।

फलप्रधानोपायस्य प्रागुद्भिन्नस्य किञ्चन।
गर्भो यत्र समुद्भेदो हासान्वेषणवान्मुहुः।।[१६]

प्रतिमुख-सन्धि में कुछ प्रकाशित हुए फलप्रधान उपाय का जहाँ हास और अन्वेषण से युक्त होकर बार-बार विकास हो, उसे गर्भ-सन्धि कहते हैं। इसमें पताका का होना आवश्यक नहीं है; किन्तु प्राप्ति सम्भव का होना आवश्यक है।

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के अष्टम सर्ग में 'गर्भ-सन्धि' पायी जाती है। पूर्व-सन्धि में महाकाव्य का 'बीज' कभी पनपता और कभी मुरझाता (लाक्ष्यालक्ष्य) देखा गया है; किन्तु अष्टम सर्ग में 'अफजल खान' के वध के साथ 'बीज' विशेषरूप से फूट पड़ा है उसका विकास हुआ है। यद्यपि फलागम विघ्नरहित नहीं है; किन्तु 'अफजल खान' के वध के बाद लक्ष्य प्राप्ति (स्वतन्त्रता) की सम्भावना दिखायी पड़ने लगती है। इस प्रकार महाकाव्य के अष्टम सर्ग में गर्भ-सन्धि पायी जाती है।

विमर्श-सन्धि– विमर्श-सन्धि में प्रकरी और नियताप्ति का योग होता है–

यत्र मुख्यफलोपाय उद्भिन्नो गर्भतोऽधिकः।
शापाद्यैः सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृतः।।[१७]

अर्थात् जहाँ मुख्य फल का उपाय गर्भ-सन्धि से अधिक उद्भिन्न हो, परन्तु शापादियों से विघ्नयुक्त हो वह 'विमर्श-सन्धि' है।

जहाँ क्रोध से, व्यसन से या लोभ से फल प्राप्ति के विषय में सोचा जाय तथा जहाँ गर्भ-सन्धि के द्वारा बीज को प्रकट कर दिया जाय, वहाँ अवमर्श सन्धि कहलाती है–

क्रोधेनावशमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।।[१८]

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के चतुर्दश सर्ग में 'विमर्श-सन्धि' पायी जाती है। शिवाजी को आगरा का निमन्त्रण प्राप्त होता है, पर आगरा पहुँचने पर उन्हें मुगल दरबार में उचित सम्मान नहीं मिलता है, शिवाजी अत्यन्त क्रोधित होते है तथा जय सिंह के पुत्र से कहते हैं कि क्या मैं इसी अपमान का अधिकारी था? तुम लोगों से मेरी स्थिति छिपी नहीं है इस प्रकार शिवाजी का क्रोध करना तथा क्षत्रपति का कैद किया जाना एवं कैद से छूटकर प्रच्छन्न वेश में दक्षिणगमन यह सब फल-प्राप्ति (स्वतन्त्रता) की ओर ले जाता है। इस प्रकार महाकाव्य के चतुर्दश सर्ग में 'विमर्श-सन्धि' पायी जाती है।

विशेष– विमर्श-सन्धि के लक्षण में साहित्य दर्पण में लिखा है– 'शापादियों से विघ्नयुक्त हो' वह विमर्श सन्धि है, पर इस महाकाव्य में ऐसे किसी शाप की बात दिखायी नहीं देती है अतः यहाँ पर दशरूपक के लक्षण के आधार पर 'विमर्श-सन्धि' का निर्धारण किया गया है।

निर्वहण-सन्धि – 'अवमर्श-सन्धि' में प्रकरी और नियताप्ति का योग होता है–

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।[१९]

बीज वाले मुख आदि सन्धियाँ बिखरी जाकर जहाँ एक प्रयोजन में लायी जाती है, वह 'निर्वहण-सन्धि' है।

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के अष्टादश से एकोनविंश सर्ग के बीच 'निर्वहण-सन्धि' पायी जाती है। शिवाजी का स्वप्न था कि वह भारत में हिन्दू राज्य की स्थापना करें तथा भारत को मुगलों के शासन से मुक्ति दिला दें, उन्होंने कोण्डना दुर्ग को 'तानाजी मालसुरे' की सहायता से अपने कब्जे में कर लिया तथा कुछ ही वर्षों में शिवाजी ने मुगलों और बीजापुर के अनेक दुर्गों और भू-प्रदेशों को जीतने में सफलता प्राप्त की। अष्टादश सर्ग में शिवाजी के राज्याभिषेक का वर्णन है इससे स्पष्ट हो जाता है कि बीज वाली मुख आदि सन्धियाँ जो बिखरी हुई थीं १८वें एवं १९वें सर्ग में एक प्रयोजन (शिवाजी का राज्याभिषेक एवम् उनका शासन) में लायी जाती हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि महाकाव्य में १८ से १९ सर्ग की समाप्ति तक 'निर्वहण-सन्धि' है।

इस प्रकार क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में सभी सन्धियाँ पायी गयी हैं।

५. **'इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम्'** महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक या किसी सज्जन व्यक्ति से सम्बद्ध होता है। क्षत्रपतिचरितम् का वृत्त ऐतिहासिक है एवम् इसके चरित्र नायक वीर शिवाजी एक सज्जन व्यक्ति हैं।

६. **'चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्'** महाकाव्य में चतुर्वर्ग– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का वर्णन होता है और उनमें से किसी एक फल की प्राप्ति का वर्णन होता है। इस महाकाव्य में चारो वर्गों का वर्णन है एवम् अन्त में वीर शिवाजी द्वारा राज्यरूपी (अर्थ) फल प्राप्ति का वर्णन है।

७. **'आदौनमस्क्रियाऽऽशीर्वा वस्तुनिर्देश एववा', क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्'** महाकाव्य में प्रारम्भ में मङ्गलाचरण होना चाहिए चाहे वह नमस्कारात्मक,

आशीर्वादात्मक या वस्तु निर्देशात्मक हो। इस महाकाव्य में नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण है–

श्रेयसामेकभू - ज्योति – रमृतालोक - नन्दिनी।
वाचां जयतु सा देवी यस्यां विश्वं प्रसूयते ।।[२०]

मङ्गलाचरण के श्लोक में कवि ने वाक् की स्तुति की है। वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी रूप चार वाक् भेदों का उल्लेख किया है। वैखरी के रूप में 'वाक्' शास्त्र और व्यवहार के प्रयोग में आती है। जैसा कि दण्डी ने कहा है–

''वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते।''

और परावाक् के रूप में वाक् द्वारा शब्द ब्रह्म का निर्देश होता है। कवि ने उन समस्त भेदों को प्रकृत श्लोक में वाक् पद से अभिहित किया है और उसकी स्तुति के द्वारा ही महाकाव्य का प्रारम्भ किया है, तथा उसे ज्योति विशेषण से अभिहित किया है, यह युक्त भी है, क्योंकि समस्त संसार वाक् ज्योति के द्वारा ही दीप्त हो रहा है–

इदम अन्धतमः कृत्स्नं जायेत् भुवनत्रयं
यदि शब्द ह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।

साथ ही महाकाव्य में खलों की निन्दा एवं सज्जनों की प्रशंसा होनी चाहिए। क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में अफजल खाँ, औरंगजेब की निन्दा एवं शिवाजी जैसे सज्जन वीरों की प्रशंसा वर्णित है–

जाह्नवी जाह्नवी येयं हिन्दवो हिन्दवोऽथवा।
भारतं भारतं वाऽद्य तत्र हेतुः शिवोदयः।।[२१]

८. **'एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः'** महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द होना चाहिए एवं सर्ग के अन्तिम पद्य का छन्द बदल जाना चाहिए। क्षत्रपतिचारितम् महाकाव्य में भी इस बात का पालन किया गया है।

९. **'नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह'** महाकाव्य में आठ से अधिक सर्ग ह ोने चाहिए, जो न बहुत छोटे न बहुत बड़े हो। क्षत्रपतिचरितम् में १९ सर्ग हैं जो न बहुत छोटे न बहुत बड़े हैं।

१०. **'कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा'** महाकाव्य का नाम कवि, कथानक, नायक या प्रतिनायक के नाम पर रखना चाहिए। इस महाकाव्य का नाम नायक के नाम पर रखा गया है।

११. इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, युद्ध, प्रस्थान, विवाह, मन्त्र, पुत्र, उदय आदि का भी वर्णन है जैसा कि महाकाव्य में होना चाहिए।

विशेष– इसमें सर्गों का नामकरण नहीं है। कई सर्गों के सर्गान्त में भावी कथा की सूचना स्पष्ट रूप में नहीं मिलती है, इस प्रकार स्पष्ट है कि क्षत्रपतिचरितम् एक महाकाव्य है।

समीक्षा– क्या क्षत्रपतिचरितम् एक ऐतिहासिक महाकाव्य है? साधारण महाकाव्य की अपेक्षा ऐतिहासिक महाकाव्य में कुछ पृथकता पायी जाती है। 'बुद्धचरितम्' में ऐतिहासिक चेतना का प्राचीनतम तथा स्पष्ट दर्शन होता है। बुद्धचरित के कर्ता ने पौराणिक-परम्परा से प्रभावित होकर बुद्धचरितम् में तिथिक्रम वर्णित नहीं किया है, इसमें ऐतिहासिक महाकाव्य का प्रमुख लक्षण यह प्राप्त होता है कि महाकाव्य में केवल नायक के उत्थान पतन मात्र का वर्णन नहीं होता अपितु उसके जीवन के भावनात्मक विकास का प्रतिबिम्ब भी प्रस्तुत किया जाता है। क्षत्रपतिचरितम् में भी ऐतिहासिक चेतना का दर्शन होता है। क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में भी केवल नायक के उत्थान पतन मात्र का वर्णन नहीं है अपितु उसके जीवन के भावनात्मक विकास का प्रतिबिम्ब भी प्रस्तुत किया गया है। इस महाकाव्य में नायक के देश-प्रेम का सुन्दर वर्णन किया गया है। वास्तविकता यह है कि भारतीय विद्वान् इतिहास के तिथिक्रम और विशेष घटनाओं का उतना महत्त्व नहीं देते जितना उसके कार्यकलाप, वैयक्तिक जीवन की उत्कृष्टता, नैतिक आदर्श एवं राष्ट्रिय उन्नति में योगदान को। कवि ने भी इस महाकाव्य में इन्हीं बातों का उसने पालन किया है। शिवाजी एक ऐतिहासिक चरित्र नायक है। उन पर आधारित क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य है। तिथिक्रम को अधिक महत्त्व न देने पर भी घटनाएं तथ्यों पर

आधारित है। क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में महाकाव्य के लक्षण घटित होते हैं। यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है।

सन्दर्भ

१. शिवभारत, परमानन्द. (शिवराज्योदयस्य समीक्षात्मक अध्ययन), पृ० ५२.
२. शिवभारत, परमानन्द. १/२४,२५,२६.
३. श्येनजातिनिर्णय, गागाभट्ट. (शिवराज्योदयस्य समी०अध्य०, पृ० ५४).
४. शिवार्कोदय, गागाभट्ट. (शिवरा०समी०अध्य०, पृ० ५५).
५. राजव्यवहारकोष, रघुनाथहणभन्ते, प्रस्तावना.
६. राजव्यवहारकोष, प्रस्तावना.
७. संस्कृत वाङ्मय कोश ग्रन्थ वर्णमालाक्रमानुसार.
८. वही.
९. वही.
१०. शिवराज्योदय– लेखक निवेदन.
११. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृ० ५०९.
१२. साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद, ३१५-३२३ श्लोक.
१३. सा०द०, ६.७६, पृ० ४३०.
१४. क्षत्रपतिचरितम्, २.१५६
१५. साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद-७७-७८, पृ० ४३०.
१६. सा०द०, ६.७८, पृ० ४३१.
१७. सा०द०, ६.७९, पृ० ४३२.
१८. दशरूपक, १.४३, पृ० ४६.
१९. साहित्यदर्पण, ६.८०, पृ० ४३३.
२०. क्षत्रपतिचरितम्, १.१.
२१. वही, १९.५२.

*****

द्वितीय अध्याय

क्षत्रपतिचरिम् महाकाव्य का कथानक

२

क्षत्रपतिचरिम् महाकाव्य का कथानक

प्रथम सर्ग का कथानक

इस सर्ग में कवि ने आदिकवि बाल्मीकि, व्यास, कालिदास की प्रशंसा की है। इस सर्ग में कवि ने आत्मनिवेदन किया है। इस सर्ग का प्रारम्भ कवि ने सरस्वती वन्दना के साथ किया है–

श्रेयसामेकभू-ज्योति-रमृतालोक नन्दिनी।
वाचां जयतु सा देवी यस्यां विश्वं प्रसूयते।।[१]

कवि ने मनुष्य की कल्पनाशीलता की जय-जयकार की है, साथ ही मानवता के दृढ़ विश्वास को भी, क्योंकि इसी दृढ़ विश्वास के कारण यह मनुष्य जाति यहाँ तक प्रगति कर सकी है। कवि ने काव्य के विषयों पर भी विचार किया है। इसी क्रम में उन्होनें स्वयं को सामान्य व्यक्ति दर्शाया है–

यदपाङ्ग तरङ्गान्तर्वर्ति विश्वं निमज्जति।
साऽपि किं प्रतिभा भाग्यं मादृशस्यापि जन्मिनः।।[२]

कवि ने कहा है कि काव्य की माधुरी का निरन्तर आस्वादन करने से जिन सहृदयों का मन ऊब गया है उनके मन को प्रसन्न करने के लिए मेरी यह रचना (क्षत्रपतिचरितम्) खटाई (अम्ल) का काम करेगी अर्थात् अत्यन्त आस्वाद्य होगी। कवि कहते हैं कि भले ही यह महाकाव्य अग्राह्य हो; किन्तु क्षत्रपति शिवाजी के स्वरूप को कभी भी धूमिल नहीं कर सकेगा। संस्कृत के महत्त्व को बताते हुए

कवि कहते हैं कि संस्कृत ने आत्मचरित को सुरक्षित रखा है साथ ही काव्य धर्म को बताते हुए कवि कहते हैं कि काव्य धर्म उस सुन्दरी युवति के समान है जो परम्पराओं की उपेक्षा करना नहीं जानती–

परम्परामनालोच्य शास्त्रबन्धमुपेक्ष्य च।
वशगेवेङ्गिताचारा कविता कामिनी क्वचित्।।[३]

इस संसार में अल्पमात्रा में ही वे लोग पाये जाते हैं जो शब्द और अर्थ की उचित स्थिति का निर्वाह करते हैं। बाल्मीकि ही वस्तुतः कवि हैं जिनसे सर्वप्रथम कवि धर्म अवतरित हुआ–

के न काव्यकरा लोके लब्धपद्धतयोऽधुना।
यस्मात्तु पद्धतिर्जाता सोऽसौ प्राचेतसः कविः।।[४]

राम के अवतारत्व, ईश्वरत्व की प्राप्ति बाल्मीकि मुनि के काव्य का फल है। कवि ने व्यास एवं बाल्मीकि को प्रणाम किया है, क्योंकि व्यास एवं बाल्मीकि के कारण ही मानव 'मानव' है। रामकथा विपत्ति के सागर से पार लगाती है, रामायण भारतीय मूल्यों की अवतारणा तथा प्रतिष्ठा करता है। रामायण और महाभारत इन दो महाकाव्यों से सारी मानव जाति को लाभ है। आगे कवि ने कालिदास के लिए कहा है कि इनकी सरस्वती स्वतन्त्र विहार करती हैं। क्षत्रपति शिवाजी को इन्होंने 'भूभृत' शब्द से सम्बोधित किया है–

तं तदेषोऽनभ्यस्ताध्वा भूभृतं चपलस्थितिः।
स्वपरिमाणबन्धेषु नियनन्तुं ययते जनः।।[५]

इस श्लोक के दो अर्थ निकलते हैं (पृथ्वीपति, पर्वत) पहला 'राजा पक्ष में' कि यह कवि उस पृथ्वीपति को अपनी रचना के सीमित बन्धनों में बांधना चाहता है, एवं दूसरा 'पर्वत पक्ष में' कि यह कवि उस उत्तुंग शैलराज को अपने छोटे पैरों की तुच्छगति में सीमित करने की धृष्टता कर रहा है। यद्यपि क्षत्रपति महान् हैं; किन्तु कवि भी आत्मतोष का अधिकारी है। कवि सरस्वती के सेवक हैं यह निर्विवाद सत्य है, यह रचनाभले ही अच्छी न हो, पर महाराज शिवाजी के यशस्वी पराक्रमों के सङ्कीर्तन के लिए बद्धपरिकर हैं। कभी अनुकूल समय आयेगा तब कोई श्रेष्ठ कवि क्षत्रपति शिवाजी की प्रशंसा में

कोई रचना करेगा तब तक के लिए कवि ने काव्य रचनारूपी दो-चार पुष्पों से आत्मनिवेदन किया है। इस सर्ग में ९२ श्लोक हैं।

द्वितीय सर्ग का कथानक

इस सर्ग में भारतमाता का वर्णन किया गया है। भारत के भूगोल का दर्शन करना हो तो यह सर्ग अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा।

हिमालय वर्णन– इस सर्ग का आरम्भ ही हिमालय वर्णन के साथ होता है–

शैलेश्वरो यस्य शिरः समुन्नतं गाम्भीर्यमम्भोधिरनन्तरत्नभूः।
दाक्षिण्यपुण्योपचितैव सन्ततिस्तत् कीर्त्यते देशवरेषु भारतम्।।[६]

शैलराज हिमालय जिसके मस्तक हैं, ऐसा महान् देश 'भारत' है। हिमालय वर्णन के बाद कवि गङ्गा नदी के महत्त्व को बताते हैं। वर्ण, धर्म, भाषा में अलग होते हुए भी भारतवासी सुख-दुःख में सदैव एक साथ रहते हैं इतना कहकर पुनः कवि हिमवद् का वर्णन करने लगते हैं। कवि कहते है कि हिमालय की शोभा के समक्ष इन्द्रासन की शोभा व्यर्थ है–

यो नाकिवन्द्यामपि तेजसा महीं विस्मापयत्येव विविक्तसम्पदा।
तस्यानुषङ्गःप्रभवाऽपि सच्छटा कं वैजयन्तं न करोति निष्प्रभम्।।[७]

काश्मीर वर्णन–

अभ्यासभूमिर्भुवनोष्वियं धरा ख्याता यथाऽध्यात्मविवेकसम्पदः।
सौन्दर्यलक्ष्म्याः मुखसन्निभस्तथा काश्मीरभागः किल कथ्यते बुधैः।।[८]

जिस प्रकार इस पृथ्वीलोक में भारत को आत्मज्ञान की सम्पत्ति का अभ्यास स्थल कहा जाता है, उसी प्रकार विवेकशील जन काश्मीर को सुन्दरता की देवी का मुख मानते हैं। झील में नाव पर भ्रमण करने वाली नवयुवतियाँ कमलों को तोड़ने के लिए जल में झुकती है एवं अपने मुख को उस जलरूपी दर्पण में देख कर लज्जित हो जाती है, क्योंकि जल में कमल नहीं अपितु कमल सदृश उनका मुखमण्डल रहता है। काश्मीर की भूमि इन्द्रप्रासाद से भी मनोरम प्रतीत होती है। कोई भी हो यदि

वह काश्मीर पर तटस्थ दृष्टि डाले तो उसे सुन्दर ही कहेगा। काश्मीर की भूमि के समक्ष राजाओं का वैभव तुच्छ है–

रम्ये चरन्तः पशवोऽचलाञ्चले
स्निग्धः स्वराः गोपसुताः सदार्जवाः।
स्रोतः प्रसन्नाम्बु मनोहरं वपुः राज्ञां
श्रियस्त्वद्विपदोऽपि किं समाः।।[९]

काश्मीर हमारी आर्यभूमि का मस्तक है भला उसे कटाकर हमारी आर्यभूमि कैसे जी सकेगी? काश्मीर सीमान्त प्रदेश है उस पर कोई शत्रु भला कैसे कुदृष्टि डाल सकता है? काश्मीर की रक्षा करना इस भारत राष्ट्र का दायित्व है।

सप्तसिन्धु प्रदेश वर्णन–

सच्चक्षुषः प्रागृषयो जगद्धिताः
यस्यां जगुर्ब्रह्मविवेकविस्तरम्।
सच्छन्दसामेकधरार्यसम्पदां सा
सप्तसिन्धुर्महसामियं स्थली।।[१०]

प्राचीन ऋषियों ने जिस स्थान पर ब्रह्मज्ञान के विस्तार का आयोजन किया, शुद्ध छन्दस्वती आर्यसम्पत्ति (वेद) की आदिभूमि यह प्रभापूर्ण शुभ स्थली सप्तसिन्धु प्रदेश है। यहीं पर वे नदियाँ हैं जिसके जल की लहररूपी बालिकाओं ने वेद संहिता वाली अमृतमयी सरस्वती का दिगन्त सम्भाषण श्रवण किया।

गान्धार वर्णन–

यहाँ के लोगों को आधिदैविक, आधिदैहिक, आध्यात्मिक ताप नहीं है।

पाञ्चाल वर्णन–

पाञ्चाल प्रदेश पौरुषमय प्राणियों का प्रदेश है–

संलिह्य खर्जूरमदोन्मदान्
क्षणाद्यः पारसीकान् यवनाशुशुक्षणिः।

वाह्लीक शौर्याभिभवोल्लसच्छिखो
यत्रासिवर्षैः प्रशशाम निष्प्रभः।।[११]

पाञ्चाल प्रदेश की कुशलता दैव के विधान को भी पराजित कर देती है। अर्थात् अलेक्जेण्डर ने पञ्चनद प्रदेश में भयङ्कर प्रतिशोध से आतङ्कित होकर विश्वविजय की कामना को मध्य में ही त्याग दिया।

दिल्ली वर्णन–

दिल्ली मायापुरी है। दिल्ली से दूर जाने वाले दुःखी हो जाते हैं, एवं दिल्ली के पास आने वाले प्रसन्न हो जाते हैं। इस दिल्ली ने (दिल्ली का मानवीकरण किया गया है) कई अत्याचारी नरेशों को धूल में फेंक दिया। यहाँ के राजाओं ने असंख्य युद्ध लड़े एवं शत्रुओं को पराजित किया।

राजस्थान वर्णन–

राजस्थान भारत की वीर भूमि है–

स्वातन्त्र्यरक्षाक्रतुकीर्तितच्छटा या राजपुत्रैः प्रथिता प्रजावती।
सेयं मरौ शर्करिलेऽपि सोत्सुकं सूते सदा केवलमुज्ज्वलं यशः।।[१२]

यहाँ राजपूताने की वीरवधुएँ देश सेवा के लिए अपने पुत्रों को निछावर कर देती हैं। युद्ध में वीरगति पाने वाले उन वीरों के साहचर्य में अपने यौवन को धन्य करने के लिए अप्सराएं प्रोषितभर्तृका के समान प्रतीक्षा करती हैं। इसी राजस्थान में दिल्ली के खिलजी बादशाह अलाउद्दीन ने नवयुवतियों का सतीत्व हरण करने की इच्छा के बदले में उनकी शीलरक्षण की यशस्वी जलती हुई राख को पाया।

गुजरात वर्णन-

हित्वा वयस्यान् यमुनां वनावनिं
विस्मृत्य पुण्यां मथुरामपि क्षणात्।
रेमे क्व सौराष्ट्रतटादृते मनो
देवस्य विष्णोरपि बन्धनाच्छिदः।।[१३]

भगवान् श्रीकृष्ण का मन मित्रों को, यमुना को, वृन्दावन को, मथुरा को छोड़ देने के बाद भला सौराष्ट्र के अतिरिक्त और कहाँ बँध सका? यहाँ की युवतियों का सौन्दर्य मनमोहक है। गुजरात ही नहीं अन्य भागों में भी इन युवतियों की 'गुजरी' नाम से प्रशंसा की जाती है। महात्मा गांधी ने स्नेह को धनुष बनाकर शत्रुओं को शुभ पथ में प्रतिष्ठित किया। वे स्वयं नग्न रहकर लोगों की नग्नता दूर करते रहे। इस भारत भूमि में अपने प्राणों तक का त्याग करने वाले महात्मा गांधी गुजरात के गौरव थे।

विन्ध्य वर्णन–

शक्तिमान विन्ध्यगिरि वन्ध्य प्रदेश का रक्षक है। कवि ने विन्ध्य प्रदेश वर्णन के साथ ही नदियों एवं वहाँ के वासियों की भी चर्चा की है। कवि ने नर्मदा नदी को श्रेष्ठ नदी बताया है एवं विन्ध्य प्रदेश के वनवासियों को किरात वेशधारी शंकर के समान बताया है।

उत्तर प्रदेश वर्णन–

रात्रिकाल में निर्मल आकाश में बिखरी चांदनी हिय को हरण कर ले जाती है–

सद्योभिषेकस्फुटगौरिमश्रिया नक्षत्रपुष्पाञ्चित- नैशकुन्तलैः।
प्राणान् समुत्कण्ठयतीव निस्सहा ऊज्योत्स्नानभः कुट्टिमपीठ नन्दिनी।।[१४]

यहाँ की उत्तम खेती लोगों का मन प्रसन्न कर देती है। यहाँ की पवन लोगों को भाव विभोर कर देती है। यहाँ की स्त्रियाँ भोर में गेहूँ के बहाने आलस्य को पीस देती हैं। यहाँ लोगों को आनन्दित कर देने वाले तुलसीदास रह चुके हैं। यहाँ वसन्त ऋतु में पीले रङ्ग के वस्त्रों को धारण की हुई बालाएं लोगों को खेतों में बरबस ही फिसल जाने पर बाध्य कर देती हैं। आज भारत स्वतन्त्र है फिर भी यह 'गोमती' भला कैसे १८५७ ई० के स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों को भूल सकती है? नेहरू जी गङ्गा नदी के तट पर उत्पन्न हुए थे जिन्होंने देश के लिए दृढ़तापूर्वक योगदान किया। पं० मदनमोहन मालवीय ने भी इसी उत्तर प्रदेश में विद्यादान द्वारा छात्रों को पूर्णता प्रदान की।

बंगभूमि वर्णन–

देवापगायै किल पाथसां निधिं माधुर्यपूरे वचसे निसर्गजम्।
चेतोऽनुरागाय वपुर्नवं श्रिये वङ्गावानर्भाग्यमिवानुविन्दति।।[१५]

बंगभूमि देवनदी के लिए समुद्र की प्राप्ति को, वाणी के लिए माधुर्य को, स्नेह के लिए हृदय को तथा सुकान्ति के लिए नवीन शरीर को अपने भाग्य का सहज विधान मानती है। कवि जयदेव एवं स्वामी विवेकानन्द को कौन नहीं जानता है? कवि रविन्द्रनाथ टैगोर की चर्चा करते हुए कवि कहते हैं–

यत्रावनिः सिद्धिसखीव नन्दिनी चेतः स्वयं गौरवभाजि शासनम्।
ज्ञानेन विद्वानमृतं समश्नुते तत्राश्रमे शान्तिनिकेतने गुरोः।।[१६]

जिस शान्ति-निकेतन में पृथ्वी आत्मसिद्धि में सखी के समान उपकारिणी है, वहाँ ज्ञानोपलब्धि द्वारा विद्वान् अमृत तत्त्व का भागी हो जाता है।

महाराष्ट्र वर्णन–

यहाँ कुलवधुएँ पति के पीछे नहीं अपितु पति के बगल में स्थान ग्रहण करती हैं। महाराष्ट्र की नदी कृष्णा नदी है एवं कवि श्री 'तुकाराम' जी चलते-फिरते तीर्थ हैं। इसके पश्चात् कवि ने पेशवा राज्य के न्यायाधीश श्रीराम शास्त्री के महान् त्याग, श्रीमन्त पेशवा की शक्ति के बारे में वर्णन किया है। 'मालोजि' (शिवराज के पूर्वज) के बारे में बताते हुए कवि कहते है कि उनके पुत्र से यादवराज ने अपनी पुत्री का विवाह किया। वह मालोजि की पुत्रवधू जीजाबाई थीं, जो राजकुल के जन्मदात्री के सम्मान से प्रसिद्ध हुई। शिवाजी का जन्म हुआ–

आदर्शयाथार्थ्यविदात्मनन्दिनी सा देवमायेव चरित्रदेवता।
तं रत्नसूनुं सुषुवे प्रजाभरं यत्तेजसाऽद्यापिवयं वयं युगे।।[१७]

आदर्श एवं यथार्थ के महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध को जानने वाली उस जीजाबाई ने प्रजापालक पुत्र को जन्म दिया जिसके पराक्रम एवं तेज से आज भी हम है। उसी का जन्म लेना श्रेष्ठ एवं सार्थक है जिससे

कुल की कीर्ति बढ़ती है– **सजातोयेनजातेन जातिवंशः समुन्नतिः**[१८]। शिवाजी ने लोगों को अपना मित्र बनाकर सबको अपने गुणों से वश में कर लिया। इस सर्ग में १८६ श्लोक हैं।

तृतीय सर्ग का कथानक

इस सर्ग में क्षत्रपति शिवाजी के बाल्यकाल एवं युवावस्था का वर्णन है।

क्षत्रपति का अवतार इस पृथ्वी पर दूसरे हिमवान् के रूप में हुआ है। शिवराज के रूप में स्वयं श्रीकृष्ण ने दीन-दुखियों का दुःख दूर करने के लिए अवतार लिया है। शिवाजी के पिता शाहजी भोसले को जागीर आदि की देख-रेख में बाहर जाना पड़ता था। शिवाजी की शिक्षा-दीक्षा माता जीजाबाई की देख-रेख में सम्पन्न हुई। बालक शिवाजी माँ के दुग्ध का पान करके अपेक्षित बल बुद्धि प्राप्त करते हुए बड़े हो रहे थे। उनके मन में राम की विजयगाथा की अमिट रेखा बन गयी, सीता की करुण कथा सुनकर उन्हें अश्रुपात होने लगा।

देश के भावी आश्रयदाता शिवाजी ने महाभारत युद्ध के आर्यवीरों की यश परिपूर्ण गाथा सुनी। इस प्रकार उन्होंने विश्वास कर लिया कि रामायण, महाभारत, इतिहास इत्यादि ग्रन्थ इस भारत के रत्नाकर ग्रन्थ हैं। वीर शिवाजी सारांश ग्रहण करने में रुचि रखते थे। वे 'लकीर के फकीर' होने में विश्वास नहीं रखते थे–

न शुक्तये मौक्तिकलब्धये परं धृतः क्रमस्तेन नतेन सादरम्।
रतोऽपि कामं पदपङ्क्तिबन्धने मनोरथार्थी नवमार्गमाश्रयेत्।।[१९]

विनयशील बालक शिवाजी सीपियों के लिए नहीं अपितु मोतियों के लिए प्रयत्नशील रहते थे। शिवाजी को 'कौण्डदेव' के संरक्षण में शिक्षा प्रप्त हुई। कौण्डदेव ने व्यावहारिक पद्धति द्वारा शिवराज को शिक्षा दी। बालक शिव ने धर्म, अर्थ, काम से परिपूर्ण सरस्वती को हृदय में स्थान दिया। शिवराज युवावस्था में ही अपने मङ्गलमय अध्यवसाय के लिए प्रसिद्ध हो चुके थे। जो लोग बिना किसी कारण के लोगों से शत्रुता करते थे उन लोगों का शिवराज कार्तिकेय के

समान दमन करने को उद्यत रहते थे। शिवाजी का शरीर श्रम करके सुगठित एवं शक्तिशाली हो गया था। लोगों के कल्याण से ही उनको सन्तोष मिलता था, एवं प्रजा के कष्टों को मनोयोगपूर्वक निवारण करके ही उन्हें शान्ति मिलती थी। प्रारम्भ से ही शिवाजी सुविचारित ढंग से कार्य करने के पक्षपाती थे। परिस्थितियाँ चाहे प्रतिकूल हो जायें पर क्षत्रपति अपने निर्दिष्ट पथ से विरत नहीं होते थे।

शिवाजी के समक्ष दो ही कठिन समस्याएँ थीं, प्रजाजनों का हनन करने वालों का संहार तथा समाज का अविलम्ब अभ्युदय। इन दोनों महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्होंने घोड़े या मृगचर्म को निर्विकार भाव से अपना अवलम्ब माना। शिवाजी की वीरता देख शत्रु अपने कल्याण की चिन्ता करने लगे। बीजापुर आदि राज्यों में विशेषतः मुगल साम्राज्य के दक्षिण भाग में शत्रुओं की विकलता बढ़ने लगी। शिवाजी महाराज विरल मेघ के समान अत्याचार से प्रतप्त भारतीय आकाश में उदित हुए। प्रजा को शत्रु विघ्नों से बचाने के लिए वीर शिवाजी अपने आप में लीन हो गये। शिवाजी को महल का सुख पाप के समान प्रतीत होता था। वे अपने दुःखी हृदय की औषधि (जनता के कल्याण) के लिए प्रायः पहाड़ों, कन्दराओं, निर्जन स्थानों में भ्रमण करने लगे। श्वेतवसना जीजाबाई सांसारिक इच्छाओं से मुक्त थीं। पुत्र शिवाजी के साथ रहती हुई भी वे एकान्त का सेवन करती थीं। जन कल्याण उनका स्वभाव था। वे विष्णु भगवान् की उपासिका थीं। पति को अन्य पत्नियों में आसक्त देख उन्होंने स्वयं को भगवान् के चरणों में आसक्त कर लिया था। शिवाजी नागरिकों की दयनीय दशा देखकर दुःखी थे। इन्हें इस बात का बहुत कष्ट था कि बलवान् एवं स्वस्थ होते हुए भी नागरिक अपनी रक्षा में सक्षम नहीं हैं। वे अपनी रक्षा हेतु शत्रुओं से दया की भीख मांगते थे, बदले में वे शत्रुओं के झूठे गुणों का गान करते थे। यदि कदाचित् वे प्रतिकार के लिए प्रयत्न भी करते थे, तो उनके मन में सङ्कल्प की दृढ़ता न होने के कारण वे पुनः विफल हो जाते थे। भारतीय रजवाड़े युद्धभूमि में पीठ दिखाना नहीं जानते थे। उनकी वीरता सर्वविदित थी; किन्तु परस्पर विरोध के कारण वे युद्ध में अल्पशक्ति हो जाते थे। एक-एक कर उन्हें कुटिल दिल्ली की भयङ्कर क्रोधाग्नि में पतङ्गों के समान जल जाना पड़ा। भारतीय राजाओं को उनके आपसी विरोध के कारण चतुर दिल्ली

ने उन्हें पीस डाला। उस समय न्याय को बलवान् के सम्मुख पराजित होना पड़ता था। 'जिसकी लाठी उसी की भैंस' का बोलबाला था। दासता ने समाज को अत्यन्त अस्त-व्यस्त कर दिया था। सम्पूर्ण समाज पशुओं-सा जीवन बिता रहा था। वे जङ्गली लोग धन्य हैं जो शत्रुओं को मारकर विजयपर्व मनाते हैं भले ही इसके लिए उन्हें नियमों को क्यों न तोड़ना पड़े। आर्यराष्ट्र के पुनरुद्धार का सङ्कल्प लेने वाले उस महाराष्ट्र केसरी को राजभोग अपने मोहजाल में न बांध सका। शिवाजी ने शौर्य के धनी वीर 'मावलों' (मावल देश पश्चिमी घाटों के किनारे लम्बाई में नब्बे तथा चौड़ाई में लगभग १२ मील से १४ मील है)[२०] को विश्वसनीय पदों पर नियुक्त किया। मावले (मावली "उसके सर्वश्रेष्ठ सैनिक, उसके सबसे पहले साथी एवं उसके सबसे अनुरक्त सेनापति" निकले)[२१] बड़े निर्भीक थे, उनके सहज और निश्छल गुणों के कारण शिवराज उनका आदर करते थे। वीर शिवाजी के लिए उनके सैनिक मित्र तुल्य थे। समय बदलने लगा कभी शत्रु भयभीत करता था, अब वह स्वयं भयभीत रहने लगा। उस महान् स्वतन्त्रता सङ्घर्ष में सबको कुछ न कुछ छोड़ना पड़ा–

जहावसिः कोशमरीन् शुभायतिः समुद्यमो दैन्यमनार्जवं विधिः।
विपन्महाराष्ट्रभुवं बली शुचं सपत्नकान्तावदनञ्च मण्डनम्।।[२२]

तलवार ने म्यान छोड़ दिया, विपत्ति ने महाराष्ट्र धरा से मुँह मोड़ लिया। वीर शिवाजी नवयुवक थे। युवावस्था चञ्चल अवस्था होती है फिर भी वीर शिवाजी में चञ्चलता का अभाव एवं गम्भीरता का आधिक्य था जो सज्जनों को आश्चर्यचकित कर देता था। शिवाजी किसी उन्नत कुल में उत्पन्न न हुए थे। उनके पिता का व्यवसाय ही शत्रुकुल की सेवा थी। शिवाजी दूरदर्शी एवं मनस्वी थे, वे आदर्श के पथ से विचलित नहीं हुए। शिवाजी ने विघ्न बाधाओं से मित्रता कर ली। वीर शिवाजी गुणों के अच्छे पारखी थे–

असंस्तुतानायसपाटवेऽटवीजुषोऽपि भूष्णुः परिलोच्य मावलान्।
अकृष्टप्रानिव सार्वरोरसः स्वराज्यवीजोन्मिषितानमन्यत।।[२३]

वे सामान्यजन में भी आन्तरिक योग्यता को देख कर उसे दायित्वपूर्ण भूमिका में प्रतिष्ठित करते थे। यद्यपि मावले लोग ग्राम

के निवासी थे फिर भी शिवाजी की अन्तर्दृष्टि ने जान लिया कि इन मावले लोगों के हृदय में स्वराज्य का बीज भली-भाँति उग सकता है। शिवाजी के शत्रुओं को सुरक्षित दुर्ग में भी नींद नहीं आती थी। शत्रु के सैनिक शिव सैनिकों से सदैव भयभीत रहते थे। साथ ही महाराष्ट्रकेसरी के शासन में शत्रुकुल की सुन्दरियां भी भयमुक्त हो स्वयं को सुरक्षित समझती थीं। सदाचारी विपक्षी भी धर्म मर्यादा का उन्मुक्त पालन करते थे। शिवराज का लक्ष्य अनाचार एवं दुर्व्यवस्था का विनाश करना था।

शिवराज के राज्य विस्तार में अविजित जावली की स्थिति कांटे के समान थी। शिवराज की कीर्ति भी स्वतन्त्र जावली द्वारा कुण्ठित हो गयी थी। शत्रु से मित्रता के बल पर जावली का शासक निश्चिन्त था। उसे भारतीयों की दुर्दशा पर तनिक भी दुःख न होता था। शिवराज ने जावली के अत्याचार से प्राणियों को मुक्त कराने के लिए अपने बन्धु 'बल्लाल' को जावली के विरूद्ध प्रेषित किया। 'बल्लाल' ने जावालिपति 'चन्द्र' को धराशायी कर उनकी राजलक्ष्मी को शिवाजी को समर्पित किया। जावली की विजय से शिवाजी मावल प्रदेश का स्वामी बन गया।''[२४] तानाजी मालसुरे ने शिवाजी के आदेश से तोरण दुर्ग को जीत लिया।

दादाजी 'कौण्डदेव' के दिवंगत हो जाने पर भी वीर शिवाजी ने उस साधु शिक्षक एवं शुभचिन्तक को अपने अभ्युदय की उत्तरोत्तर प्राप्ति को अपने लोकमङ्गलमय पराक्रम से सूचित करने के लिए विजयों की शृंङ्खला का क्रम बनाये रखा।

बीजापुर राज्य में आन्तरिक विप्लव के कारण दुर्व्यवस्था बढ़ने लगी। वीर शिवाजी का मार्ग प्रशस्त होने लगा। 'चंकन' दुर्ग के रक्षकों ने स्वयं शिवराज को भेंट के रूप में दुर्ग समर्पित कर दिया। 'कोण्डना' दुर्ग रक्षकों ने भी ऐसा ही किया। तोरण दुर्ग पर अधिकार कर लेने के साथ ही वीर शिवाजी को धन सम्पत्ति प्राप्त हुई। अनेक शत्रु दुर्ग भी शिवाजी के अधिकार में आ गये।

शत्रुकुल में प्रतिष्ठित देवी तुलजा भवानी ने शिवाजी को अपनी पुनः प्राणप्रतिष्ठा का आभास कराया।[२५] महाराष्ट्र में सर्वत्र किंवदन्ती

है कि तुलजा[२६] भवानी ने शिवाजी के स्वप्न में 'अपनी प्रतिमा दूसरे नवनिर्मित मन्दिर में स्थापित कराने' का आदेश दिया। शिवाजी ने उनकी आज्ञा का पालन किया।

बीजापुर के शासक ने शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले को जेल में बन्द कर दिया एवं शिवाजी को वश में करना चाहा। वह शिवराज की पितृभक्ति को भली-भाँति जानता था। चतुर्दिक यह प्रवाद फैल गया कि बीजापुर का शासक जेल में शिवाजी की हत्या करेगा। (जब शिवाजी तथा व्यंकोजी ने बंगलौर कोंडाना के किले सुल्तान के आदमियों को वापस कर दिये तब सुल्तान ने १६४९ ई० की मई के आरम्भ में शाहजी को मुक्त कर दिया[२७])। बीजापुर को आश्वस्त करने के लिए शिवाजी ने अपनी गतिविधि को कुछ दिनों के लिए रोक दिया एवं शाहजी को विश्वासघातपूर्वक कैद करा देने वाले 'घोरपड़े' को स्वाजाति द्रोह का परिणाम (प्राणत्याग) भोगना पड़ा।

बीजापुर राज्य में आन्तरिक कलह देख कर औरङ्गजेब प्रसन्न हो उठा एवं शिवराज से उसने बीजापुर के विरूद्ध दिल्ली की सहायता करने का आग्रह किया; किन्तु शिवाजी ने उसे मना कर दिया (क्योंकि शिवाजी बीजापुर एवं दिल्ली दोनों को समान रूप से शत्रु मानते थे)।

औरङ्गजेब ने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया। इधर शिवाजी के शत्रुओं के दक्षिण दिशा से हट जाने से शिवाजी की लक्ष्मी विकसित होने लगीं। औरङ्गजेब ने दक्षिण दिशा को सेनापति की रेखरेख में छोड़ा था फिर भी शिवाजी को दक्षिण दिशा (दक्षिण भारत) से निश्छल प्रेम होता गया। शिवगणों ने 'चमारमुण्डा'[२८] और 'रायसी'[२९] को तहस-नहस कर डाला एवं 'जुन्नर'[३०] पर सहसा धावा बोल दिया। आक्रमण के बाद घोड़ों की एक बड़ी संख्या प्राप्त हुई। शिवाजी ने शत्रु के 'कल्याण' दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया।

शिवाजी ने शत्रु को पराजित कर सेना द्वारा लाये बहुमूल्य वस्तुओं के साथ एक पालकी को देखा जिसमें सुन्दर कन्या बैठी हुई थी। शिवाजी ने कहा 'मेरे रहते दिल्लीपति भी तुम्हारा अप्रिय न कर सकेंगे।''[३१] एवं उन्होंने सेनापति को फटकारा कि हममें और

शत्रु में क्या अन्तर रह जायेगा जब हम भी किसी शत्रु वधू को अश्रुपात करायेंगे।

तभी वहाँ समर्थगुरु के कुछ शिष्य उपस्थित हुए एवम् उन्होंने गुरुप्रदत्त आशीर्वाद से शिवाजी को अवगत कराया।

माता जीजाबाई उस शत्रु वधू को बेटी के समान गले से लगा लिया एवं शिवाजी उस शत्रु वधू को उसके बन्धु-बान्धवों के साथ आदरपूर्वक भेजने का आदेश दिया। इस सर्ग में १३७ श्लोक हैं।

चतुर्थ सर्ग का कथानक

इस सर्ग में स्वातन्त्र्य लक्ष्मी का गरिमापूर्ण अतीत एवं अभिशप्त वर्तमान वर्णित है। चतुर्थ सर्ग अत्यन्त उदात्त भावभूमि पर आधारित है। समुद्र के किनारे टूटे मन्दिरों में सोये शिव ने प्रातःकाल एक सफेद वस्त्र धारण की हुई नारी को देखा। शिवाजी ने उस देवी से क्या पूछा एवं उस देवी ने क्या कहा? (भारत का गौरवमय अतीत एवं दुःखपूर्ण वर्तमान) इस सर्ग में उसी का वर्णन है।

अथोपकूलं कुललोकपालं देवालये दर्भकटे शयानम्।
चारित्र्यनिष्ठात्मधनं सिषेवे श्रद्धेव निद्रा वशिनं विवेकम्।।[३२]

देश जाति के रक्षक वीर शिवाजी समुद्र के तटवर्ती किसी एकान्त मन्दिर में कुशासन पर लेटे हुए थे। उनके पास एक उत्तम चरित्र था। शिवाजी जग रहे थे। समुद्र की तरफ शिवाजी ने जैसे ही दृष्टिपात किया उन्हें एक सफेद वस्त्र धारण की हुई स्त्री दिखाई पड़ी। शिवाजी ने उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और पूछा– आप कौन हैं एवम् इस निर्जन स्थान में क्यों भ्रमण कर रही हैं। तब उस नारी ने आँसू पोंछते हुए कहा–

अये दुरन्ताऽऽधिहतामपीत्थं प्रसादयन्मामसि कस्त्वमेव।
सुनिर्जनेऽस्मिन्नपि योऽब्धिकूले निषेवसे ध्वस्तमहेशपीठम्।।[३३]

तुम इस शिव मन्दिर में रात क्यों बिता रहे हो? तुम सत्पुरुषों के मार्ग पर चलने के लिये अपने मन को विवश मत करो। मुझे सान्त्वना देने वाले तुम कौन हो? फिर भी तुम्हारा कल्याण हो!

इतने वर्षों बाद भला तूने मुझे जानने की इच्छा तो की।

मुझसे परिचय करना, दुर्दशा एवम् अपमान से परिचय करना है। मुझे भारतीयों द्वारा अत्यन्त तिरस्कृत स्वतन्त्रता की अधिष्ठातृ देवी समझो। दधिचि ने 'देवताओं के साथ इन्द्र को' अपना शरीर देकर निर्भय बना दिया जबकि इस संसार में शरीर सबको प्रिय है। 'राम-रावण सङ्घर्ष' एवं युधिष्ठिर के आदर्शों को भी वह शिवाजी से बताती हैं। किस प्रकार सिकन्दर को प्राण त्यागना पड़ा, किस प्रकार समुद्रगुप्त एवं हर्षवर्धन आदि वीरों ने भारत की रक्षा की यह भी शिवाजी से बताती है।

देश दैन्य वृत्ति को अङ्गीकार कर चुका है, अठारह हजार सवारों की सहायता से बख्तियार खिलजी ने राजा लक्ष्मण सेन को पराजित कर गौड़ देश पर अधिकार कर लिया। राजा कर्ण ने अलाउद्दीन खिलजी से १३१६ में युद्ध में पराजित होने पर सन्धि के फलस्वरूप अपनी पत्नी को दे दिया। पाखण्डी जजिया (जजिया एक धार्मिक कर था जिसे विधर्मी प्रजा 'जो मुसलमान नहीं थी' मुस्लिम शासकों को देकर ही उनके राज्य में रह सकती थी) कर देते हैं। महमूद गजनवी ने (ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध) बीसों बार भारत पर आक्रमण किया तथा हर बार अनन्त सम्पत्ति लेकर लौटा था। भारतीय युवतियाँ एकान्त में परवश होकर शत्रु के साथ विहार करती हैं, भारतीय युवक परवश होकर भारत भूमि को कायरतापूर्वक देखते हैं। 'विट्ठलदेव' की प्रतिमा को शत्रु धूल में मिलाकर उसका मर्दन करते है। नरेश राजा राम का कटा हुआ शिर शत्रु के किले में टंगा हुआ था (वस्तुतः अंग्रेजों ने भारत पर अधिकार कर लेने के बाद उस घृणित, दानवीय प्रकरण का अन्त कर दिया, उसे हटा दिया)। स्वतन्त्रता देवी शिवाजी से यह कथा भी बताती हैं।

ब्राह्मणों को जलती आग में भूनकर मार डाला गया। (तुगलक बादशाह फिरोज के शासन काल में लगे अनुष्ठानों में भारतीय हिन्दुओं को बादशाह की आज्ञा से प्रदीप्त आग में जला डाला गया था) स्वतन्त्रता के लिये राणा प्रताप ने घास-पात खाकर जीवन बिताया। अकबर ने राणा प्रताप को परेशान किया। मैं क्या-क्या बताऊँ? क्या व्यथा भरी गाथा कह देने से यह व्यथा समाप्त हो जायेगी। स्वतन्त्रता का

नाश करने वाले दुष्टों का नाश ही न्याय है।

पर मेरे इस निष्प्रयोजन गाथा की स्मृति तुम्हें न रहे, क्योंकि तुम हमारी दुर्दशा को दूर नहीं कर सकते। भारतीय अवसर का लाभ उठाना नहीं जानते। तुम बैठो, आराम करो इतना कहकर देवी ने जाना चाहा तभी शिवाजी ने उन्हें रोकते हुए कहा–

मातः कनीयानपि ते सुतोऽयम् न हव्यताम् यावदुपैति यागे।
प्रतीक्षितुं तावदिहैव देशे प्रसीद वात्सल्यभरे ममाम्ब।।[३४]

माँ तुम्हारा यह छोटा पुत्र जब तक स्वतन्त्रता के महायज्ञ में हवनीय सामग्री बनकर समर्पित न हो जाय तब तक करुणामयी माता आप इस देश को छोड़कर न जायँ तथा यहीं पर रहकर प्रतीक्षा करें। मुझ पर दया करें। आप प्रसन्न रहें। इस प्रकार इस सर्ग में भारतीय इतिहास के उज्ज्वल एवं अन्धकारमय उभयविध पदों पर प्रकाश डाला गया है, तथा शिवाजी के पूर्व तक भारत की स्थिति को अत्यन्त संक्षेप में इंगित कर दिया गया है।

भावसागर में शिवाजी डूब चुके थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति को ही उन्होंने अपना लक्ष्य बनाया। इस सर्ग में १७५ श्लोक हैं।

पञ्चम सर्ग का कथानक

इसमें नवोदित क्षत्रपति के विनाश के लिए बीजापुर में की गई मन्त्रणा एवं अफजल खाँ का सैनिक अभियान वर्णित है। बीजापुर का सुल्तान विकल होकर उपद्रवी भावनाओं से ओत-प्रोत हो गया। उसे संसार नीरस लगने लगा, क्योंकि एक ओर तो शिवाजी निरन्तर उपद्रवों द्वारा अपनी शक्ति की वृद्धि कर रहे थे और दूसरी ओर दिल्ली का बादशाह औरङ्गजेब उसके राज्य विस्तार पर अपनी दृष्टि गड़ाये हुआ था। वह राज्य की रक्षा हेतु अपने सलाहकारों से सलाह करते हुए कहता है कि शिवाजी आक्रमण करता है, हत्या करता है, अगर आगे भी ऐसा करता रहा तो शिवाजी के आक्रमणों से अरक्षित प्रजा बीजापुर की निष्ठा से विरक्त हो जायेगी तथा शिवाजी के प्रभाव में आ जायेगी।

सुल्तान के कथन को सभी सभासदों ने सुना एवं उन्होंने अपना सिर झुका लिया, क्योंकि शिवाजी की शक्ति के समक्ष वे कोई भी

प्रतिज्ञा लेने में असमर्थ थे।

तब अफजल खाँ ने कहा कि यदि जंगली मराठा परम सामान्य व्यक्ति है तो उसे परास्त करने के लिए मामूली सा प्रयास भी पर्याप्त है। अफजल खाँ ने लोगों की तरफ देखते हुए शिवाजी के समूल नाश का बीड़ा ('पान का बीड़ा', किसी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए वीरों के सम्मुख रखा जाता था')[३५] उठाकर स्वयम् अपने मुँह में डाल लिया एवं इस प्रकार वह सुल्तान के इस कथन "जो शक्ति में अपने को सर्वश्रेष्ठ समझता है वह आगे आये और मेरे इस पान के बीड़े को लेकर इसका सम्मान करें अर्थात् शिवाजी के नाश की प्रतिज्ञा करे" का सम्मान करता है।

सभी लोग अफजल खाँ की प्रशंसा करने लगते हैं तब अफजल खाँ कहता है कि इस शिवाजी को मेरी तलवारों से कोई नहीं बचा सकता, शिवाजी की रक्षा अब असम्भव है, शिवाजी की खैर नहीं है। वह सुल्तान से कहता है कि हिन्दू सेनापति या सामन्त आपके लिए पूर्ण निष्ठा नहीं रखते अतः हिन्दुओं का विश्वास करना घातक है। अफजल खाँ विभिन्न तर्कों के माध्यम से आत्मप्रशंसा करता है। इस सेनापति ने खुले दरबार में शेखी मारी थी कि वह "अपने घोड़े से बिना उतरे ही शिवाजी को हथकड़ी डालकर गिरफ्तार कर लेगा।"[३६] इसके बाद वह राजमाता के चरणों में झुकता है। राजमाता उसे प्रोत्साहित करते हुए आदेश देती हैं तुम उस धूर्त शिवाजी को बांध लाओ, उसका शिर काट लाओ क्योंकि अब शिवाजी का विनाश निश्चित है उसके विनाश का समय आ गया है–

नियमपरिधृतार्णवाम्बरोवा नहि सहते पथविप्लवं कदापि।
बलवति निहिता जगत्प्रतिष्ठा व्यभिचारिता बलिनं निहन्ति नूनम्।।[३७]

राजमाता के शब्दों को सुनकर अफजल खाँ शिवाजी को हल्के सामान्य प्रयत्नों से जीतना चाहता है। अफजल खाँ की सेना आतङ्क फैलाने के लिए मार्ग के दोनों ओर के गांवों को बिना किसी कारण के आग में जलाती हुई तीव्र गति से आगे बढ़ने लगी। लोग अपना घर छोड़कर भागने लगे। अफजल खाँ ने तुलजापुर की देवी की प्रतिमा को तोड़ डाला एवं उसने स्थान-स्थान पर लूट-पाट की। गाँव छोड़कर भागे हुए लोगों ने अपनी करुण गाथा शिवाजी को सुनायी फलतः

शिवाजी ने अफजल खाँ से टकराने की तैयारी की, क्योंकि शत्रु प्रताप दुर्ग को घेरने की तैयारी में था (अफजल खाँ सितम्बर १६५९ ई० में बीजापुर से चलकर पण्डरपुर आया और उसने बिगेवा मन्दिर की मूर्ति को तोड़ा। वहाँ से उसने 'बाई' के लिए प्रस्थान किया। वहाँ उसने शिवाजी का पक्ष लेने के कारण बालाजी नायक निम्बालकर से दो लाख का जुर्माना वसूल किया।उसने आस-पास के मन्दिरों को लूटने और उन्हें अपवित्र करने के लिए अपनी सेना को भेजा। जावली के मोरे शिवाजी के शत्रु थे, अतः अफजल खाँ ने उनकी सहायता से मवाल देश में घुसकर पूना में शिवाजी पर आक्रमण करने का निश्चय किया था; किन्तु शिवाजी अपना डेरा जावली के जंगलों में डाले हुए था, अतः अफजल खाँ ने शिवाजी पर सीधा हमला करने की नीति को छोड़कर उसको जाल में फसाने का यत्न किया और उसने प्रतापगढ़ जाकर डेरा डाला)।[३८] इस सर्ग में ९० श्लोक हैं।

षष्ठ सर्ग का कथानक

शिवराज के गुप्तचर शत्रु छावनी में शत्रु की सेना की स्थिति को जानने के लिए प्रविष्ट हुए। नट-नटिनियों के वेशभूषा में शिवाजी के गुप्तचर सचमुच कलाकार प्रतीत हो रहे थे। अफजल खाँ के आदेश से वे नट ऋतु परिवर्तन का गीतिरूपक प्रस्तुत करते हैं। वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए नट कहता है कि इस ऋतु में कामदेव कामिनियों को अत्यधिक पीड़ा दे रहे हैं एवं कनेर के पीले पुष्प अपने सौन्दर्य की छटा बिखेर रहे हैं। जहाँ एक ओर कोयल की मादक तान संयम चुरा रही है वहीं दूसरी ओर सुन्दर भौहों वाली देवियां आग में घी का काम कर रही हैं–

चलदपाङ्गशरैर्हृदयोन्मुखैर्मलयवातधुतैर्ललिताञ्चलैः।
मदकलैरलकैरपिसुभ्रूवां निजगदे जगदेकमनोरथः।।[३९]

इस सर्ग में वसन्त ऋतु के पश्चात् ग्रीष्म ऋतु का भी बड़ा मनोरम वर्णन है। सूर्य के प्रभाव का फल यह हुआ कि संसार से हिंसात्मक प्रवृत्ति ही लुप्त हो गयी। गर्मी इतनी भीषण हो गयी कि छाया में सभी एकत्र होकर अपना ताप दूर करने के लिए पारस्परिक वैरभाव की परवाह न करते हुए समय व्यतीत करने लगे।

उपरि पुष्करपल्लवमम्भसः सलिलमानमिवाभिनयन् मुहुः।
दलति दन्तिवरो जलजश्रियं तपनतापनतामपि निर्दयम्।।[४०]

भीषण गर्मी का सजीव चित्र सरोवर की दुर्दशा के माध्यम से प्रकट हो रहा है। तालाब कमलों से परिपूर्ण है। जल भी कम नहीं है फिर भी कमलपुष्प तथा पत्ते ताप के कारण मलिनता प्राप्त कर रहे हैं। उसमें भी यह यूथप गजराज गर्मी से व्याकुल होकर जलक्रीड़ा करने आ पहुँचे। प्रतीत होता है मानों जल की गहराई का परिमाण ज्ञात कर रहे हों और अब ये गजराज महाराज जलकेलि पर उतर आये हैं, फलस्वरूप कमलों की शोभा का, कमल वन का सत्यानाश आरम्भ हो गया है। एक तो अपने आप ही कमलों की शोभा भीषण ताप के कारण कुम्हला गयी थी अब गज क्रीड़ा ने उसे और क्षत-विक्षत कर दिया है।

ग्रीष्म वर्णन के पश्चात् वर्षा ऋतु का आरम्भ होता है। प्रिय कोकिल की मीठी तान का समय बीत गया, मेढ़क की टर्र-टर्र का समय आ गया है। वर्षा ऋतु ने ग्रीष्म काल में झुलसे घास पातों एवं सूखी नदी-नालियों को जलपूर्ण बना दिया है, परन्तु प्रियतम की अनुपस्थिति कामिनियों के लिए दुःखदायी प्रतीत हो रही है।

वर्षा बीत चली शरत् का शुभागमन हो गया है। शरद् ऋतु में चन्द्रोदय अत्यन्त सुन्दर लगता है–

धवलयन्नचिरं ककुमाङ्कुलं कुमुदिनीदयिताविरहाक्षमः।
सितविसारिवितानभस्तलादयमुदेति मुदे तिमिरान्तकः।।[४१]

शरत् का वैभव आश्चर्यजनक है, क्योंकि खलिहान अन्न से भर चुका है एवं सरोवरों की शोभा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। शरद्कालीन वसुन्धरा की छवि का वर्णन करना कठिन है। ग्रीष्म का सूर्य वस्तुतः एक विडम्बना है। उसके चारों ओर शत्रु पड़े हुए हैं।

इस प्रकार वीर शिवराज के गुप्तचर गीत, नृत्य, वाद्य के माध्यम से शत्रु के गुप्त रहस्यों को जानकर शिवाजी को बताने के लिए शीघ्रता करते हैं। यह कुशलता इस बात को सिद्ध करती है कि कुशल गुप्तचर अपने अनेक विध उपायों से गुप्त, अन्तर्निहित शत्रु के भावों को स्पष्टतया जान लेते हैं। इस सर्ग में ८६ श्लोक हैं।

सप्तम सर्ग का कथानक

इस सर्ग में अफजल खान के दूत कृष्णाजी भास्कर का शिवाजी के पास आगमन तथा 'सन्देश' कथन वर्णित है। ''उसने (अफजल खाँ ने) कृष्णाजी भास्कर को भेजकर शिवाजी से आने की प्रार्थना की''।[४२]

अथ श्रियो मण्डयिता यशस्वी तमन्तरायं परिचिन्त्य शत्रुम्।
सभासदो भासदमोघमन्त्रान् समाजुहावाऽवसराभियोगे।।[४३]

राजलक्ष्मी के अलङ्कर्ता वीर शिवाजी ने दल-बल के साथ आये हुए अफजल खाँ को आत्म प्रयत्न में घोर बाधक समझ कर उत्तम सफल नीति के प्रयोग में निष्णात अपने मन्त्रियों को प्राप्त अवसर के अनुकूल सम्मति के लिए आग्रहपूर्वक बुलाया।

सचिवगण अफजल खाँ के पूर्व स्वभाव से परिचित थे कि किस प्रकार वह अपने ऊपर उपकार करने वालों के साथ विश्वासघात करता है एवं किस प्रकार वह सम्पूर्ण मानव जाति की अवहेलना करता है।

अफजल खाँ के दूत कृष्णाजी ने शिवाजी के समक्ष आकर आशीर्वचनपूर्वक अभीष्ट वार्ता आरम्भ की–

एवं नृपं मन्त्रिमनीषिजुष्टं दूतः समागम्य रिपोरधृष्टः।
गिरा शुभाशीर्भरयाभिनन्द्य कृष्णाजिनामाऽऽरभतेष्टवार्ताम्।।[४४]

वस्तुतः अफजल खाँ शिवाजी को समझा-बुझाकर बिना रक्तपात किये 'विश्वासघात' नामक अस्त्र के द्वारा अपना कार्य सम्पन्न करना चाहता था, परन्तु कृष्णाजी शिवाजी से कहते हैं कि अफजल खाँ आपके हितैषी हैं–

अव्याहताज्ञेन नृणेन सेर्ष्यं राजन् नियुक्तः पृतनाधिपत्ये।
अपज्जलोऽहेतुहितस्तथापि भवत्कृते नोज्झति सख्यबन्धम्।।[४५]

यूँ तो बीजापुर के सुलतान ने यद्यपि विशेष ईर्ष्यापूर्वक उन्हें सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित किया है तथापि अफजल खान आपका (शिवाजी का) ख्याल करके ही मैत्री सम्बन्ध को छोड़ना नहीं चाहते हैं। वे स्वयं को आपके पिता का मित्र मानते हैं। वे स्नेह सरिता प्रवाहित

करना चाहते हैं। अफजल खाँ वीर हैं और आप जैसे वीरों की प्रशंसा करते हैं। आपके लिए उनसे मैत्री करना श्रेष्ठ मार्ग है, अन्यथा वह अपना विरोध होने पर सर्वनाश को उद्यत हो जाते है।

यह आपके लिए सौभाग्य की बात है कि अफजल खाँ आपको अपना अनन्य मित्र बनाना चाहते हैं। आपके लिए उनसे सन्धि कर लेना उचित है। अफजल खाँ की ही शक्ति से बीजापुर सुरक्षित है। ईश्वर करें कि आपकी माँ जीजाबाई आपको अपलक नेत्रों से वर्षों तक देखती रहें। वास्तव में कृष्णाजी यह स्पष्ट कर रहे है कि अफजल खाँ से युद्ध करने पर शिवाजी को दुःखसागर के दर्शन करने पड़ेंगे जबकि सन्धि द्वारा उनकी उन्नति का मार्ग दिखायी देगा। इतना कहकर कृष्णाजी अपने लिए उत्तर की प्रतीक्षा तक रुकने की बात कहते हैं।

शिवाजी अतिथि भक्त थे अतः वे कृष्णाजी से आतिथ्य का अवसर देने की बात बड़े आदर के साथ कहते हैं। कृष्णाजी शिवाजी का आतिथ्य स्वीकार करते हुए उनकी भरपूर प्रशंसा करते हैं–

निरामयं वीक्ष्य विभो वपुस्ते मनश्च बाधापटलेऽपि युक्तम्।
अवैमि नूनं भरतावनिर्मे न स्तोकपुण्येति जगाद विप्रः।।[४६]

अवश्य ही यह हमारी मातृभूमि अनन्त पुण्यमयी है, नहीं तो तुम्हारे समान वीर पुरुष इस पृथ्वी पर क्यों अवतरित होता? कृष्णाजी शिवाजी की निश्छल आत्मस्थिति जानकर अत्यन्त प्रभावित हुए। कृष्णाजी ने कहा कि शिवाजी तुम बुद्धिमान हो, धैर्यपूर्वक कर्त्तव्य का विचार करके सेनापति के कथन का सम्मान करो। इस प्रकार अतिथि के मुख से लोकधर्म का विवेचन सुनकर शिवाजी को देशोद्धार सहज प्रतीत होने लगा। (उन्हें (शिवाजी को) कृष्णाजी भास्कर से अफजल खाँ के कपटपूर्ण विचार की गन्ध मिल गयी थी)[४७] वार्तालाप के पश्चात् शिवाजी अतिथि कक्ष से कुछ कार्यों के सम्पादनार्थ बाहर चले गये। इस सर्ग में ९२ श्लोक हैं।

अष्टम सर्ग का कथानक

अष्टम सर्ग अफजल खान के वध पर आधारित है। शिवाजी स्पष्ट रूप में अपने गुप्तचरों के माध्यम से एवं कृष्णाजी की बातों से जान चुके थे कि अफजल खान उन्हें मारना चाहता था।

अफजल खान द्वारा भेजे गये दूत की बातें सुनकर शिवाजी ने शत्रु के छल प्रपञ्च को ध्वस्त करने का विचार किया–

अजस्रकौटिल्य खलोऽधुना वृकः स्वजाले लभतां पतन्नतः।
स्वशाठ्यसंक्षोभित शाठ्यशासिताः स्वयं शठा एव दिशन्तु सत्पथम्।।[४८]

उचित है, इस बार यह दुष्ट स्वयं अपनी ही माया में फंसकर अपने व्यवहार में लायी कुटिलता का फल आप स्वयं चखे। अपने दुष्टता से दूसरों में भी दुष्टता प्रेरित करके तथा उससे विपन्न होकर स्वयं शठजन ही अब सन्मार्ग पर चलने के लिए आगे आयें। **'शठे शाठ्यम् समाचरेत्'** का सिद्धान्त ही कुटिलता को विनष्ट करने का सरल मार्ग है।

शिवाजी के सभामण्डल के सभी सदस्य चिन्तित थे, पर शिवाजी के मुखमण्डल पर एक दिव्य तेज दिखायी पड़ रहा था। शिवाजी ने सभा के समक्ष कहा हैं कि यह दुष्ट भेड़िया अफजल खान अपनी सेना को सङ्कट में डालने से पहले ही युद्ध विजय की इच्छा कर रहा है, इस बार यह स्वयं अपने ही बनाये जाल में फँसेगा।

तब शास्त्र ज्ञानी महाआमात्य ने कहा–

समर्थसेविन् यदनर्थजीवितः श्रयत्यरिः सख्यमपास्य कैतवम्।
तदोजसा छिद्रवतैव भाव्यते शठेऽथवा शाठ्यमकृत्रिमाग्रहः।।[४९]

यदि अफजल खाँ सचमुच मैत्री की अभिलाषा रखता है तो स्पष्ट है कि उसकी मित्रता में कहीं न कहीं तो धृष्टता अवश्य छिपी है। ऊपर से शक्तिशाली होने का नाटक करने वाला वास्तव में यह अफजल खान 'निर्बल' है फिर भी दुष्ट के साथ दुष्टों जैसा ही व्यवहार उचित है। इसका विनाश ही उचित है तभी बीजापुर का कल्याण होगा। तब शिवाजी ने कहा–

स्वतन्त्रतासिद्धिनवाध्वरोत्सवे प्रदीप्तहव्याशनहव्ययोग्यताम्।
वहन्तु सर्वेऽपि तथापि निर्भयं समेधनीयैव विकस्वरा शिखा।।[५०]

स्वतन्त्रता सिद्धि के लिए आयोजित इस महान् यज्ञोत्सव में सभी को हवन में हव्य होने की योग्यता को निर्भय होकर धारण करना है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सभी को आत्मबलिदान का सङ्कल्प

लेना चाहिए, क्योंकि देश की रक्षा के लिए हम सभी वचनबद्ध हैं। राष्ट्र की सतत सुरक्षा होनी ही चाहिए।

उधर पहाड़ी तलहटी में सुसज्जित प्रबन्ध देखकर अफजल खाँ व्यर्थ ही प्रलाप कर रहा था। तब गोपीनाथ (शिवाजी के दूत) ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि ये बहुमूल्य उपकरण सदा श्रीमान् (अफजल खान) का चरण सानिध्य पाकर सेवा द्वारा कृतकृत्य हों; किन्तु शिवाजी को आपकी मैत्री इन सैनिकों के कारण भयभीत एवं सशङ्कित करेगी अतः आप इन्हें शीघ्र दूर करें। अफजल खाँ इस बात (सैनिकों को हटाने के लिए) के लिए तैयार हो गया।

इधर शिवाजी फौलाद के बने हुए अभेद्य लौहटोपों को पगड़ी के नीचे पहनकर, शरीर को कवच से सुरक्षित कर, हाथ की मुट्ठी के अन्दर बघनखा छिपाकर एवं मणिबन्ध में तेजधार वाला छूरा गुप्त रूप से रखकर, सुसज्जित परिधान से पूर्ण दो अनुचरों के साथ जीजाबाई का चरण स्पर्श करने गये। माँ का आशीर्वाद लेने के पश्चात् शिवाजी अफजल खाँ के पास गये।

जब शिवाजी अफजल खाँ के समीप पहुँचे हैं तब वे दोनों परस्पर मित्रता का बखान करने लगे, पर उनके मन में कुछ और ही भावना (कूटनीति) थी। सेनापति के पास जाते हुए वीर शिव का हृदय बरबस धड़कने लगा–

इतः शिवाजिस्त्वरितं पुरो ययावसौ विमुच्यासनमुत्थितस्ततः।
उभावपीद्धोत्कटसंशयोरसौ परस्पराश्लिष्टतनू विरेजतुः।।[५१]

एक तरफ से शिवाजी तथा दूसरी तरफ से अफजल खाँ आया एवं वे दोनों एक दूसरे की भुजाओं में सुशोभित हो गये हैं, तभी सहसा अफजल ने शिवाजी के सिर को एक हाथ से दबाकर दूसरे हाथ से तलवार से वार किया। शिवाजी पूर्णतः तैयार एवं तत्पर थे–

स यावदाकृष्य कृपाणमत्रपः शिरः प्रतीत्या सह भेत्तुमैक्षत।
द्रुतं शिवो व्याघ्रनखेन विद्विषश्चकर्ष तावद्विशतोदरं बहिः।।[५२]

अभी अफजल खाँ कुछ कर पाता उससे पहले ही शिवाजी के बघनखे ने भीतर घुसकर शत्रु के पेट की अतड़ियाँ बाहर खींच

ली। शिवाजी ने छुरे से हृदय पर प्रहार करके अफजल खाँ के शक्तिहीन शरीर को पृथ्वी पर गिरा दिया। अफजल खाँ ने चींखकर शिवाजी को तुरन्त छोड़ दिया। सैयद बांदा ने तलवार से शिवाजी के सर पर चोट की; किन्तु उनकी लोहे की टोपी ने उनकी रक्षा की। जीवमहल ने सैयद बांदा का दाहिना हाँथ काटकर उसे मार दिया।''[५३] (यह घटना २ नवम्बर १६५९ ई० को घटी थी)[५४] इस प्रकार अफजल खाँ के वध के साथ अष्टम सर्ग समाप्त हुआ।

नवम सर्ग का कथानक

इस सर्ग में 'बाजीप्रभु देशपाण्डे' का शौर्य वर्णित है। बाजीप्रभु देशपाण्डे शिवाजी को आधी सेना के साथ सुरक्षित 'विशाल दुर्ग' जाने के लिये कहा। सेनापति (बाजीप्रभु देशपाण्डे) ने समय की मांग को देखते हुए सेना को दो भागों में बाँट दिया एवं राजा (शिवाजी) को युद्ध करने से हटा दिया। बीजापुर के सुल्तान ने 'कारनूल' जिले के अधिकारी सिद्दी जौहर को शिवाजी पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। (१९६० ई०) बाजी घोरपरे, रुस्तम खाँ जमाँ, फजल खाँ और दूसरे अधिकारी उसकी (सिद्दी जौहर की) सहायता के लिये भेजे गये। सिद्दी ने शिवाजी को 'पन्हला' के दुर्ग में घेर लिया और साहस से उसका घेरा डाल दिया। शिवाजी ने सिद्दी से मेल (मित्रता) कर लिया; किन्तु फजल खाँ (अफजल खाँ का पुत्र) मराठा सरदार का जानी दुश्मन था, उसने किले को छीनने का भरसक प्रयास किया। अतः शिवाजी को 'पन्हला' से २७ मील दूर पश्चिम में विशालगढ़ भाग जाना पड़ा।''[५५] सेनापति ने अपने सैनिकों में उत्साह का संचार करते हुए कहा कि वे आज अपने शौर्य प्रदर्शन के फलस्वरूप शत्रुओं को तलवार का स्वाद चखाएँ–

द्विडद्रिसम्भवापगाप- दुत्कटोर्मिचञ्चला-
ऽम्बुपूरसन्तराय सेतवो वयं प्रजापतेः।
महाभटास्तदद्य विक्रमाङ्कविस्मितेक्षणान्
प्रशिक्षयन्तु जिह्मजल्पनायुषोऽसिलाघवम्।।[५६]

अफजल खाँ का पुत्र अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने का इच्छुक था, अतः उसने विशाल सेना के साथ 'पन्हला दुर्ग' घेर

लिया। सेनापति ने शत्रु सेना को देखा, दोनों सेनाओं के बीच युद्ध आरम्भ हुआ, विरोधी यमलोक पहुँचने लगे। सेनापति ने कहा–

यतस्व रक्षितुं स्वदेशजीवनं निरापदं
जयस्व रक्षितु स्वदेशजीवनं निरापदम्।
सहस्व रक्षितुं स्वदेशजीवनं निरापदं
म्रियस्व रक्षितुं स्वदेशजीवनं निरापदं।।[५७]

स्वतन्त्रता हमारा अभिनन्दन कर रही है। वीरों मातृभूमि के निरापद जीवन की रक्षा के लिये मर मिटो। अपनी सेना के केवल चौथाई भाग को ही जीवित देखकर सेनापति आकाश की ओर देखते हुए अन्तिम लौ वाले दीपक के समान 'विशालगढ़ दुर्ग' वाली दिशा की तरफ देखने लगे। वे सोचने लगे कि हे महाराज आपको कहाँ विलम्ब हो रहा है? तभी एकाएक तोप की ध्वनि सुनायी पड़ती है। तब सेनापति ने कहा कि 'मैंने सुन लिया' अब महाराज शिवाजी के ऊपर कोई विपत्ति नहीं है वे सुरक्षित किले में पहुँच चुके हैं। उन्होंने सैनिकों से शिवाजी की सेवा में तत्पर रहने को कहा। सेनापति के घावों से खून बह रहा था, पैर लड़खड़ा रहे थे।

असुप्रसूनमेव शोणिताम्बुधारमिश्रितं
गतस्पृहं स्वदेशमातृगुप्तये प्रयच्छता।
अनीकनायकेन साऽर्चनासृतिः प्रचारिता
स्वतन्त्रता यदेकनिष्क्रिया जनेषु गीयते।।[५८]

रक्त जलधार मिश्रित, उत्सुक प्राण पुष्पों को निर्मम हो मातृभूमि की भेंट चढ़ाने वाले उस सेनापति ने त्याग की उस परम्परा को प्रतिष्ठित किया, जिसकी उपलब्धि को ही संसार स्वतन्त्रता के नाम से सम्मानित करता है। इस प्रकार विशालगढ़ दुर्ग में शिवाजी पहुँच जाने पर बची हुई सेना ने निर्भय महान् यश को प्राप्त करके रणभूमि का परित्याग किया। ''२ अक्टूबर, १६६० ई० में 'पन्हला' दुर्ग का पतन हो गया।''[५९] इस सर्ग में ७९ श्लोक है।

दशम सर्ग का कथानक

इस सर्ग में मुगल सेनापति शाइस्ता खान के पराजय का वर्णन किया गया है–

अथ बन्धुकुलं कुलाभिमानी वसुमत्या विवरेषु शाययित्वा।
अवरङ्गनृपोऽपनीतभीतिः कुटिलां याम्यदिशं दिदृक्षमाणः।।[६०]

दिल्लीपति मुगल बादशाह आलमगीर औरङ्गजेब अपने विरोधी भाइयों तथा अन्य बन्धुजनों को सदा के लिये सुलाकर दक्षिण दिशा विजय की लालसा में कई बार अपमानित हुआ। औरङ्गजेब अवश्य ही दिल्ली का बादशाह हो गया था; किन्तु उसके मन में बीजापुर को हस्तगत करने की तीव्र लालसा थी। औरङ्गजेब ने अपने 'मामा शायिस्ता खान' को दक्षिण भारत को अपने कब्जे में करने का आदेश दिया।

शायिस्ता खान अनेक प्रकार से शिवाजी को परेशान करने लगा। चाकन दुर्ग (शिवाजी के हाथ से पूना से १८ मील दक्षिण में स्थित चकन का किला भी मुगलों ने ले लिया। उन्होंने शिवाजी के उत्तरी प्रदेश पर उस समय आक्रमण किया जबकि बीजापुर की सेना शिवाजी को 'पन्हला' में घेरे हुए थी)[६१] के भयङ्कर युद्ध में क्षत्रपति शिवाजी के सेनापति 'नारसाल' शत्रु के संख्या बल के कारण पराजित हो गये–

अथ चङ्गणदुर्गदुर्घटाजौ द्विषदुद्धूतबलोऽपि नारसालः।
करिकुम्भभिदुग्रकेसरीव ददृशे छिन्नकरासिरप्यबाधः।।[६२]

चाकन किले पर अधिकार पाने के सङ्घर्ष में शत्रु ने भलीभाँति जान लिया था कि यदि हम अन्य किलों को जीतने चले तो हमें निश्चित रूप से भारी धन, जन की हानि उठानी पड़ेगी। अतः शत्रु ने अन्य किलों को जीतने की लालसा अपने मन में दबा ली।

'अम्बरखेड़ा' के युद्ध में क्षत्रपति ने मुगल सैनिकों पर उदारता दिखायी, इसका एकमात्र कारण था कि 'चाकन' के दुर्गपाल के प्रति मुगलों ने उदारता दिखायी थी। सेनापति के हाथ कट जाने पर शत्रु ने मुगल सेना को तुरन्त रोककर मुगल सेनापति ने वीर 'नारसाल' के अजेय शौर्य का यशोगान किया था।

युद्ध में सेनापति 'पालकर' ने 'कोंकण' प्रदेश की रक्षा में अपना शौर्य प्रदर्शन किया। शिवाजी के सैनिकों ने शत्रु के 'पल्लीवन', 'संगमेश्वर'

आदि किलों को शत्रु की सेना, खजाना आदि के साथ हरण कर लिया। क्षत्रपति और मुगलों का सङ्घर्ष रस्साकशी के समान था–

घनघर्मनिभावुभौ सदर्प शरदीवादिरतं मिथोऽभियुक्तौ।
क्षणमेव मनोरथं निषेव्य पुनरापात-निपातमन्वभूताम्।।[६३]

जनता का मनोबल तोड़ने के लिए शायिस्ता खान धन तथा बल का भरपूर उपयोग कर रहा था। शिवाजी में अपने कार्य के प्रति जो अनवरत उत्साह, लगन, तत्परता, एकनिष्ठता तथा संयमित जीवन दृष्टिगत होता है वैसा उनके शत्रुओं में नहीं दिखलायी पड़ता। कामलीला में निमग्न शायिस्ता खान वर्षाकाल में आमोद-प्रमोद में समय व्यतीत कर रहा था; किन्तु शिवाजी तो शत्रु कण्टक दूर करने का उपाय कर रहे थे। शिवाजी योजना के अनुसार वेश बदल करके यह प्रसिद्ध है कि शिवाजी ने बारातियों के वेश में पूना में प्रवेश किया था।[६४] अपने दो सौ सैनिकों के साथ पूना में प्रविष्ट हुए –

व्यपदेशनिवारिताध्वबाधः शिवराजो हठरक्षितस्ववेषः।
द्विशतेन सह स्वसैनिकानामविशत् पुण्यपुरं सपत्नरूद्धम्।।[६५]

शिवाजी ने शायिस्ता खान को पूना से खदेड़कर भगा दिया, इससे शिवाजी की कीर्ति अन्य क्षेत्रों में प्रसारित हो गयी। वस्तुतः अफजल खान के पराजय के बाद यह दूसरी महत्त्वपूर्ण सैनिक सफलता थी। यद्यपि रात्रि का समय था। मध्य रात्रि में शिवाजी ने शायिस्ता खान के कमरे (शाइस्ता खान उसी मकान में ठहरा था जहाँ शिवाजी ने अपना बचपन बिताया था)[६६] में नंगी तलवार लेकर प्रवेश किया। उन्होंने शायिस्ता खान को घेर लिया एवं वे शायिस्ता खान पर आक्रमण के लिये आगे बढ़े। शायिस्ता खान ज्यों ही पलायित होना चाहता था त्योंही कि शिवाजी की तलवार के हल्के आघात से उसकी दो अंगुलियां कट गयी।[६७] (वह अपने हाथ का अंगूठा खोकर अंधेरे में भाग गया)।[६८]

कक्ष के भीतर यह सब हो रहा था एवं कक्ष के बाहर मराठे सैनिकों ने महल के रक्षकों को घेर रखा था। शायिस्ता खान का युवा पुत्र पिता की पलायनवादी दशा को देखकर लज्जित एवं क्रोधित हुआ। (शाइस्ता खान का पुत्र अब्दुल फतेह अपने पिता की सहायता के लिये लपका; किन्तु कत्ल कर दिया गया)[६९] रात्रि में चारों तरफ

से रोने-चिल्लाने की गूँजती आवाज को सुनकर सैनिक शायिस्ता खान के महल की ओर दौड़े। सेनापति शायिस्ता खान बच गया। क्षत्रपति तूफान के समान आये और निकल गये। सभी लोग यह सब देखकर आश्चर्यचकित थे।

शिवाजी शत्रु को दिग्भ्रमित करने के लिये ऐसा उपाय रचते थे कि शत्रु पक्ष को कोई सूत्र ही न मिले। क्षत्रपति अपने सैनिकों के साथ सुरक्षित अपने दुर्ग में पहुँच गये। लोग उन्हें देखकर प्रसन्न हुए। (यह घटना १५ अप्रैल १६६३ ई० को घटी। इससे शिवाजी की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी और शाइस्ता खाँ का वहाँ अपमान हुआ)।[७०]

मराठों के इस आकस्मिक अभियान ने परिघा परकोटे को तोड़ दिया। सैनिकों ने सूरत को मथ डाला। शिवाजी ने 'शायिस्ता खान' एवं 'सूरत' के अहङ्कार को चूर्ण कर दिया। (औरङ्गजेब ने क्रुद्ध होकर उसे दण्ड देने के लिये बंगाल भेज दिया)[७१] मुगल बादशाह औरङ्गजेब के युद्ध की इच्छा को शिवाजी ने उसी की सम्पत्ति से तृप्त करके 'सूरत' के साथ 'दिल्ली' को भी ग्लानि से भर दिया। इस सर्ग में १०५ श्लोक है।

एकादश सर्ग का कथानक

इस सर्ग में शिवाजी की गुरुभक्ति का वर्णन है। त्रिपाठी महोदय जी पर कालिदास का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित है। उन्होंने रघुवंश महाकाव्य के द्वितीय सर्ग की छाप इस सर्ग पर छोड़ी है।

इस सर्ग का महत्त्व मात्र इसके काव्यगत वैशिष्ट्य के कारण नहीं अपितु इसके अतिरिक्त भी इसका एक अपना महत्त्व है। यह सर्ग श्री उमाशङ्कर शर्मा 'त्रिपाठी' जी के महाकाव्य का प्रेरणा स्रोत है।[७२]

अथ श्रिया मुक्तचलस्वभावया सनिर्दयश्लेषनिखातमुद्रया।
निषेवितो भारतभाग्यमण्डनः शिवोऽश्रयन्नीतिमनीतिदर्पभित्।।[७३]

लक्ष्मी ने शिवाजी के साथ विशेष अनुराग कर लिया था। भारत के सौभाग्यमण्डन वीर शिवाजी भी अन्यायियों का दमन करके अपने कार्य को सम्पन्न करने में प्रयासरत थे। शिवाजी के हृदय में समर्थगुरु बाबा रामदास के पास जाने की प्रबल उत्कण्ठा जागृत हुई।

वे घोड़े पर आरूढ़ होकर गुरु आश्रम पहुँचे।

आश्रम में कोई हलचल नहीं थी। शिवाजी का धैर्य किसी अप्रिय घटना की आशङ्का से टूट रहा था। शिवाजी ने गुरु को प्रणाम करने हेतु उनके कक्ष में प्रवेश किया। शिवाजी ने उनके पास कुछ शिष्यों को पाया।

शिवाजी ने देखा कि गुरु समर्थ उदर की तीव्र पीड़ा से अधीर हैं; किन्तु गुरु ने शिवाजी को सान्त्वना दिया। उन्होंने शिवाजी से देश की कठिन परिस्थितियों में पराक्रम प्रदर्शन की बात कही। उन्होंने कहा– मेरा आशीर्वाद मेरे न रहने पर भी तुम्हारे साथ सदैव रहेगा।

शिवाजी ने कहा रोग के कारण का निवारण हो जाने पर रोग दूर हो जाते हैं। कृपया यह बतायें कि इस उदर शूल के निवारण हेतु किस औषधि की आवश्यकता है। तब सङ्केतग्राही गुरुभ्राता ने कहा–

तदेङ्गितज्ञेन सतीर्थ्यवर्त्मना शनैर्महीपाय निवेदितो विधिः।
मृगेन्द्रकान्तास्तननिस्मृतं पयोऽथवा गदैकान्तकरा विदेहिता।।[७४]

उदर रोग दूर करने हेतु 'सिंहनी के स्तन के दूध' की आवश्यकता है। यही एकमात्र औषधि है जिसे महाराज के 'उदर शूल' का निवारण हो सकता है।

इतना सुनते ही शिवाजी प्रसन्न हो गये, उन्होंने इसे दुर्लभ कार्य नहीं माना। शिवाजी ने सिंहनी का दूध लेने के लिये बीहड़ जङ्गल की ओर प्रस्थान किया। सहसा उन्हें जटाजूट धारण किये हुए एक योगी ने रोका। उसने कहा– तुम सचमुच गुरुव्रती हो, पर यह कार्य मूर्खतापूर्ण है। सिंहनी का दूध लेने जाओंगे तो तुम्हारे प्राण का नाश हो जायेगा। इस कार्य को करने की इच्छा त्याग दो।

तुम्हारे कन्धे पर देश रक्षा का महान् दायित्व है। इस भावनात्मक कार्य के पीछे शरीर का विनाश करना उचित नहीं है। यदि शेरनी का दूध आवश्यक ही है तो अकेले क्यों घूमते हो, सैनिकों के साथ शेरनी की खोज क्यों नहीं करते हो? एकाएक बिजली तड़कने लगी; किन्तु गुरुभक्त शिवाजी अपने फैसले पर अडिग रहे। उन्होंने कहा कि गुरुदेव के आश्रम में सभी जीव बिना बैर भाव के रहते हैं–

निरीक्ष्य शुष्काधररागमाकुला मृगेन्द्रकान्ता मृगशावकं स्वयम्।
परिस्नुतस्तन्यरसैरिवामृतैरपत्य- सामान्यधियाऽनुकम्पते।।[७५]

मृग-शिशु के शुष्क अधरों को देखकर व्याकुलहृदया शेरनी स्वयं अपने स्तन के दूध द्वारा सुतनिर्विशेष दृष्टि से वात्सल्य विह्वल हो जाती है। भक्ष्य मृग को सिंहनी द्वारा दूध पिलाया जाना आश्रम की निर्वैरता का सामान्य प्रमाण है।

शिवाजी ने मुनि से कहा कि मैं अपनार सङ्कल्प पूर्ण करूँगा। समय अपव्यय के भय से शिवाजी मुनि को प्रणाम करते हुए आगे बढ़े। तभी उन्हें एक सिंहनी दिखायी पड़ी–

तदैव वर्षद्घनविस्मितेक्षणं निजास्यलग्नं नवशावकं प्रसूः।
महातरुस्कन्धतले वनेश्वरी निनाय मेघस्यदभिन्नकेसरा।।[७६]

सिंहनी अपने नवजात शिशु को मुँह में दबाये, वर्षा से उसकी रक्षा करने के लिये बरगद के वृक्ष के नीचे ले आयी। उसका शरीर भींग रहा था। उसका शिशु पहली बार वर्षा देखकर आश्चर्यचकित हो रहा था। शिवाजी सिंहनी को देखकर प्रसन्न हो गये, उन्होंने सिंहनी से कहा–

अशेषसत्त्वार्जववृत्तिसत्क्रियो जगदगुरुर्जीवितसंशयच्छिदः।
ममापदेशेन पयोऽमृतस्य ते स्थितोऽस्ति पात्राभिमतोऽतिथिः शुभे।।[७७]

कल्याणी गुरु समर्थ का जीवन सङ्कट में है वे मेरे बहाने (द्वारा) तुम्हारे दुग्ध की याञ्चा कर रहे हैं। तुम्हारे उत्कृष्ट अतिथि के रूप में तुम्हारी अभीष्टतम कृपा के पात्र हैं। इतना सुनकर सिंहनी शान्तिपूर्वक खड़ी हो गयी एवम् उसने अपनी मन्द गर्जना के साथ शिवाजी को दुग्ध लेने की आज्ञा दी। शिवाजी ने दुग्ध लेकर शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान किया। सहसा अद्भुत चमत्कार हुआ, उन्होंने जटाजूट धारण किये हुए मुनि साथ ही दुग्ध देने वाली सिंहनी की झलक देखी, ध्यान किया तो समर्थ गुरु को उपस्थित पाया।

गुरु ने शिवाजी से कहा– आज तुम्हारे सहपाठी बन्धु तुम्हारी प्रतिज्ञा से संशयविहीन हो गये। स्पष्ट सङ्केत है कि समर्थ महाराज ने शिष्यों की इस भ्रान्ति को सुन लिया था कि शिवाजी की पार्थिव प्रभुता

के कारण गुरु की दृष्टि में शिवाजी का विशेष स्थान है।[७८] इतना कहकर गुरु ने शिवाजी को गले से लगा लिया। उनके नेत्रों से अश्रुपात होने लगा। गुरु-शिष्य की इस परम्परा को देखकर जनसमूह स्तब्ध हो गया। इस सर्ग में १११ श्लोक हैं।

द्वादश सर्ग का कथानक

इस सर्ग में जयसिंह के द्वारा शिवाजी के समक्ष सन्धि प्रस्ताव का वर्णन है और शिवाजी का आगरा गमन वर्णित है।

अभ्रंलिहोर्मिसम्पातघातैरिव शिवक्रमैः।
दिल्लीदक्षिणराज्यश्रीर्नौरिवाब्धौ व्यपद्यत।।[७९]

शिवराज के अभियानों से दिल्ली की सुरक्षा व्यवस्था को खतरा हो गया था। मुगल साम्राज्य असहाय हो गया था। जिस समय दिल्लीपति औरङ्गजेब का पुत्र (शाहजादा मुअज्जम को औरङ्गजेब ने दक्षिण का सूबेदार बनाया था वह औरङ्गजेब का मझला पुत्र था) शासन का ध्यान छोड़कर सुरासुन्दरी का आराधक बन गया था उसी समय मराठों ने अपना अभियान तीव्रतर कर दिया।

मुगल सेनापति महाराज जसवन्त सिंह ने 'पन्हला' दुर्ग पर आक्रमण कर उसे हस्तगत करना चाहा पर उसे पराजय का मुँह देखना पड़ा। उसी समय शिवाजी को पितृ का वियोग झेलना पड़ा–

पितरि स्वरिते खिन्नं तं श्रियो राज्यवर्धनाः।
सान्त्वयितुमिवाजग्मुर्ब्रह्मदेवमृचः शिवम्।।[८०]

जिस समय पिता शाहजी भोंसले दिवंगत हुए उस समय दुःखी शिवाजी को सान्त्वना प्रदान करने हेतु राज्य को समृद्ध करने वाली सम्पत्तियाँ उनके पास ठीक उसी प्रकार एकत्र हुई जिस प्रकार ब्रह्माजी के पास ऋचाएँ उपस्थित हुई थीं।

औरङ्गजेब साम्राज्य की चिन्ता में दिन-रात दुःखी रहने लगा, तभी उसकी दृष्टि आमेर नरेश महाराज जयसिंह पर पड़ी। महाराज जयसिंह औरङ्गजेब के विश्वासपात्र थे एवं पराक्रमी होने के साथ-साथ कूटनीतिज्ञ भी थे। जयसिंह ने अपने प्रयासों द्वारा शिवाजी को 'विजय'

के निकट जाने से रोका।[८१] जयसिंह ने बड़ी चतुराई से हजार घुड़सवार सैनिकों के साथ अपनी बुद्धि का उपयोग करते हुए शिवाजी को पराजित करना चाहा। जयसिंह पूना को हस्तगत करने का इतना इच्छुक था कि उसने औरङ्गजेब के प्रस्ताव (कोंकण विजय) को महत्त्व नहीं दिया। शत्रुओं ने 'पुरन्दर' नामक किले को घेर लिया, मुगलों ने अपनी सेना के आधे भाग से महाराष्ट्र के लोगों पर भयङ्कर अत्याचार किया जो अवर्णनीय है। शत्रु 'रुद्रमाल' नामक उपदुर्ग पर अधिकार करने में असमर्थ सिद्ध हुआ।

औरङ्गजेब ने मिर्जा राजा जयसिंह को परामर्श दिया था कि किलेदारों या उनके पहरेदारों को घूस का प्रलोभन देकर बिना युद्ध के ही किलों पर अधिकार कर लिया जाय, किन्तु सेनापति राजा जयसिंह ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया–

अयुद्ध्यैव वशीकर्तुमुत्कोचेनार्यभूभटान्।
मनोरथं निनिन्दैव दिल्लीशे पृतनापतिः।।[८२]

अन्त में 'रुग्रमाल' उपदुर्ग से निकल जाने का प्रयत्न करने वाले उन मराठा सैनिकों ने उपदुर्ग को छोड़कर किले में अपनी स्थिति को जमाया। शत्रुओं को उत्कृष्टतम युद्ध लीला दिखाने की इच्छा वाले दुर्गाध्यक्ष 'मुरार प्रभु' ने इन्द्रजाल सा फैला दिया। मुगल सेना 'मुरार प्रभु' को देखकर आश्चर्यचकित थी। मुगल सेना मुरार को जीवित ही पकड़ लेने की इच्छा कर रही थी, पर मुरार ने अगणित सैनिकों को मृत्यु के भेंट चढ़ाकर उनकी इच्छा पूरी न होने दी। वे स्वयं भी परलोक सिधार गये। दुर्गपाल 'मुरार' के शौर्य से उत्साहित 'पुरन्दर' दुर्ग के सैनिकों ने दुर्गरक्षा के लिये कमर कस ली। शत्रु 'पुरन्दर' दुर्ग अब जीत पाने में असमर्थ हो गया। महीनों बीत गये पुरन्दर दुर्ग पर घेरा डालने वाली मुगल सेना कुछ भी न कर सकी।

इधर शिवाजी की सैन्य शक्ति 'पुरन्दर' दुर्ग की रक्षा करते-करते क्षीण हो रही थी।[८३] शिवाजी ने नीति निर्धारण हेतु एक सभा बुलायी, सेनापति ने कहा अर्थ-अनर्थ का विवेक रखने वाली व्यक्ति की क्रिया पद्धति सदैव अभ्युदय को प्राप्त करती है। 'युद्ध' या 'सन्धि' में से कौन-सा मार्ग किस समय श्रेयस्कर है?

उनका ध्यान एक कुशल सेनापति को अवश्य रखना चाहिए। औरङ्गजेब निश्चय ही बलवान् हैं जयसिंह भी वीरश्रेष्ठ हैं, हम अल्पसाधन हैं अतः सन्धि ही इस समय श्रेयस्कर मार्ग है।

महाराष्ट्र सन्धि करना चाहता है; किन्तु दिल्ली युद्ध चाहती है इस स्थिति में सन्धि भी सम्भव नहीं है। दिल्ली से मित्रता करना भी अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारने के समान है। दिल्ली का बादशाह हमारे अस्तित्व मात्र से द्रोह करता है, ऐसी स्थिति में यह विचित्र मैत्री पर्व उपस्थित हुआ है। दिल्ली से मित्रता की तीन शर्ते हैं–

१. हिन्दुत्व के आग्रह का परित्याग

२. देवताओं, शास्त्रों एवं वेदों का उन्मूलन, एवं

३. अभारतीय म्लेच्छ वर्ण से अनुराग।

आर्याभिधाग्रहत्यागो देवश्रुतिनिषूदनम्।
म्लेच्छवर्णाभिरक्तिश्च दिल्ली सख्याद्यपंक्तयः।।[८४]

अतः सन्धि भी बेमेल और असन्तुलित है। मैत्री बढ़ाने का तो प्रश्न ही नहीं है। इतना कहकर जब सेनापति ने अपना स्थान ग्रहण किया तब क्षत्रपति ने दिशा निर्देशन हेतु 'पन्तप्रधान' से आग्रह किया। 'पन्तप्रधान' नीतिनिपुण थे। उन्होंने कहा कि सेनापति ने उचित कहा है पर कुछ कहना चाहिए इसलिए यही कहता हूँ कि हमारे लिए तात्कालिक लाभ-हानि से बढ़कर इस समय विशेष महत्त्व 'सुदूरगामी' हानि लाभ का है। इस समय हमारे लिए अपने अस्तित्व की रक्षा करना ही सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। सहसा भावना के वशीभूत होकर कार्य करना ठीक नहीं है। विवेकपूर्ण निर्णय ही उचित है। साथ ही अन्य किसी विकल्प के अभाव में प्रजा के कल्याणार्थ सन्धि उपयोगी है।

शिवाजी ने उनके इस प्रस्ताव की प्रशंसा की। क्षत्रपति आमेर के अधिपति जयसिंह के पास गये। सभी प्रहरी उन्हें निरस्त्र देखकर सशङ्कित हो गये।

जयसिंह की शर्ते सर्वग्रासी थीं पर क्षत्रपति ने कुछ किलों को सौंपकर तथा बीजापुर के विरुद्ध दिल्ली की सहायता करना स्वीकार

कर जयसिंह को सन्तुष्ट किया।[८५] जयसिंह गुणग्राही थे। उन्होंने शिवाजी का सम्मान किया। यह देखकर मुसलमान सेनापति जयसिंह से रुष्ट थे। वे उनकी आज्ञाओं का पालन अनिच्छापूर्वक कर रहे थे। राजा जयसिंह ने अपनी सेना में अन्तर्विस्फोट देख, क्षत्रपति एवं अपनी सेना को एक साथ रखना उचित न समझा एवं क्षत्रपति की सेना का अलग प्रबन्ध कर दिया। उन्होंने क्षत्रपति से आग्रह किया कि वे आगरा दरबार में जाकर बादशाह औरङ्गजेब से मिल लें।

जयसिंह के समझाने पर औरङ्गजेब ने शिवाजी को लक्ष्मी का प्रतिबिम्ब माना। औरङ्गजेब को प्रतीत हुआ कि जिसके साथ शिवाजी होंगे विजय भी उसी की होगी (जयसिंह ने अपने पत्रों में क्षत्रपति की निष्ठा का वर्णन किया था।) राजा जयसिंह ने भी विश्वास दिलाया कि दिल्ली क्षत्रपति के प्रति उदार रहेगी।[८६] शिवाजी के मन्त्रियों ने जब इस अप्रत्याशित परिवर्तन को देखा तो उनके हृदय में भयङ्कर अमङ्गल की आशङ्का हुई। माता जीजाबाई ने सबको समझाते हुए कहा– "आपलोगों ने सन्धि की है जो नियमों से सम्बद्ध है फिर अकारण दिल्लीपति पर सन्देह क्यों?"

शिवाजी माता जीजाबाई को प्रणाम करने के बाद आगरा को प्रस्थान करने को उद्यत हुए। शिवाजी के मन में उत्तर भारत के प्रति बड़ा कौतुहल था, इस लालसा के कारण भी वे आगरा जाना चाहते थे, 'जंजीरा का टापू' शिवाजी की नौसेना का दुर्ग था। आगरा जाने के पूर्व सद्भाव प्रदर्शन के लिए शिवाजी ने जंजीरा के किले को भी दिल्ली के लिए भेंट के रूप में अर्पित कर दिया।

शिवाजी ने माँ को राष्ट्र के मुख्यासन पर विराजमान किया, साथ ही उनके सहायतार्थ तीन मन्त्रियों को भी नियोजित किया। वे माँ का आशीर्वाद लेकर आगरा पहुँच गये।[८७]

मिर्जा राजा जयसिंह ने अपने पुत्र रामसिंह को शिवाजी के सहायतार्थ नियुक्त कर दिया था। रामसिंह ने प्रसन्नतापूर्वक शिवाजी का स्वागत, आदर एवं सत्कार किया। (जब वे (शिवाजी) २१ मई को आगरा से कुछ मील दूर दक्षिण से सराय मानिकचन्द्र पर पहुँचे, तब वहाँ रामसिंह के मुंशी गिरधारी लाल ने उनका स्वागत किया।)[८८]

पृथ्वी पर स्वर्ग के समान आगरा नगरी को शिवाजी ने अपने आगमन से अलङ्कृत कर दिया।[८९]

इस प्रकार शिवाजी औरङ्गजेब से सेवित नगरी में दिल्लीपति की सभा में उचित समय की प्रतीक्षा करने लगा। इस सर्ग में १९८ श्लोक हैं।

त्रयोदश सर्ग का कथानक

इस सर्ग में शिवाजी द्वारा नगर प्रवेश, सैनिकों द्वारा आगरा नगरी का भ्रमण करना तथा नगर की स्थितियों से सम्बद्ध हासादि वर्णित है। शिवाजी ने जब आगरा में प्रवेश किया तब रात्रि हो चुकी थी। शिवाजी ने अपने सैनिकों की आगरा के दृश्यों को देखने की तीव्र लालसा को देखते हुए सैनिकों की प्रार्थना के बिना ही उन्हें नगर भ्रमण की आज्ञा दे दी। युवराज रामसिंह के अनुचर ने उन सैनिकों को नगर भ्रमण कराया। कवि त्रिपाठी जी ने नगर भ्रमण के समय सैनिकों द्वारा देखे गये मनोरम दृश्यों का वर्णन प्रस्तुत अध्याय में किया है। त्रिपाठी जी ने क्रमशः आगरा के रात और दिन, जाड़ा एवं गर्मी परस्पर विरोधी तत्त्वों के एक साथ रहने का वर्णन किया है–

नक्तंदिनेन शिशिरेण च धर्ममासः
श्रीशान् सहजस्थितिजुषः समुपासमानाः।
अन्यर्तुदेशपरिबन्धमुपेक्ष्य नित्य-
मत्रानयन्ति सुरपादपकामदोहम्।।[९०]

इसी क्रम में कवि ने आगरा की चांदनी रात में रम्य दिखने वाले ताजमहल का वर्णन किया है,[९१] ताजमहल के वर्णन के बाद त्रिपाठी जी ने आगरा की वेशभूमि तथा वेश्याओं के प्रति नागरिकों की चाटुकारिता भरी उक्तियाँ का भी वर्णन किया है।[९२]

शिवाजी के आगरा आगमन पर आगरा की वारवधुओं की टिप्पणियों का भी प्रस्तुत अध्याय में वर्णन है।[९३] कवि ने काव्य की परम्परा का निर्वाह करते हुए प्रस्तुत अध्याय में हास-परिहास भी प्रस्तुत किया है। इस प्रकार आगरा भ्रमण करके शिवाजी के सैनिक अत्यन्त

प्रसन्न हुए; वे रात्रिभर[९४] आगरा भ्रमण के पश्चात् प्रातःकाल निवासस्थान पर लौट आये। इस सर्ग में १७८ श्लोक है।

चतुर्दश सर्ग का कथानक

प्रस्तुत सर्ग में 'शिवाजी का मुगल दरबार में जाकर यथोचित सम्मान न पाना, मिठाई के टोकरों में छिपकर क्षत्रपति की कैद से मुक्ति वर्णित है।' शिवाजी ने आगरा में रात्रि व्यतीत कर प्रातःकाल सूर्य देवता का अभिवादन किया। आगरा की (प्रजा) जनता शिवाजी को अतिथि के रूप में देखकर तरह-तरह की बातें कर रही थी। नगर की महिलाएँ शिवाजी की अन्य महिलाओं में आसक्ति न देखकर आश्चर्यचकित हो रही थीं।

शिवाजी बहुमूल्य धनधान्य लेकर औरङ्गजेब के दरबार में गये वहाँ उन्हें औरङ्गजेब द्वारा सम्मान (पूर्ण व्यवहार) नहीं प्राप्त हुआ, अपितु वहाँ उन्हें 'पाँचहजारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा किया गया। यह मनसबदारों की तीसरी पंक्ति थी। औरङ्गजेब की ओर से शिवाजी का स्वागत न किये जाने से शिवाजी दुःखी एवं असन्तुष्ट हो गये। शिवाजी ने 'रामसिंह' से क्रोधित होकर कहा– तुमसे अथवा तुम्हारे पिता (जयसिंह) से मेरी स्थिति छिपी नहीं है अर्थात् तुम सब जानते हो मैं किस प्रकार का व्यक्ति हूँ फिर भी तुम सबने मुझे तीसरी पंक्ति में स्थान दिया मैं तुम्हारे सब 'मनसब' को ठुकराता हूँ' 'यह कहकर वे सिंहासन की तरफ पीठ करके बाहर चले गये। औरङ्गजेब ने शिवाजी को बन्दी बना लिया तथा उसने उन्हें किसी न किसी बहाने से मरवाने का निश्चय कर लिया। औरङ्गजेब ने शिवाजी के निवासस्थान (जहाँ शिवाजी को नजरबन्द किया गया था) को चारो तरफ से रक्षकों से घेरवा दिया। साथ ही शिवाजी की गतिविधि जानने के लिये गुप्तचर भी नियुक्त कर रखा था।[९५] शिवाजी अत्यन्त चिन्तित रहने लगे। इस प्रकार वे बीमार पड़ गये। बादशाह औरङ्गजेब ने 'घड़ियाली आँसू' की तरह एक वैद्य को शिवाजी के उपचारार्थ प्रेषित किया। वैद्य ने कहा मैं शरीर का उपचार करता हूँ मन का नहीं उसने कहा कि शिवाजी मन ही मन किसी बात के कारण चिन्तित हैं इस पर शिवाजी ने कहा कि आप वैद्य हैं या गुप्तचर मुझे यह समझ में नहीं आ

रहा है। यद्यपि वैद्य के वेश में 'तानाजी' शिवाजी के पास आये थे वे शिवाजी को 'औरङ्गजेब' के कैद से मुक्त कराना चाहते थे। 'तानाजी' ने 'शिवाजी' से कहा कि वे मिठाई के टोकरे 'रजवाड़' के यहाँ भेजकर अपने रोगमुक्त होने का समाचार प्रचारित करें, शिवाजी ने ऐसा ही किया एवं शिवाजी से शक्ल सूरत में मिलते हुए उनके भाई 'हीरोजी' अनामिका अङ्गुली में शिवाजी की अंगूठी पहन कर शिवाजी के बिस्तर पर लेट गये।[९६] (शिवाजी का एक सौतेला भाई हीरोजी कर्जन्द था जो आकृति में शिवाजी से मिलता-जुलता था। उसे मराठा सरदार सोने का कड़ा पहनाकर और बाँह फैलाकर शिवाजी के बिस्तर पर लिटा दिया गया)[९७] एवं शिवाजी व शम्भाजी मिठाई के टोकरे में सिकुड़कर बैठ गये। शत्रु सैनिकों के कहारों से पूछने पर कि तुमलोग यह टोकरे कहाँ लेकर जा रहे हो? कहारों ने जबाब दिया 'हमलोग मिर्जा राजा जयसिंह के महल को जा रहे हैं''। इस प्रकार उन सैनिकों के ठीक है, ठीक है कहने पर वे कहार टोकरे लेकर (शिवाजी एवं शम्भाजी को लेकर) निश्चित स्थान की ओर चले गये।[९८]

शत्रु सैनिकों ने सोये हुए 'हीरोजी' की शिवाजी समझकर कोई छानबीन नहीं की एवं दूसरे दिन 'हीरोजी' उठकर बाहर चले गये इस प्रकार सैनिकों को जब पता चला कि शिवाजी कक्ष में नहीं है तब 'फौलाद खाँ' ने शिवाजी को खोजना शुरु किया। शिवाजी के न मिलने पर उसने औरङ्गजेब को इस समाचार से अवगत कराया। औरङ्गजेब स्तब्ध रह गया। जब शिवाजी उस महल से बाहर चले गये तो औरङ्गजेब की मक्कारी (शिवाजी को नजरबन्द किया जाना) का भण्डाफोड़ हो गया एवं अब औरङ्गजेब भी इस बात को समझ गया कि दक्षिण की स्वतन्त्रता को कोई रोक नहीं सकता (क्योंकि शिवाजी उसकी कैद से मुक्त हो चुके थे)। इस सर्ग में १६१ श्लोक हैं।

पञ्चदश सर्ग का कथानक

इस सर्ग में क्षत्रपति का प्रच्छन्न वेश में दक्षिण की ओर जाना वर्णित है। औरङ्गजेब शिवाजी के आगरा से पलायित हो जाने पर अत्यन्त क्रुद्ध था वह शिवाजी को मार्ग से ही पकड़ लेना चाहता था; किन्तु शिवाजी को पकड़ लेना सरल न था। वे मुख्य मार्ग से बचते

गेरुए रङ्ग का चोला पहने, जटाओं को धारण किये हुए, प्रच्छन्न वेश में अपने राज्य पहुँच गये। (शिवाजी एवं शम्भाजी सहित मिठाई की टोकरियाँ आगरे से बाहर सुनसान स्थान में पहुँची, जहाँ से शिवाजी और उनका बेटा नगर से ६ मील दूर के एक गांव में पहुँच गये। वहाँ पर नीराजी रावजी घोड़ों सहित उपस्थित था। अब मण्डली ने हिन्दू संन्यासियों का वेश धारण कर लिया और घोड़े पर चढ़कर मथुरा चले गये। मथुरा में अपने पुत्र शम्भाजी को एक मराठा परिवार की देखरेख में छोड़कर आप स्वयम् इलाहाबाद के लिए पूरब की ओर चल दिये। वहाँ से उन्होंने बुन्देलखण्ड की सड़क पकड़ी और गोण्डवाना और गोलकुण्डा होते हुए अपने आगरा भागने से पच्चीसवें दिन २२ सितम्बर, १६६६ ई० को रायगढ़ पहुँच गये''।)[९९] इस सर्ग में मार्ग में जाते हुए जिन दृश्यों को शिवाजी ने देखा वे बहुत ही मनोरम थे, उसी का वर्णन त्रिपाठी जी ने प्रस्तुत सर्ग में किया है। इस सर्ग में १०३ श्लोक है।

षोडश सर्ग का कथानक

प्रस्तुत सर्ग में 'कोण्डना दुर्ग' विजय का वर्णन है। (शिवाजी ने 'पुरन्दर सन्धि के द्वारा सौंपे गये अपने अनेक किले फिर जीत लिये। इन किलों में सबसे महत्त्वपूर्ण किला कोंडाना (कोण्डना) था जिसे तानाजी मलुसरे* ने दीवार पर चढ़कर जीता था। तानाजी अपनी उज्ज्वल विजय में स्वर्गवासी हुए थे अतः शिवाजी ने फरवरी १६७० ई० में उन्हीं के नाम पर (तानाजी मलुसरे) इस दुर्ग का नाम 'सिंहगढ़' रख दिया)।[१००] प्रस्तुत सर्ग के आरम्भ में 'त्रिपाठी' जी ने दिखाया है कि शिवाजी आगरा बन्दीगृह से मुक्त होने के बाद अपने शत्रुओं के विनाश के लिए उद्यत हो गये। इसी क्रम में औरङ्गजेब द्वारा शिवाजी का 'राजा' की उपाधि स्वीकृत किया जाना भी वर्णित है।[१०१] कवि ने माँ जीजाबाई की द्यूतक्रीड़ा की इच्छा का वर्णन भी किया है।[१०२] एवं द्यूतक्रीड़ा में विजयी होने पर 'कोण्डना दुर्ग' की इच्छा को भी दर्शाया है।

शिवाजी अपने मित्र तानाजी मालसुरे से अपनी माँ की इच्छा पूरी करने हेतु आग्रह करते हैं। तानाजी मालसुरे यद्यपि अपने पुत्र

के 'विवाह' कर्म में व्यस्त थे; किन्तु उन्होंने माता जीजाबाई की इच्छा का सम्मान करते हुए कहा–

कोण्डनामुदयभानुशासना- दोग्रसेनिनिगडादिवाच्युतः।
देवकीमिव न मोचये यदि मास्तु मे जननि वीरसत्क्रिया।।[१०३]

अर्थात् जब तक 'कोण्डना' दुर्ग को शत्रु से मुक्त न करा लें तब तक उन्हें वीरोचित प्रतिष्ठा न प्राप्त हो। तानाजी ने पाँच सौ सैनिकों की टुकड़ी का नेतृत्व किया। उन्होंने किले के पीछे के जङ्गल को देखा, अत्यन्त दुर्गम पथवाले विपत्ति समुद्र को पार करने वाले उस मावले सेनापति 'तानाजी' ने 'सिंहगढ़' को देखकर अपने भाई से ४०० सैनिकों सहित नेतृत्व करने को कहा[१०४] एवं वे स्वयं गोह (गोह एक जलचर प्राणी होता है यह मगरमच्छ की आकृति का होता है। यह सीधी दीवालों पर सहज ही चढ़कर अपने पेट के बल किसी उपयुक्त स्थान पर चिपक जाता है। उसकी पकड़ इतनी सुदृढ़ होती है कि उसकी कमर में रस्सी बाँधकर भारी व्यक्ति भी उस रस्सी की सहायता से ऊपर पहुँच सकता है) के माध्यम से किले की दीवार पर पहुँच गये उन्हीं का अनुकरण करके बाकी सौ सैनिक भी सिंहगढ़ के शिखर पर सकुशल पहुँच गये। वह समूह शत्रु के झुण्ड पर टूट पड़ा। दुर्ग अध्यक्ष उदयभानु एवं तानाजी के बीच सङ्घर्ष होने लगा फलतः युद्धभूमि में दोनों वीर एक से बढ़कर एक थे। 'उदयभानु' ने तलवार से 'तानाजी' के हृदय पर प्रहार (तानाजी के हृदय में उदयभानु की तलवार घुस गयी)[१०५] किया। तानाजी ने शान्त (मृत्यु से पूर्व) होने से पहले उदयभानु पर ऐसा प्रहार किया कि उसके 'प्राण पखेरु' उड़ गये।[१०६]

शिवाजी के प्रिय मित्र तानाजी ने 'कोण्डना' पर ध्वज फहरा कर अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया। तानाजी के भाई 'सूर्याजी' भी युद्ध में डटे रहे। मावले सैनिकों से भयभीत शत्रु सेना पलायन कर गयी। युद्ध में तानाजी को वीरगति प्राप्त हुई। तानाजी के मृत्यु से दुःखी शिवाजी विलाप करने लगे उन्होंने कहा कि दुर्देव ने उनके मित्र को (जो सिंह की तरह था) छीन कर सिर्फ दुर्ग ही दे दिया उन्हें ऐसा दुर्ग नहीं चाहिए जिसके बदले उनका मित्र (तानाजी) छीन लिया जाय।[१०७] शिवाजी ने अपने मित्र को 'सिंह' की उपमा दी थी अतः

उन्होंने उस दुर्ग (कोण्डना) का नाम सिंह दुर्ग (अपने मित्र की उपमा पर) रख दिया। शिवाजी ने यथाविधि तानाजी के पुत्र का विवाह सम्पन्न कराया। शिवाजी ने माँ को सिंह दुर्ग समर्पित किया।[१०८] इस सर्ग में ८९ श्लोक हैं।

सप्तदश सर्ग का कथानक

इस सर्ग में औरङ्गजेब से पत्र के माध्यम से शिवाजी ने 'जजिया' कर न लेने के लिए निवेदन किया है। (औरङ्गजेब ने हिन्दुओं को विवश करने के लिए तथा परिणामस्वरूप इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए उन पर एक धार्मिक कर लगाया था जिसे 'जजिया' कहते हैं। यह कर मुसलमानों पर नहीं लगता था। बहुसंख्यक प्रजा हिन्दू थी अतः यह एक प्रकार से धर्मप्रचार एवं आय का मुख्य स्रोत था।) प्रस्तुत सर्ग में 'कवि' ने शिवाजी के निवेदन में व्यंग्य का पुट दिखाया है। शिवाजी औरङ्गजेब से याचना करते हैं कि यह करग्रहण, 'जजिया' कर की वसूली प्रजा को निर्धन कर देगी। हे नरेश्वर आप उस ईश्वर को भी नहीं छोड़ना चाहते हैं, भला कहीं निश्छल प्रेम, धन दौलत से खरीदा जा सकता है। इसी क्रम में शिवाजी कहते हैं कि बादशाह आप अपने सबसे छोटे भाई 'मुरादबख्श' को धोखे से कालकोठरी में डालकर बड़े भाई 'दाराशिकोह' की हत्या करके तथा पिता 'शाहजहाँ' को कैद में विनष्ट करके आखिर किस प्रकार के 'देव' की पूजा करते हैं। महत आश्चर्य है कि आपका ईश्वर इन जघन्य अपराधों का भी अनुमोदन करता है। हे दिल्लीपति यह मुगल साम्राज्य एक महान् वृक्ष के समान है, अब इसका प्रभाव आपके शासनकाल में कम होता जा रहा है–

पतत्प्रकर्षोऽपि तवानिशाऽशनि
प्रहारभिन्नावयवो जरन्मते।
न राज्यशाखी पतितोऽवनौ यदि
परं प्रभावोऽक्कबरस्य तत् ध्रुवम्।।[१०९]

अर्थात् यह चिन्तनीय बात है कि आपका गर्वभरा पाखण्ड मुगल साम्राज्य के वृक्ष को क्षति पहुँचा रहा है, आपकी बिना विचार किये कार्य करने की प्रवृत्ति इसे समाप्ति की ओर ले जा रही है। निश्चय

ही यह सम्राट् अकबर का पुण्य है जिससे मुगल साम्राज्य का वृक्ष अब तक बचा हुआ है। (यहाँ शिवाजी के स्वभाव की निर्भीकता दृष्टिगत होती है कि औरङ्गजेब को उसके कुकृत्य के लिए फटकारते हैं तथा शिवाजी में धार्मिक उदारता का रूप उस समय अधिक स्पष्ट होता है जब वे अकबर के अच्छे कृत्यों को स्मरण करते हुए, उसे ही मुगल साम्राज्य के आधार के रूप में बताते हैं।) शिवाजी कहते है बादशाह सलामत मैंने आपकी स्थिति (नृपत्व) का सम्मान करने के लिए राज्यनिर्माण किया, स्वयं 'राजा' बना, यह सब केवल आपकी मर्यादा के लिए ही किया, अब मैंने 'जजिया' के सम्बन्ध में यह पत्र लिखा है। आप मेरे उद्यम का आदर करते हुए 'जजिया' रूपी कुकर्म से विरत हो जायें। नियम पालन से नियामक बच नहीं सकता, कर लेकर भी यदि राजा प्रजा की रक्षा न करे, तो वह ईश्वर के दण्ड का भागी होगा। अतः आपकी धारणाओं का कोई भविष्य नहीं है, आपके साथ ये समाप्त हो जायेंगे। आप मनुष्योचित व्यवहार करें नहीं तो संसार आपको धिक्कारेगा। जब आप दुनिया छोड़कर चले जायेंगे तो संसार आपके कुकर्मों को याद करेगा, आप यदि इससे बच सकें तो आपके लिए तथा इस युग के लिए यह श्रेयस्कर होगा। शिवाजी कहते है कि वे हृदय से चाहते है कि औरङ्गजेब उत्तम मार्ग का पालन करके यश के भागी बनेंगे, एवं उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके अच्छे मार्ग के अवलम्बन के द्वारा इच्छित सिद्धि को प्राप्त करें। इस सर्ग में ११२ श्लोक हैं।

अष्टादश सर्ग का कथानक

इस सर्ग में क्षत्रपति के 'राज्याभिषेक' का वर्णन किया गया है। शिवाजी को राजा के रूप में देखने का स्वप्न सभी ने देखा था। अतः जनमानस को शान्त करने की इच्छा से राजलक्ष्मी ने क्षत्रपति को राज्याभिषेक के लिए प्रेरित किया। क्षत्रपति के जाति बान्धव प्रायः कहा करते थे कि शिवाजी यद्यपि निरन्तर युद्ध में यश प्राप्त करते रहे हैं; किन्तु इसीलिए वे मूर्धाभिषिक्त राजा तो नहीं कहला सकते। वे एक वीर सेनापति हैं। उनका संशय था कि शिवराज मूर्धाभिषिक्त नहीं हैं अतः उनकी राजलक्ष्मी कभी भी उन्हें त्याग सकती है। शत्रु राजाओं, बादशाहों की प्रजा भी शिवराज में अनुरक्त प्रजाजनों का उपहास किया करती थी। उनके अनुसार शिवाजी एक जागीरदार के पुत्र थे न कि राजा।

किन्तु क्षत्रपति शास्त्रज्ञान रखते थे। वे अपने लिए किसी नियम को तोड़ना नहीं चाहते थे। उन्हें शास्त्रविरूद्ध राज्याभिषेक स्वीकार न था। अतः विवेकशील समाज विद्यातीर्थ शास्त्रीय विद्वानों की शरण में गया।

धीरे-धीरे यह बात कि 'शिवराज का राजतिलक शास्त्रसम्मत है या नहीं' विद्वानों की सभा में वाराणसी पहुँची। वाराणसी के विद्वानों के सामने प्रश्न था कि महाराज क्षत्रपति का शास्त्रीय विधि से राज्याभिषेक हो सकता है या नहीं अर्थात् क्षत्रपति क्षत्रिय हैं या नहीं, यदि क्षत्रिय हैं तो उनका अधिकार सहज ही हो जायेगा। विद्वान् विश्वेश्वर आचार्य (गागाभट्ट) ने कहा–

विभर्तु सामान्यविधौ स्वरागं परम्परा प्राकृत बोधभूमिः।
यस्मात् स्वयं सा लभते स्वरूपं तस्याः प्रमाणं किम पेक्षते सः।।[११०]

शास्त्र, परम्परा का अनुवर्ती नहीं है, परम्परा-शास्त्र की अनुवर्तिनी है। परम्परा लीक है अतः परम्परा, सामान्य बुद्धिवाले प्राणियों के लिऐ गति है। परम्परा, निर्मिति है, महान् व्यक्तियों के पदचिन्हों से उत्पन्न हुई है अतः यह परम्परा (परं-परं- इति परम्परा, एक के बाद दूसरा एक ही दिशा में उसी ढंग से प्रवर्तित हो तो एक परम्परा बन जायेगी)[१११] उन्हीं महान् व्यक्तियों की नियामिका नहीं हो सकती। परम्परा का बन्धन क्षत्रपति के लिए नहीं है। पराक्रमी शत्रुओं को क्षण में परास्त कर देने वाला क्षत्रपति आदि क्षत्रिय नहीं है तो और क्या है?

अतः मेरा शास्त्रोचित आग्रह है कि महाराज क्षत्रपति जो निष्कलंक एवं उदार चरित्र वाले हैं। मूर्धाभिषिक्त होकर सिंहासन पर आरूढ़ होंवे।

पण्डित विश्वेश्वर ने प्रजा को अपने अनुग्रह से चिन्तामुक्त कर दिया। राज्याभिषेक की तैयारियाँ होने लगी। पूरे महाराष्ट्र में उत्सव वेला छा गयी थी। माता जीजाबाई के उल्लास का ठिकाना न था। सब कुछ पहले की ही तरह था पर शिवाजी को कुछ उदात्त, विशेष अनुभव अपने हृदय में हो रहा था।

और तभी शङ्ख, घड़ियाल, दुन्दुभी आदि अनेक प्रकार के माङ्गलिक वाद्य यन्त्रों की ध्वनि चारों तरफ गूँज उठी। महाराष्ट्र का सभी घर अभिषेक के उत्सव से प्रसन्न हो उठा।

शिवाजी श्वेत वस्त्र पहने हुए अपने पुत्र, पत्नी एवम् अष्ट प्रधानों समेत सोने से मढ़ी हुई आसन्दिकाओं वाली राज्याभिषेक भूमि में आये। रानी के आचल में शिवाजी के दुपट्टे को जोड़कर गाँठ बाँध दी गयी। शुभ मुहूर्त में वेद ध्वनि के उद्घोष के साथ कुम्भ लिए हुए प्रधानों ने राजा को विधिपूर्वक अभिषिक्त कर दिया। सोलह ब्राह्मण पत्नियों ने शिवाजी की आरती की। पूरी रात राज्याभिषेकोत्सव का आनन्द लोग उठाते रहे।

शिवाजी ने उस पगड़ी को धारण किया जिसकी ओर देखने का साहस छत्रधारी नृपगण भी नहीं कर सकते। राजसिंहासन पर आरूढ़ होने के बाद महाराज क्षत्रपति ने 'अष्टप्रधानों' को संस्कृत भाषोचित उपाधियाँ प्रदान कीं।

शिवाजी की सेवा में अनेक राजाओं ने भेंट राशि प्रेषित की था, सुदूर समुद्रपार के अंग्रेज व्यापारियों ने अपनी निष्ठा प्रदर्शन हेतु उपहार के द्वारा शिवाजी के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की। राज्याभिषेक के पश्चात् शोभा यात्रा निकली। शिवाजी ने पैदल चलकर देवमन्दिरों का दर्शन किया।

मनोरथ के लिए सङ्कल्पशक्ति, मातृभूमि के लिए स्वतन्त्रता इष्ट जगत् के लिए शिवाजी के राज्याभिषेक ने सर्वस्व ही दे दिया।[११२] इस सर्ग में १२१ श्लोक हैं।

एकोनविंश सर्ग का कथानक

इस सर्ग में 'क्षत्रपति की शासन पद्धति' का वर्णन किया गया है।

शिवाजी को छत्र चामर से कोई स्नेह नहीं था। वे सामान्य वस्त्र आवरण को ही महत्त्व देते थे। क्षत्रपति शिवाजी ने प्रमाद को अनभ्यास से, तन्द्रा, आलस्य को श्रम से, दीनता को स्वदेश की आराधना से निरन्तर दूर किया।[११३]

उस प्रशंसनीय शिवाजी ने धन सम्पत्ति का दानपूर्वक उपभोग किया। वे दण्डित करते हुए भी कोई वैर नहीं रखते थे। आदर करने पर अभिलाषारहित रहते थे। सर्वथा समर्थ होकर भी जब राजस्थान दिल्लीपति का चरण चूमने लगा तब क्षत्रपति ने अकेले ही सिंहपुत्र के समान तिरस्कार करते हुए दिल्ली को टेढ़ी दृष्टि से देखा।[११४]

मुस्लिम शासन में शीलवती स्त्रियों का बाहर जाना आपत्ति से पूर्ण था, किन्तु क्षत्रपति के शासन में स्त्रीजाति की ओर कुदृष्टि डालना भी कठिन था।[११५]

शिवाजी का अतिथि-सत्कार तो विश्वप्रसिद्ध था। अपने धर्मों में स्थिर रहते हुए भी दूसरे के धर्मों के प्रति अतिशय उदार थे। शिवाजी के शासनकाल में प्रजा का पारस्परिक प्रेम अन्य राज्यों की प्रजा के लिए आश्चर्यचकित कर देने वाला था।

स्त्रियाँ, बच्चे, गोवंश, ब्राह्मण तथा मन्दिर अब शिवाजी के राज्य में विधर्मी सैनिकों के अकारण उत्पात से सर्वथा मुक्त थे।[११६] महाराज शिव के सैनिक कड़े अनुशासन में रहते थे, यथा– मराठे सैनिक सिपाही अपने साथ स्त्रियाँ नहीं रख सकते थे।[११७]

अष्टप्रधान की सहायता से शिवाजी की वैभव सम्पत्ति सुरक्षित थी। शिवाजी के शासन काल में सभी के लिए समान न्याय-व्यवस्था थी। न्याय की दृष्टि में अमीर-गरीब समान थे।

क्षत्रपति के शासन काल में सम्पूर्ण प्रजा सहिष्णुतापूर्वक आत्मवृत्ति में स्थित रहती हुई समाज के कल्याण के लिए प्रयत्न करती थी।

न केवलं वले वाचि भूम्नि वा तदवस्थितिः।
प्रातिष्ठतार्यराष्ट्रस्तु प्रत्यात्म प्रतिमानसम्।।[११८]

वह आर्यराष्ट्र प्रत्येक मानस में अवस्थित था, वस्तुतः राष्ट्र बहिरङ्ग उपकरणों पर स्थिर नहीं रहता। वही राष्ट्र स्थायी रहता है जो प्रत्येक के मानस एवम् आत्मा में बसता है।

सम्भव है आज यह समाज शिवाजी के महान् उद्योग का उचित मूल्याङ्कन न कर पाये, क्योंकि कार्य पूर्ण हो जाने पर प्रायः व्यक्ति

उन असंख्य कठिनाइयों को विस्मृत कर देता है जिन्हें समाप्त करने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ा। मनोविज्ञान भी मनुष्य के सम्बन्ध में यही कहता है। यदि आज हम है तो इसके पीछे एक बहुत बड़ा कारण छिपा हुआ है–

जाह्नवी जाह्नवी येयं हिन्दवो हिन्दवोऽथवा।
भारतं भारतं वाऽद्य तत्र हेतुः शिवोदयः।।[११९]

अर्थात् आज भी गङ्गा नदी गङ्गा ही हैं, हिन्दू जनता भी हिन्दू ही है, यों कहें यदि आज भी भारत भारत ही है तो उसका कारण यही है कि क्षत्रपति तथा उन्हीं के समान अन्य व्यक्ति उत्पन्न हो गये थे। नहीं तो यह देश अभारतीयता के समुद्र में कभी का डूब गया होता। शिवाजी ने भगवान् विष्णु के समान इस पृथ्वी का उद्धार किया।

समुद्र में अपनी नौकाओं की रक्षा के लिए दिल्ली जिन जलदस्युओं से दया की याचना करती थी वे शिवाजी की नावों को निकट देखकर भयभीत हो जाते थे।[१२०] महाराज क्षत्रपति का समुद्री बेड़ा आत्महित-रक्षण में सर्वथा समर्थ था।[१२१] दिल्ली से शिवाजी का सङ्घर्ष निरन्तर चलता रहा। यह सङ्घर्ष एक दिन में समाप्त होने वाला नहीं था।

शिवाजी के शासनकाल में वेदों का अध्ययन, मनन करते हुए ब्राह्मण ज्ञानधारा को गतिशील बनाये हुए थे। उनका मूल उद्देश्य वेदाध्ययन द्वारा अज्ञान का, मोह का नाश करना था। वे देहवृत्ति, भोजन आदि के लिए वेदाभ्यास नहीं करते थे।[१२२]

काव्य की समाप्ति पर कवि ने कहा है शिवाजी के यशगान की कोई सीमा नहीं है। सहृदय विद्वान् मेरे द्वारा निर्मित काव्य सरस्वती के दिव्य मन्दिर में प्रवेश करें। मेरा यह **क्षत्रपतिचरितम्** नामक 'प्रयत्न' काव्यादि निर्णय की कसौटी की भूमिका का निर्वाह करे। मेरा यह काव्य केवल मेरी चपलता का द्योतक है–

तदयं निकषस्तावन्मत्प्रयत्नोऽस्तु निर्णये।
एतस्मादुत्तरं काव्यमेतद्रूपं तु चापलम्।।[१२३]

सरस उक्ति प्रवण में सभी हमसे श्रेष्ठ हो सकते हैं; किन्तु

शिवाजी के प्रति मेरे हृदय के भावों का अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता।[१२४] लोकदृष्टि को तृप्त करने वाले महाराज क्षत्रपति की जय हो। अभिलाषा थी कि माँ सरस्वती का एक सुन्दर मन्दिर निर्मित करूँ– आज उसी धृष्टता के फलस्वरूप मुझ अल्पबुद्धि के समक्ष ही वह सारस्वत मन्दिर निर्मित होकर आज प्रकाशित हो रहा है। मेरा परितोष मुझे मिल गया।[१२५] भगवान् शिव परक पद्य के साथ यह सर्ग समाप्त होता है। इस सर्ग में ९१ श्लोक हैं।

समीक्षा

कवि ने महाकाव्य प्रथम सर्ग में आत्मनिवेदन किया है। यहाँ कवि ने आदिकवि बाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि की प्रशंसा की है एवं साथ ही काव्य स्वरूप आदि का वर्णन किया है। द्वितीय सर्ग भौगोलिक वर्णन के साथ आरम्भ होता है। इसमें सर्वप्रथम कवि ने हिमाद्रि तथा भारत के अन्य प्रान्तों का संक्षिप्त सांस्कृतिक वर्णन प्रस्तुत किया है, भारतीय शौर्य एवं माहात्म्य को भी कवि ने इसी सर्ग में बताया है यह सर्ग शिवाजी के जन्म (उत्पत्ति) के साथ समाप्त होता है। तृतीय सर्ग में कवि ने शिवाजी के बाल्यकाल तथा युवावस्था को दृष्टिगत किया है। साथ ही शिवाजी की प्रारम्भिक विजयों का भी उल्लेख किया है। चतुर्थ सर्ग में कवि ने स्वातन्त्र्य लक्ष्मी के माध्यम से गरिमापूर्ण अतीत एवं अभिशप्त वर्तमान का वर्णन किया है एवं शिवाजी द्वारा स्वतन्त्रता देवी के समक्ष आत्मबलिदान की प्रतिज्ञा तथा तब तक भारत में ही रहकर प्रतीक्षा करने के लिए देवी से प्रार्थना करने का जीवन्त दृश्य उपस्थित किया गया है। (महाकाव्य में चतुर्थ सर्ग का कथानक काल्पनिक है, क्योंकि इतिहास में तृतीय सर्ग की कथा का उल्लेख है। चतुर्थ सर्ग की ऐसी किसी कथा का उल्लेख नहीं है)। पञ्चम सर्ग में शिवाजी के विनाश के लिए बीजापुर में मन्त्रणा तथा अफजल खान के सैनिक अभियान का वर्णन है। षष्ठ सर्ग में शिवाजी ने नट-नटिनियों के वेश में (गुप्तचरों के साथ) 'षड्ऋतुवर्णन' का गीतिरूपक प्रस्तुत किया है। (महाकाव्य के षष्ठ सर्ग का षड्ऋतुवर्णन भी कवि ने महाकाव्य की परम्परा का निर्वाह करने के लिए किया है, ऐसा वर्णन भी इतिहास में नहीं प्राप्त होता है)। सप्तम सर्ग में कवि ने अफजल खान के दूत कृष्णाजी भास्कर का क्षत्रपति के पास

आगमन तथा सन्देश कथन का वर्णन किया है। अष्टम सर्ग में क्षत्रपति के दूत गोपीनाथ का अफजल खान के पास पहुँचना, क्षत्रपति तथा अफजल खान का मिलन एवम् अफजल खान के वध की कथा वर्णित है। नवम सर्ग में बाजीप्रभु देशपाण्डे की वीरता का वर्णन है (नवम सर्ग में मुख्य रूप से बाजीप्रभु देशपाण्डे की वीरता का वर्णन है। यह वर्णन अत्यन्त विस्तृत है। अत्यन्त विस्तार हो जाने के कारण कहीं-कहीं अरुचिकर भी प्रतीत होता है)। दशम सर्ग में कवि ने मुगल सेनापति 'शाइस्ता खान' के पराभव का वर्णन किया है (यह सर्ग ऐतिहासिक घटनाओं से मेल तो खाता है पर कवि ने एक बात इसमें इतिहास से भिन्न बतायी है)। कवि लिखते हैं–

परमर्कयशाः शिवोऽसिमुद्रामलिखच्छत्रुकृपाणबद्धमुष्टौ।
कृतिशुल्कमिवाङ्गुलिद्वयं सो द्रुतमापात्य बलिस्मृतिं ररक्ष।।[१२६]

अर्थात् शिवाजी ने उस भगोड़े शाइस्ता खान की तलवारयुक्त मुट्ठी पर अपनी तलवार की मुद्रा (निशान) लगा दी और सेनापति शायिस्ता खान ने भी उस महान् विक्रम के कर (टैक्स) के रूप में अपनी दो अंगुलियां (अंगुलिद्वये) देकर उस उपहार (दो अंगुलियों के त्याग) की स्मृति को सदा के लिए सुरक्षित कर लिया। आशय है कि शिवाजी ने तलवार के हल्के आघात से उसकी दो अंगुलियां काट ली जबकि इतिहास की पुस्तकों में शिवाजी द्वारा शायिस्ता खान का अंगूठा काटे जाने का उल्लेख है–

१. ''शायिस्ता खान अपने हाथ का अंगूठा खोकर अँधरे में भाग गया।''[१२७]

२. ''शाइस्ता खान इस अचानक आक्रमण से घबराकर भाग खड़ा हुआ। यद्यपि शिवाजी केवल उसका अंगूठा काटने में सफल हुए।''[१२८]

एकादश सर्ग में शिवाजी की गुरुभक्ति एवं समर्थ गुरु बाबा रामदास का वर्णन है। (ऐतिहासिक महाकाव्य में तथ्य का होना आवश्यक होता है; किन्तु कवि ने एकादश सर्ग में अत्यधिक भावुकतापूर्ण काल्पनिक चित्र उपस्थित कर दिया है, कवि ने रघुवंश महाकाव्य के वर्णन क्रम पर आधारित वर्णन किया है कवि ने सिंहनी को जिस

प्रकार महाकाव्य में प्रस्तुत किया है एवं शिवाजी के द्वारा (श्लोक १०७) अद्भुत चमत्कार का देखा जाना, यह सब ऐतिहासिक दृष्टि से संगत नहीं है, किन्तु साहित्यिक वर्णन क्रम की दृष्टि से श्लाघ्य है और शिवाजी के वीरतापूर्ण अनुभाव को अभिव्यक्त करता है)। द्वादश सर्ग में आमेरनरेश जयसिंह एवं शिवाजी का वर्णन है। साथ ही शिवाजी का सन्धि प्रस्ताव तथा जयसिंह के आग्रह पर शिवाजी का आगरा के लिए प्रस्थान वर्णित है। त्रयोदश सर्ग में शिवाजी के सैनिकों ने आगरा भ्रमण किया है, वर्णित है। चतुर्दश सर्ग में कवि ने 'शिवाजी को औरंगजेब के दरबार में उचित सम्मान न मिल पाने, कैद होने, तथा मिठाई के टोकरे में छिपकर क्षत्रपति की कैद से मुक्ति' का वर्णन किया है। पञ्चदश सर्ग में शिवाजी का छिपकर महाराष्ट्र में पहुँचने का वर्णन है। षोडश सर्ग में कोण्डना दुर्ग विजय का वर्णन है। (षोडश सर्ग में कोण्डना दुर्ग विजय की कथा को अत्यधिक विस्तार दिया गया है)। सप्तदश सर्ग में शिवाजी ने 'जजिया' के विरुद्ध औरंगजेब से निवेदन (पत्र के माध्यम से) किया है। अष्टादश सर्ग में शिवाजी के राज्याभिषेक का वर्णन है। एकोनविंश सर्ग में शिवाजी की शासनपद्धति का वर्णन है। इस प्रकार कवि उमाशङ्कर शर्मा 'त्रिपाठी' जी में उपर्युक्त कथा को ही अपने महाकाव्य का आधार बनाया है।

सन्दर्भ

१. क्षत्रपतिचरितम्, १.१.
२. वही, १.५.
३. वही, १.५०.
४. वही, १.५५.
५. वही, १.८२.
६. वही, २.१.
७. वही, २.१२.
८. वही, २.२१.
९. वही, २.२६.
१०. वही, २.३४.

११. वही, २.३७.
१२. वही, २.५२.
१३. वही, २.६३.
१४. वही, २.८९.
१५. वही, २.११९.
१६. वही, २.१२६.
१७. वही, २.१७८.
१८. हितोपदेश.
१९. क्षत्रपतिचरितम्, ३.१३.
२०. भारत का बृहद् इतिहास, पृष्ठ २२७.
२१. वही, पृष्ठ २२७.
२२. क्षत्रपतिचरितम्, ३.५८.
२३. वही, ३.६७.
२४. भारत का इतिहास, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६७५.
२५. क्षत्रपतिचरितम्, ३.९०.
२६. तुलजा भवानी, क्षत्रपतेः कुलदेवता। तस्याः नवप्रतिष्ठात्र प्रतापगढ़दुर्गे नवनिर्मिते शिवराजोऽकरोत्। क्षत्रपतिचरितम्, पृष्ठ १०७.
२७. भारत का इतिहास, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६७४.
२८. भीमापारे पुरविशेषः तदानीं शत्रुसैन्यसंस्थानम्। क्षत्रपतिचरितम्, पृष्ठ ११३.
२९. एतन्नामकंपुरम् तत्रापि शत्रुसैन्य संस्थानमासीत्। क्षत्रपतिचरितम्, ११३.
३०. एतन्नामके पुरे युद्धोपयोगिनां वाजिनां महान् संग्रह कृतः तदानीम् शत्रुणा। क्षत्रपतिचरितम्, पृष्ठ ११३.
३१. क्षत्रपतिचरितम्, ३.१२१.
३२. वही, ४.१.
३३. वही, ४.१६.
३४. वही, ४.१७०.
३५. वही, पृष्ठ १७९.
३६. भारत का इतिहास, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६७६.
३७. क्षत्रपतिचरितम्, ५.५५.

३८. भारत का इतिहास, डॉ० अशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६७६-६७७.
३९. क्षत्रपतिचरितम्, ६.२८.
४०. वही, ६.३८.
४१. वही, ६.६०.
४२. भारत का इतिहास, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६७७.
४३. वही, ७.१.
४४. वही, ७.२६.
४५. वही, ७.२७.
४६. वही, ७.५२.
४७. भारत का इतिहास, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६७७.
४८. वही, ८.८.
४९. वही, ८.१२.
५०. वही, ८.२०.
५१. वही, ८.६१.
५२. वही, ६.६४.
५३. मध्यकालीन भारत, एल०पी० शर्मा, पृष्ठ ४१२.
५४. भारत का इतिहास, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६७८.
५५. भारत का इतिहास, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६७८.
५६. क्षत्रपतिचरितम्, ९.१५.
५७. वही, ९.५२.
५८. वही, ९.७५.
५९. भारत का इतिहास, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६७८.
६०. क्षत्रपतिचरितम्, १०.१.
६१. भारत का इतिहास, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६७८.
६२. क्षत्रपतिचरितम्, १०.९.
६३. वही, १०.२०.
६४. वही, पृष्ठ ३२५.
६५. वही, १०.४०.

६६. भारत का इतिहास, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६७९.
६७. क्षत्रपतिचरितम्, १०.५५.
६८. भारत का इतिहास, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६७९.
६९. वही, पृष्ठ ६८०.
७०. वही.
७१. भारत का इतिहास, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६८०.
७२. क्षत्रपतिचरितम्, पृष्ठ ३४४.
७३. वही, ११.१.
७४. वही, ११.४२.
७५. वही, ११.८१.
७६. वही, ११.१००.
७७. वही, ११.१०३.
७८. वही, पृष्ठ २७५.
७९. वही, १२.१.
८०. वही, १२.४.
८१. वही, १२.१३.
८२. वही, १२.२७.
८३. वही, १२.५१.
८४. वही, १२.७६.
८५. वही, १२.१६२.
८६. क्षत्रपतिचरितम्, १२.१७१.
८७. वही, १२.१९४.
८८. भारत का इतिहास, पृष्ठ ६८५.
८९. क्षत्रपतिचरितम्, १२.१९७.
९०. वही, १३.९.
९१. वही, १३.१०-१८.
९२. वही, १३.१९-३८.
९३. वही, १३.४०-४७.

९४. वही, १३.१७७.

९५. वही, १४.५८.

९६. वही, १४.१३७-१४३.

९७. भारत का इतिहास, पृष्ठ ६८७.

९८. क्षत्रपतिचरितम्, १४.१४५-१४७.

९९. भारत का इतिहास, पृष्ठ ६८७.

१००. वही, पृष्ठ ६८९.

*. क्षत्रपतिचरितम् में तानाजी मालसुरे लिखा हुआ है एवं इतिहास की पुस्तकों में तानाजी मलसुरे लिखा हुआ है।

१०१. क्षत्रपतिचरितम्, १६.६.

१०२. वही, १६.१७.

१०३. वही, १६.३१.

१०४. वही, १६.४६.

१०५. वही, पृष्ठ ५९३.

१०६. वही, पृष्ठ ५९३.

१०७. वही, १६.८४.

१०८. वही, १६.८९.

१०९. वही, १७.१००.

११०. वही, १८.१४.

१११. वही, पृष्ठ ६४०.

११२. वही, १८.१२०.

११३. वही, १९.८.

११४. वही, १९.११.

११५. वही, १९.१२.

११६. वही, १९.३०.

११७. वही, १९.३१.

११८. वही, १९.३७.

११९. वही, १९.५२.

१२०. वही, १९.६३.

१२१. वही, पृष्ठ ६८७.

१२२. वही, १९.८०.

१२३. वही, १९.८६.

१२४. वही, १९.८८.

१२५. वही, १९.९०.

१२६. वही, १०.५५.

१२७. भारत का इतिहास, १००० ई० से १७०७ ई० तक, पृष्ठ ६७९.

१२८. वही, १०००-१७६१, पृष्ठ ४१३.

* ****

तृतीय अध्याय

मराठा शक्ति का उत्कर्ष
(१६२७-१७०१ ई०)

३

मराठा शक्ति का उत्कर्ष (१६२७-१७०१ ई०)

श्री उमाशङ्कर शर्मा त्रिपाठी जी ने क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में शिवाजी से सम्बद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं, क्षेत्रों, संवादों, कार्यों का वर्णन किया है। निस्सन्देह मराठों के शक्ति एवं समृद्धि के मूल में शिवाजी थे, परन्तु वीर शिवाजी के उस महान् स्वातन्त्र्य सङ्घर्ष में दृष्ट, अदृष्ट सभी शुभ भावनाओं तथा व्यक्तियों का योगदान था–

शुभाशिषः सिद्धिमतां समुत्सुका सवध्यपुण्योपचयस्तपस्विनाम्।
विलुण्ठितानाञ्च मनोरथोऽवशः शिवप्रयत्नेऽङ्कुरिता इवाभवत्।।[१]

अर्थात् अनुकूल देश, काल, पात्र का उत्तम संयोग पाकर उनका (मराठों का) मनोरथ विकसित हो उठा। सिद्ध पुरुषों की शुभ भावना, तपस्वियों का पुण्य, पददलित समाज का निरुपाय मनोरथ सभी उत्कण्ठित हो महाराष्ट्र वीर के उस महान् उद्योग (मराठों के उत्कर्ष) में अङ्कुरित होने लगे। महान् क्रान्तियों की सफलता में लोकचेतना का बहुत बड़ा योगदान रहता है।

शिवाजी विरल मेघमाला के समान अत्याचार से प्रतप्त भारतीय आकाश में अवतीर्ण हुए।[२] शिवाजी लोगों के दुःख के समक्ष अपने सुख को पाप समझते थे। फलतः उन्होंने युवाओं के तेज को परखा और दिशाहीन युवाशक्ति को राष्ट्र के नवनिर्माण में लगाया। संगठन के साथ-साथ उनमें तलवार चलाने की अद्भुत क्षमता थी–

सुपुष्टगात्रान्नवयौवनश्रियो महासिहस्तानपि देशवासिनः।
अनेकधाभिन्नबलानतोऽवलान् निकारकारोन्मथितान् ददर्श सः।।[३]

देशवासी स्वस्थ हैं उनका शरीर पुष्ट है फिर भी प्रायः किसी निर्दोष को शत्रु क्रोध की प्रज्वलित अग्नि जला कर राख कर देती थी, क्योंकि समाज भय से चुप रहता था। समाज में पारस्परिक विरोध था। इसलिए समाज बलवान् व्यक्तियों के होते हुए भी कमजोर था।

शत्रु के अन्याय का कभी-कभी विरोध भी किया जाता था; किन्तु समाज के लोगों में दृढ़ निश्चय की कमी होने से विरोध करने का प्रयास असफल हो जाता था। परतन्त्रता के कारण सभी असुरक्षित थे। सभी अपने पुत्र, स्त्री, परिजन आदि के लिए सदैव सशङ्कित रहते थे। रात्रि व्यतीत होने के बाद जो लोग अगली सुबह देख लेते थे, वे स्वयं को भाग्यवान् समझते थे–

सुते कलत्रे वपुषि स्वबन्धुषु न कोऽपि कुत्रापि जहौ स्वसंशयम्।
महोत्सवस्तस्य तु येन वीक्षितो निशं निषेव्यापि पुनर्नवोंऽशुमान्।।[४]

दासता ने समाज का स्वरूप अस्त-व्यस्त कर दिया था। लोग सहज भाव से रहना भूल गये थे। किसी को भी अपना भविष्य निश्चिन्त नहीं दृष्टिगत होता था। जातीय निष्ठा लुप्त हो गयी थी। सम्पूर्ण समाज पशु की तरह जीवन बिता रहा था–

हतः स्वभावो निहता शुभायतिर्गुणानुबन्धोऽपगतो हृतं यशः।
न जातिनिष्ठा न च वर्णसत्क्रिया बभार लोकः पशुनिर्विशेषताम्।।[५]

मराठों के उत्कर्ष में निम्न कारक भी महत्त्वपूर्ण हैं–

१. महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थितियाँ

भौगोलिक स्थिति सदैव ही इतिहास को प्रभावित करती रही हैं। महाराष्ट्र की भौगोलिक परिस्थितियों ने भी वहाँ के इतिहास को प्रभावित किया। सहयाद्रि पर्वत की ऊँची चोटियों एवं कठोर प्रस्तर खण्डों को मराठों ने अपने परिश्रम से सुरक्षात्मक किलों का रूप दे दिया था। युद्ध के प्रसङ्ग में इन किलों का बड़ा ही महत्त्व रहा, क्योंकि इन किलों तक पहुँचने के लिए शत्रु पक्ष को नाकों चने चबाने पड़ते थे। साथ ही ये किले नष्ट भ्रष्ट नहीं किये जा

सकते थे। इन्हीं किलों की सहायता से मराठों ने उत्तर की ओर से आने वाले आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा की। शत्रु जब आक्रमण करता था तब मराठे इन दुर्गों में छिप कर अपनी रक्षा कर लेते थे। इन किलों एवं पहाड़ी इलाकों के कारण मराठे जन्मजात वीर एवं घुड़सवार बन गये, उनमें प्रबल आत्मविश्वास की भावना विकसित हुई। "इस प्रकार मराठा देश की प्राकृतिक संरचना, उसकी दुर्गम घाटियाँ एवं दुर्भेद्य पर्वतीय दुर्ग, महाराष्ट्र की सुरक्षा के लिए सर्वाधिक अनुकूल तथा आक्रमण के लिए सर्वाधिक खतरनाक बनते रहे।"[६] भौगोलिक परिस्थितियों के प्रसङ्ग में यह श्लोक दर्शनीय है–

दुर्धर्षकूटावलिभित्तिकल्पिते दुर्गप्रबन्धे प्रतिसानुवर्तिनि।
सह्याचलः काननराजिराजितः स्वातन्त्र्यगाथामिव यत्र रक्षति।।[७]

अर्थात् अनेक दुर्धर्ष-पर्वत श्रेणियों को दीवाल के रूप में व्यवहृत करता हुआ प्रतिशिखर पर दुर्गों का विधान रचकर, बीहड़ जङ्गलों से घिरा हुआ जहाँ पर सह्य गिरि मानों स्वातन्त्र्य-गाथा की सतत् रक्षा कर रहा है। सहयाद्रि के अनन्त दुष्प्रवेश्य कूट एवं शिखर तथा चारों ओर फैला दुर्गम वन उसे और अधिक दुर्भेद्य तथा सुरक्षित बना देते हैं।[८]

२. *भाषा की एकता*

महाराष्ट्र की मराठी भाषा ने भी लोगों को जोड़ने का कार्य किया, लोगों ने मराठी साहित्य से बहुत कुछ सीखा। वहाँ भाषा को लेकर कोई तनाव नहीं था। तुकाराम ने लोगों को जोड़ने में बहुत बड़ा योगदान दिया, 'त्रिपाठी' जी तो उन्हें चलता-फिरता तीर्थ कहते हैं–

निर्मुक्तबन्धे यदुदारदर्शने ज्योतिस्तदेकं निरूपाधि भासते।
वन्दामहे जङ्गमतीर्थमद्वयं तं श्रीतुकाराम मलक्ष्यलक्षणम्।।[९]

अर्थात् जिनकी मुक्त उदार दृष्टि में वही निरूपाधि भेदशून्य सत् ज्योति प्रकाशमान होती है उस मायाविमुक्त अभेदबुद्धि वाले, चलते-फिरते तीर्थ श्री तुकाराम महाराज की वन्दना करता हूँ। उस वीतराग महात्मा को स्थूल लक्षणों से जान लेना असम्भव था। यह भी दर्शनीय है–

सन्ततुकाराममहाराजः भक्तिप्रचारे महाभागवताः श्रीतुकाराम-एकनाथ-समर्थराम- दासादयः लोकविश्रुताः आसन्। महाराष्ट्रेषु प्रतिगृहं श्रद्धया पठ्यते श्रीतुकाराममहाराजविरचिता अभङ्गपदावली, उद्बोधकः जनजीवनस्य जातोऽयं महात्मा षोडशतम शताब्द्याः मध्यभागे।"[१०]

तुकाराम, वामन पण्डित, रामदास, एकनाथ, श्रीधर, रघुनाथ पण्डित तथा मोरोपन्त जैसे समाजसुधारकों एवं सन्तों के भजन, भक्तिगीत, उपदेश एवं वचन मराठी भाषा में रचे गये थे।[११] ये गीत भजन समस्त मराठा प्रान्त में गूँज उठे। महाभारत, गीता, भागवत, रामचरितमानस इत्यादि पढ़ लेने के बाद लोगों के (समान) आदर्श में समानता आ गई और मतभेद समाप्तप्राय हो गये एवं फलस्वरूप भाषा की भी एकता मराठा उत्कर्ष में सहायक हुई।

३. *निश्छल एवं वीर मावले लोग*

मावले अत्यन्त वीर थे। शिवाजी ने उन लोगों को महान् सङ्घर्ष में अत्यन्त विश्वसनीय पदों पर नियुक्त किया था। ये मावले वीर होने के साथ ही अत्यन्त निर्भीक थे। वे आवश्यकता पड़ने पर शत्रु का नाश करने को उद्यत रहते थे। उनमें सिंह के समान शक्ति भरी हुई थी। वे निश्छल थे अतः शिवाजी उनका आदर करते थे–

स मावलान् विक्रममौलिमण्डनान् सगन्धशत्रुद्विपकुम्भभेदिनः।
गुणादरात् केसरिणो यथाऽभयाम् विधेयविस्तम्भपदे न्यवेशयत्।।[१२]

मराठा शक्ति के उदय के आधार महाराष्ट्र के सम्पूर्ण निवासी थे।[१३] मराठा शक्ति के उत्कर्ष का इतिहास एक जनसमूह के उत्कर्ष का इतिहास है और एक ऐसे जागरण का इतिहास है, जो सम्पूर्ण महाराष्ट्र की जनता में व्याप्त था। शिवाजी से पहले ही महाराष्ट्र में ऐसी परिस्थितियाँ विद्यमान थीं जिससे मराठा शक्ति के उत्कर्ष की पृष्ठभूमि स्थापित हो चुकी थी, परन्तु कमी इस बात की थी कि इन तत्त्वों को एकत्र नहीं किया गया था। साथ ही स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना का विचार मराठों में नहीं आया था। इस कार्य की पूर्ति हेतु प्रयास शिवाजी ने किया था। इसी कारण वे मराठा राष्ट्र और

एक स्वतन्त्र हिन्दू राज्य के निर्माता बने। इन मौलिक सङ्कल्पनाओं तथा संगठन की अद्भुत सामर्थ्य से युक्त शिवाजी 'मराठा शक्ति के उत्कर्ष' के कर्णधार थे पर मावलों ने भी मराठों के उत्कर्ष में कम योगदान नहीं दिया। वे संशयरहित हृदय से शिवाजी के सङ्घर्ष में सहायता करने के लिए स्वयं तत्पर रहते थे, उनमें स्वदेश रक्षा के प्रति उत्साह था। शिवाजी के सैनिक मित्र तुल्य थे, (अर्थात् शिवाजी उन्हें अपना मित्र मानते थे) एवं वे अमर्यादित अन्यायियों का वध करने के लिए और पृथ्वी से अत्याचार मिटा देने के लिए मानो कृतसङ्कल्प थे। फलस्वरूप सामाजिक परिवेश में परिवर्तन आया, जो शत्रु कभी मराठों को त्रस्त और भयभीत करता था वह स्वयं भयभीत रहने लगा–

भृशं तपन्त्यो हृदये द्विषद्भवा भियो विलोक्याभिमुखं शिवं हठात्।
द्विषां परावृत्य रुषादहन्नसून् प्रयुक्तकृत्या इव लक्ष्यवञ्चिताः।।[१४]

शिवाजी स्वतन्त्रता के प्रेमी थे। यह शिवाजी की स्वातन्त्र्य निष्ठा का ही प्रभाव था कि जो भी उनके सम्पर्क में आता वह भी उसी रङ्ग में रग जाता था। वीर शिवाजी में व्यक्ति स्वातन्त्र्य निष्ठा को परखने की अद्भुत क्षमता थी यही कारण है कि वे सामान्य जन में भी आन्तरिक योग्यता को देखकर उसे दायित्वपूर्ण कार्य दे देते थे। यद्यपि 'मावले' ग्रामीण थे, शस्त्र-अस्त्र के विषय में अनभिज्ञ थे, पर शिवाजी ने उनमें छिपी हुई योग्यता को पहचान लिया था, अर्थात् उनके हृदय में छिपे स्वराज के बीज को पहचान लिया था–

असंस्तुतानायसपाटवेऽटवीजुषोऽपि भूष्णुः परिलोच्य मावलान्।
अकृष्टवप्रानिव सोर्वरोरसः स्वराज्यवीजोन्मिषितानमन्यत।।[१५]

इस प्रकार मराठों के उत्थान में 'मावले' भी सहायक हुए, जिन्होंने शिवाजी को अपना नेता माना एवं निश्छल भाव से देश रक्षा हेतु प्राण लुटाने को उद्यत रहे।

मराठा इतिहास में शिवाजी का योगदान

"शिवाजी का अभ्युदय सत्रहवीं सदी में हुआ था राजनैतिक दृष्टि से महाराष्ट्र उस समय पाँच भागों में बँटा हुआ था– बीदर, बरार, अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा"।[१६] इन राज्यों के बीच सङ्घर्ष

जारी था जिसके परिणामस्वरूप ये राज्य शक्तिहीन हो गये थे। फलतः पश्चिमी समुद्र तट पर पुर्तगाली फैल गये थे तथा दक्षिण में मुगलों ने प्रवेश कर लिया था। सामाजिक दृष्टि से उस समय महाराष्ट्र में सन्तों, विचारकों, विद्वानों तथा कवियों के कारण समाज में जाति विहीन समता की भावना फैल रही थी। भक्ति भावना के प्रचार के कारण समाज से वर्णभेद काफी समाप्त हो गया था। सन्तों के मानवतावादी विचारों के कारण ऊँच-नीच की भावना समाप्तप्राय थी। ग्रामों में भी सभी जातियों के लोगों के सम्बन्ध परस्पर अच्छे थे। अतः ऐसी समानता की भावना तथा मानवतावाद का लाभ शिवाजी ने अपनी संगठन कुशलता से उठाया। उन्होंने सभी जाति तथा वर्ग के लोगों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करते हुए उन्हें स्वाधीनता सङ्घर्ष में सम्मिलित किया–

समुत्सुका वह्निशिखेव चेतना सदोर्ध्वगा तस्य कृशाऽपि भास्वरा।
चकार वर्धिष्णुरूचिस्स्वरोचिषा सताम्ररागच्छवि दिग्वधूमुखम्।।[१७]

शिवराज की प्रदीप्त स्वातन्त्र्यनिष्ठा सबको अपने रङ्ग में रंग लेती थी। अग्नि शिखा के समान ऊपर उठने वाली पतली किन्तु प्रदीप्त, शिवराज की स्वातन्त्र्य चेतना सतत विकासमान अपने तेज से दिशाओं के मुखमण्डल को शोभा से भर देती थी। वीर शिवाजी गुलामी को अभिशाप की तरह समझते थे। गुलाम बनकर राजसी भोग का उपभोग करने की अपेक्षा दुःखपूर्ण स्वतन्त्रता ही शिवराज को प्रिय थी। मनस्वी शिवाजी निर्द्वन्द्व भोग से समृद्ध, वैभवपूर्ण दासता को बन्धन में बांध लेने वाली जड़ता के समान या धनलुब्ध वेश्या के समान अग्राह्य समझते थे। उन्हें तो स्वतन्त्रता ही मुक्ति के समान प्रिय थी, भले ही अनेक सङ्कटों से भरी हो पर उसमें सफल भविष्य का विधान प्रतिष्ठित है।

शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन

परम्परा का पोषण करने वाले श्रेष्ठ कुल में जन्म ग्रहणमात्र से श्रेय को कौन नहीं प्राप्त करता? किन्तु संसार में उसी का जन्म श्रेष्ठ है जिससे कुल की कीर्ति बढ़ती है। निःसन्देह शिवाजी का जन्म लेना मात्र ही कुल की कीर्ति को बढ़ाना था–

वंश प्रकर्षेण परम्परामृता श्रेयांसि विन्दन्ति न के शरीरिणः।
लोके परं सा जनिरूच्यते जनिवंशो ययाविष्कुरूते स्थिरं यशः।।[१८]

शिवाजी की जन्म तिथि के सम्बन्ध में यद्यपि इतिहासकार एकमत नहीं है फिर भी परमानन्द कवि के अनुसार शिवाजी का जन्म २९ फरवरी १६३० ई० को जुन्नार के समीप शिवनेरी के पहाड़ी दुर्ग में हुआ था। विदेशी इतिहासकार 'रालिन्सन' तथा 'ग्राण्ट डफ' ने शिवाजी की जन्मतिथि मई १६२७ ई० मानी है। लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक ने शिवाजी की जन्म तिथि ६ अप्रैल १६२७ ई० माना है। 'जेधेशकावली' के आधार पर शिवाजी का जन्म-तिथि २९ फरवरी १६३० ई० मानी गयी है।"[१९] इस प्रकार इतिहासकारों में इनके जन्म तिथि के सम्बन्ध में काफी मतभेद है।

जनश्रुति है कि प्राचीनकाल में मालोजी नामक एक शस्त्रविद्या में निपुण सज्जन हुए उनके आठ वर्ष के पुत्र को देखकर याधवराज ने प्रतिज्ञा की कि वे अपनी पुत्री का विवाह उसी बालक से करेंगे, परन्तु याधवराज की पत्नी मालोजी को अपने समकक्ष नहीं मानना चाहती थी, फिर भी मालोजी ने अनेक प्रकार से यत्न करके याधवराज की कन्या को अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार किया, वह कुलवधू शिवाजी को जन्म देने वाली जीजाबाई थीं; जिनके पुत्र के पराक्रम एवं तेज का साक्षी इतिहास है और युगों-युगों तक उस तेज को स्मरण किया जाता रहेगा–

आदर्श याथार्थ्यविदात्मनन्दिनी सा देवमायेव चरित्रदेवता।
तं रत्नसूनुं सुषुवे प्रजाभरं यत्तेजसाऽद्यापि वयं वयं युगे।।[२०]

आदर्श एवं याथार्थ्य के महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध को जानने वाली आत्मज्ञानवती उस देवमाया के समान महीयसी चरित्र लक्ष्मी ने उस प्रजापालक पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसके पराक्रम एवं तेज से आज भी हम जीवित है यदि क्षत्रपति न उत्पन्न हुए होते तो हममें से अधिकांश के लिए अस्तित्व का ही सङ्कट उत्पन्न हो गया होता।

"शिवाजी के पिता शाहजी भौंसले मेवाड़ के सिसौदिया वंश के क्षत्रिय थे और शिवाजी की माता जीजाबाई देवगिरि के यादव*

वंशीय क्षत्रियों के घराने की क्षत्राणी थी।"[२२] इस प्रकार शिवाजी के शरीर में भारत के दो प्राचीन राजवंशों का रक्त प्रवाहित हो रहा था। फलतः अपने पूर्वजों की वीरता एवं उनके साहस का प्रभाव नैसर्गिक रूप से शिवाजी के चरित्र एवं आचरण में घुल-मिल गया।

पिता शाहजी भोंसले के घर से दूर रहने पर भी उस शिशु की उचित शिक्षा-दीक्षा में कोई बाधा नहीं आयी।

स्थितेऽपि दूरं जनके यथाक्रमं विवेद वेद्यं नयनोत्सवः शिशुः।
अपत्यमेकाऽपि महीयसी प्रसूर्विभर्ति शास्त्रोदितसम्पदा ध्रुवम्।।[२३]

शाहजी भोंसले की अनुपस्थिति में अकेली मनस्विनी माँ ने अपनी सन्तान में यथानुकूल शील, विवेक, विद्या आदि सद्गुणों को भर दिया (ज्ञातव्य है कि शिवाजी का जन्म शिवनेरी दुर्ग में हुआ था। जागीर आदि की देखरेख में शाहजी भोंसले अक्सर घर से बाहर ही रहते थे, अतः शिवाजी की शिक्षा-दीक्षा माता के अनुशासन में हुई)।

शिवाजी विनयशील थे। वे कुछ नया करना चाहते थे। श्री कौण्डदेव जी के द्वारा उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई–

स कौण्ड देवादनुभूतिपेशलामपांसुलामाहितलोकसम्पदम्।
त्रिवर्गसारोपचितात्मविग्रहां सरस्वतीं प्रीतिमिवाश्रयद्धृदि।।[२४]

कौण्डदेव की शिक्षा पद्धति अनुभव पर आधारित थी, एवं पूर्णतया व्यावहारिक थी। शिवाजी ने धर्म, अर्थ, काम– त्रिवर्ग से पूर्ण विद्या को धारण किया। इस प्रकार शिवाजी अपने मङ्गलमय अध्यवसाय के लिए प्रसिद्ध हो गये। हमेशा प्रतिकूल परिस्थितियों में शिवाजी ने अपने पथ का निर्माण किया। शिवाजी के सम्मुख मुख्यतया दो ही समस्याएँ थी–

१. प्रजा को कष्ट पहुँचाने वाले शत्रु का संहार,
२. समाज का उत्थान।

शिवाजी के प्रारम्भिक उत्कर्ष से आक्रान्त तथा शत्रुदल के विनाशार्थ शिवाजी को उद्यत देख शत्रुलोक परेशान हो उठा–

असंस्तुतस्पन्दनवोद्गमैर्मुहुः स्वदक्षिणाशामचिराय वामता।
शिवेतरक्षेत्रवती व्यकम्पयद् विपक्षपक्षोत्कदनोद्यते शिवे।।[२५]

नवयुवक क्षत्रपति के आरम्भिक उत्कर्ष से आक्रान्त तथा शत्रुदल के विनाशार्थ उन्हें तत्पर जानकर भयभीत शत्रुलोक विकल हो उठा। उसकी दक्षिणी सीमा में कपकपी फैल गयी। अब तक शत्रु का भय से सामना नहीं हुआ था; किन्तु अब उसे अपने कल्याण में सन्देह होने लगा। बीजापुर आदि राज्यों में विशेषतः मुगल साम्राज्य के दक्षिणी भाग में विकलता बढ़ने लगी।

जीजाबाई अपने पति को सपत्नी में अनुरक्त देखकर भोगों को भ्रामक मानती थीं। वे अपने पुत्र शिवाजी के साथ एकान्त सेवन करती थीं, एवं उन्हें नित्य नयी-नयी धार्मिक एवं वीरता से परिपूर्ण कथायें सुनाया करती थीं। शिवाजी पूर्वजों की अतीतकालीन गाथा सुनकर तथा वर्तमानकालीन भारतीयों की दुर्दशा देखकर आश्चर्यचकित हो जाते थे–

स पूर्वजाराधितकीर्तिकीर्तनैः प्रवर्तमानाधिकथाकदर्थनैः।
अनारतं विस्मयसिन्धुमज्जितो भुवं ददर्शास्तफलामिव श्रुतिम्।।[२६]

नवयुवक शिवाजी भारतीय पूर्वजों की अतीतकालीन यशगाथा सुनकर तथा वर्तमानकाल में भारतीयों की दुर्दशा एवं प्रताड़ना देखकर विस्मय के समुद्र में डूब जाते थे कि कहाँ तो वह अतीतकालीन उज्ज्वल कीर्ति और कहाँ आज का पददलित जीवन उनको भारतभूमि दुर्भाग्यग्रस्त लगने लगती थी। समय बदलने लगा। शिवाजी अपने सैन्य शक्ति को सङ्गठित करके स्वतन्त्रता सङ्घर्ष में भाग लेने के लिए तत्पर हो गये। गुप्त एवम् एकान्त स्थल पर वे अपने सैन्य संगठन के साथ अभ्यास करने लगे–

वनान्तरालं गिरिनिम्नगातटान्यधित्यका मन्दिरगर्भभूमयः।
निरापदं शत्रुवधाध्वरर्त्विजो बलश्रमाभ्यासनिरीक्षणैर्षभुः।।[२७]

गुप्त, अज्ञात, बीहड़ स्थानों पर शिवाजी की सेनाओं का अभ्यास चलता था। शिविर लगता था। कभी गहन वन में, कभी पहाड़ी नदी के किनारे, कभी पहाड़ी के ऊपर, तो कभी मन्दिर की प्रशस्त गर्भभूमि

में। निरापद स्थानों पर वे शत्रु विनाशरूपी यज्ञ के पुरोहित अपनी सैनिक शाखाएँ लगाते थे। लोगों ने उस स्वतन्त्रता सङ्घर्ष में अपना कुछ न कुछ त्याग दिया; किसी ने अपने प्राण तो किसी ने अपनी धन सम्पत्ति को। शिवाजी नवयुवक थे। इस चञ्चल अवस्था में जब उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य भोग न बनाकर स्वतन्त्रता सङ्घर्ष में सर्वस्व त्याग बनाया, तो सज्जनों को अपने इस असाधारण चरित्र से विस्मय में डाल दिया। परिस्थिति सर्वदा शिवाजी के विरूद्ध रहती थी फिर भी शिवाजी आदर्श पथ थे, विचलित नहीं हुए–

अनाप्तपुण्योपचयं कुलं स्थितिः सपत्नसेवा चपलाग्रहं मनः।
सखान्तरायः स्वजना वनेचरास्तथापि नात्माऽचलदुत्तमात्पथः।।[२८]

शिवाजी का कुल कोई विशेष कीर्तिमान न था। पिता का व्यवसाय या आजीविका शत्रु कुल की सेवा ही थी। पिताजी शाहजी भोंसले बीजापुर राज्य के जागीरदार थे। नयी युवावस्था थी, अतः मन सहज ही चञ्चल था। विघ्न ही मित्र था। अपने लोगों के नाम पर उनके साथ जङ्गली लोग थे फिर भी शिवराज उस उत्तम पथ से विचलित न हुए। उन्हें स्वतन्त्रता प्रिय था। बाधाओं को नष्ट करके उन्होंने सिद्ध का अभिनन्दन किया। 'शत्रु ने सहसा शिव-शासित सहयाद्रिमण्डल पर आक्रमण किया था; किन्तु अत्यन्त उत्साह से महाराष्ट्र वीर शिवाजी ने उसे निष्फल बना दिया।''[२९] इस प्रकार सुरक्षित किले में निवास करने वाला शत्रु शिवाजी के आतंक से भयभीत रहता था। शिवाजी स्वातन्त्र्य लक्ष्य के लिए हार-जीत को समान दृष्टिकोण से देखते थे।

विभिन्न दुर्गों पर अधिकार

ऐतिहासिक प्रमाण मिलते है कि दादाजी कोणदेव की संरक्षता में शिवाजी ने पूना के आस-पास के किलों को जीतना आरम्भ कर दिया। 'कोणदेव' शिवाजी के इस कार्य से सहमत न थे, परन्तु वे शिवाजी के इस कार्य से रोक न सके। १६४७ ई० में कोणदेव की मृत्यु हो गयी और शिवाजी अपने दुर्ग विजय के कार्य में पूर्णतया स्वाधीन हो गये। उनकी अवस्था २० वर्ष की थी। उनके साथ अनेक साहसी और योग्य मराठा सरदार एकत्रित हो गये। उनके पिता शाहजी

ने १६३९ ई० में श्यामजी, नीलकण्ठ, बालकृष्ण दीक्षित, सोनाजी पन्त और रघुनाथ राव बल्लाल जैसे अनुभवी व्यक्तियों को शिवाजी के पास भेजा। शिवाजी ने वुकोजी और नारायण पन्त जैसे योग्य व्यक्तियों को स्वयं प्राप्त किया। १६४३ ई० में शिवाजी ने बीजापुर से 'सिंहगढ़' के किले को जीता और तदनन्तर धीरे-धीरे उन्होंने चाकन, पुरन्दर, बारावती तोनी, सूपा, तिकोना, लोहगढ़, रायरी (रायगढ़, जो बाद में उनकी राजधानी बना)आदि विभिन्न किलों पर अधिकार प्राप्त कर लिया।[३०]

पुरन्दर दुर्ग की विजय ने शिवाजी को अजेय बना दिया। इन्द्र के समान सुदृढ़ पुरन्दर के किले को पाकर शिवराज अजेय हो गये–

स्वदुर्गतामन्वभवत् पुरो द्विषाम् पुरन्दरेणेव पुरन्दरेण सः।
प्रसाद्य साम्ना विनयेन भूसुरान् मनोरथं को न वृणोति भूतले।।[३१]

पुरन्दर दुर्ग तथा साधु ब्राह्मणों की शुभ भावना ने शिवराज को अजेय बना दिया। पुरन्दर दुर्ग प्राप्त कर शत्रुओं के देखते ही देखते शिवराज शत्रुओं के लिए अजेय हो गये। यह उचित भी है विनय, मान, दान इत्यादि से साधु ब्राह्मणों को प्रसन्न करके उनका कौन भक्त अभीष्ट मनोरथ को नहीं पाता है? १६५६ ई० में शिवाजी की एक महत्त्वपूर्ण विजय 'जावली' की थी।[३२] ''शिवराज के राज्य विस्तार में अविजित जावली की स्थिति कांटे के समान थी।''[३३] शत्रु से मित्रता के बल पर जावली का शत्रु निश्चिन्त था।उसे भारतीयों की दुर्दशा पर तनिक भी दुःख न होता था। सहयाद्रि के वनों में रहने वाले प्राणियों को जावली के अत्याचार से मुक्त करने के लिए शिवाजी ने अपने बन्धु 'बल्लाल' को जावली के विरूद्ध भेजा।[३४] वल्लाल ने जावलीपति 'चन्द्र' को धराशायी कर उसके धन को शिवराज को समर्पित कर दिया। 'तानाजी मालसुरे' ने शिवराज के आदेश से 'तोरण दुर्ग' को जीत लिया–

पुरस्कृतं मालसुरेण धीमता विजित्य शत्रून् स्वपराक्रमासहान्।
अरिश्रियस्तोरणमेवतोरणममन्यताऽसौ स्वपदाङ्कितच्छवि।।[३५]

मालसुरे ने अपने पराक्रम से आक्रान्त शत्रुपक्ष को जीतकर उनके 'तोरण दुर्ग' को शिवराज की सेवा में समर्पित किया। तोरण दुर्ग की उपलब्धि पर महाराष्ट्र नायक को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उन्होंने शत्रुराज लक्ष्मी के तोरण (द्वार के वन्दनवार) को ही तोरण दुर्ग के ब्याज से पददलित कर दिया हो। दादाजी कौण्डदेव के दिवङ्गत हो जाने पर वीर शिव ने उस साधु शिक्षक एवं शुभचिन्तक को अपने अभ्युदय की उत्तरोत्तर प्राप्ति को अपने लोकमङ्गलमय पराक्रम से सूचित करने के लिए विजयों की शृङ्खला को बनाये रखा।[३६]

बीजापुर राज्य में आन्तरिक विप्लव से दुर्व्यवस्था बढ़ने लगी। वीर शिवाजी का मार्गप्रशस्त होने लगा। उसी समय बीजापुर राज्य में दुर्व्यवस्था बढ़ने लगी, 'शासक' राज्य की उपेक्षा करने लगे। 'चंकन दुर्ग' के रक्षकों ने स्वयं शिवराज को दुर्ग समर्पित कर दिया–

उपायनीकृत्य तदुद्यमाध्वरे पुरः स्वयं चङ्कणदुर्गरक्षिणः।
स्वदुर्गमह्राय निजाध्वगानिव न्यबोधयन् कौण्डनपांश्च तद्विधिम्।।[३७]

साथ ही 'कोण्डना दुर्ग' के रक्षकों ने भी चंकन दुर्ग के रक्षकों के मार्ग का अनुसरण किया अर्थात् कोण्डना दुर्वा शिवाजी को दे दिया।

'तोरण दुर्ग' पर अधिकार के साथ ही वीर शिवराज को अपार धन प्राप्त हुआ। इसी प्रकार अनेक शत्रुदुर्ग शिवाजी के अधिकार में आ गये।

ऐतिहासिक प्रमाणों को आधार मानकर देखा जाय तो शिवाजी का बीजापुर से कोई खुला सङ्घर्ष नहीं हुआ। सुल्तान मुहम्मद आदिलशाह उस समय (१६४६-१६५६ ई०) बीमार था और शिवाजी ने उसके दरबार में बहुत से सरदारों को रिश्वत देकर अपने पक्ष में कर रखा था। इस प्रकार, १६५६ ई० तक शिवाजी बिना किसी बड़े सङ्घर्ष के विभिन्न मराठा सरदारों को एकत्रित करने, विभिन्न दुर्गों को जीतने और महाराष्ट्र तथा कोंकण प्रदेश के कुछ भाग पर अधिकार करने में सफलता पा चुके थे।[३८]

इतिहास इस बात का गवाह है कि १६५७ ई० में शिवाजी का मुकाबला पहली बार मुगलों से हुआ। दक्षिण के सूबेदार शाहजादा

औरङ्गजेब ने बीजापुर पर आक्रमण किया और बीजापुर ने शिवाजी से सहायता मांगी। यह अनुभव करके कि दक्षिण में मुगलों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकना आवश्यक है, शिवाजी ने बीजापुर की सहायता करने के उद्देश्य से मुगलों के दक्षिण-पश्चिम भाग पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। इसी समय शिवाजी ने 'जुन्नार' को लूटा और स्थान-स्थान पर आक्रमण करके मुगलों को तंग कर दिया, परन्तु जब बीजापुर ने मुगलों से सन्धि कर ली तब शिवाजी ने मुगलों पर आक्रमण करना बन्द कर दिया। उत्तराधिकार के युद्ध के कारण मुगलों को प्रायः दो वर्ष तक दक्षिण भारत की ओर ध्यान देने का अवसर न मिल सका। इस अवसर का उपयोग शिवाजी ने सर्वप्रथम 'कोंकण' विजय के साथ किया।

परन्तु ''बीजापुर मुगलों से मुक्त होकर शिवाजी की शक्ति को दबाने के लिए तत्पर हो गया। १६५९ ई० में बीजापुर राज्य ने अपने एक प्रख्यात सरदार 'अफजल खां' को शिवाजी को कैद करने या मार डालने के लिए भेजा।''[३९]

क्षत्रपति के विनाश की बीजापुर में मन्त्रणा

बीजापुर के सुल्तान के शून्य हृदय में जो अंधेरा था वह शिवरूपी सूर्य के प्रकाश से भयभीत हो उठा। बीजापुर का सुल्तान विकल मन होकर उपद्रव पूर्ण भावनाओं से भर गया। बीजापुर का सुल्तान पहले से ही औरङ्गजेब के आतंक से आतंकित था। अब उसे शिवाजी की यश गाथा से भयभीत होने के कारण संसार ही नीरस लगने लगा। बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी को पराजित करने की मन्त्रणा हेतु मन्त्रियों की परिषद् बुलायी–

अवसरमिव सोऽनुचिन्त्य युक्तम् सदसिषदां सहठं विलोलधैर्यः।
शिवजयसवनाय नायकानां परिषदमाह्वयदाग्रहेण साधिः।।[४०]

परिषद् के वे सदस्यगण अत्यन्त कुशल एवं नीतिज्ञ थे, वे जब मन्त्रणा हेतु अपने आसन पर विराजमान हुए तो सुल्तान को ऐसा प्रतीत हुआ मानों उन्होंने अपने शत्रु को ही पराजित कर दिया। सुल्तान ने पहले तो उन अनेक कार्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की जो राज्य के लिए (बीजापुर के लिए) अत्यन्त हितकर थे तथा जिनके

द्वारा रियासत के राजभक्त कर्मचारियों की राजनिष्ठा तथा उनकी कार्यक्षमता का सम्मान बढ़ाता था। फिर उस सुल्तान ने अनेक प्रकार से बीजापुर के गरिमामय अतीत का तथा उसकी उपलब्धियों का प्रभावपूर्ण वर्णन किया और उसने एक क्षण के लिये परिषद् को मौन होकर देखा, उसके बाद बीजापुर के उस सुल्तान ने अपनी दुस्सह चिन्ता के कारण को स्पष्ट किया–

विषमनिकृतकारणं ततोऽसौ शिवकृतचापलमामयानुकारम्।
भृशतरमपकारि राज्यदेहे विषयमुखेन, निवेदयाञ्चकार।।[४१]

विषय को आरम्भ करते हुए उस सुल्तान ने अपनी दुस्सह चिन्ता के कारण को स्पष्ट किया। शिवराज द्वारा बेरोक-टोक विप्लव फैलाना राज्यरूपी देह में भयङ्कर बीमारी के समान अधिकाधिक दुःखदायी होता जा रहा था तथा उससे राज्य का घोर अहित हो रहा था।

उसने कहा– एक ओर तो अपने इस राज्य में निरन्तर उपद्रवों द्वारा शिवाजी अपनी शक्ति की वृद्धि कर रहे हैं,दूसरी ओर उत्तर से दिल्ली का बादशाह औरङ्गजेब कुदृष्टि लगाये है। इन दोनों शत्रुओं के बीच घिरी हुई वधू के समान राजलक्ष्मी का आलस्य त्याग कर निरन्तर सुरक्षित रखना आप लोगों का महान् कर्त्तव्य है। यदि इस भाग्यहीन शिवाजी को इसी प्रकार सदैव अपने मन की करने की सुविधा बनी रही और हम उपेक्षा करते रहे तो यह निश्चित है कि वह अल्पकाल में ही जनता के ऊपर अपना आतंकपूर्ण शासन स्थापित करने में सफल हो जायगा। शिवाजी के आक्रमणों से अरक्षित प्रजा बीजापुर की निष्ठा से विरक्त हो जायेगी तथा शिवाजी के प्रभाव में आ जायेगी। अतः शिवरूपी दावानल की शान्ति हेतु आप लोग विचारपूर्वक कोई कारगर उपाय अतिशीघ्र ढूँढ़े–

तदिह विधिममोघमाशु सिद्ध्यै शिव-दव-दूषण-शान्तये विविच्य।
निजनरपतिमानसानुतापम् प्रहरत नावसरः सदाऽभ्युपैति।।[४२]

इस प्रकार आपलोग अपने सुल्तान के मानसिक अनुताप को नष्ट करें। विश्वास करें अवसर बार-बार नहीं आता है। अस्तु इस सभा में उपस्थित आप लोगों में से जो शक्ति में अपने को सर्वश्रेष्ठ

समझता है जो तलवार की मूठ को पकड़ने में अद्वितीय हो, वह आगे आये और मेरे इस पान के बीड़े (पान का बीड़ा, किसी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए वीरों के सम्मुख रखा जाता था) को लेकर इसका सम्मान करे–

परिषदि कलितौजसां वरेण्यः खर-करवाल-कलाधरो मनस्वी।
तदिह हठमलङ्करोतु कश्चित् सुभटवरो जयपानवीटिकाम्मे।।[४३]

सुल्तान के प्रस्ताव के उपरान्त तत्काल उन्हीं शब्दों को दुहराती हुई राजमाता ने अपने ओजस्वी शब्दों से इस प्रस्ताव पर सभासदों को उत्साहित करते हुए विशद व्याख्या प्रस्तुत की।

सुल्तान का कथन प्रत्येक सभासद को उत्साहित करने की अपेक्षा कुण्ठित करता जा रहा था। उनके भाषण के बाद सहसा भय एवं संशय ने उत्पन्न होकर उन सभासदों की वाक् सम्पत्ति को मानो मूक कर दिया, उनका शिर झुक गया वे नीचे देखने लगे।

यही नहीं शिवराज के सैनिकों की गौरवगाथा को जानने वाली तथा अपनी विविध कार्य पद्धति की यथार्थतः सीमा को भी पूर्व अनुभवों से जानने वाली, उन सभी सभासदों की बुद्धि ने भी उन्हें मानो यही प्रेरणा दी कि वे पान का बीड़ा उठाने का दुस्साहसपूर्ण कार्य न करें। इस प्रकार जब सामन्तगण नीची दृष्टि किये हुए थे तभी अफजल खान हठपूर्वक बोल उठा– यदि जङ्गली, मराठा शिवाजी भी (सुल्तान की इच्छा के अनुसार) युद्धक्षेत्र में वीरगति के पुण्य को प्राप्त करने जा रहा है तो प्रकारान्तर से अपने सैनिकों तथा सामन्तों को यशपूर्ण गौरव की प्रतिष्ठा देने के लिए ही सुल्तान यह कृपा कर रहे हैं। शिवाजी परम सामान्य व्यक्ति है उसे परास्त करने के लिए मामूली प्रयास भी पर्याप्त होता; किन्तु यदि सुल्तान ने इतनी चिन्ता की है तो स्पष्ट है उस क्षुद्र शिवाजी के विरुद्ध सैन्य सञ्चालन होगा तथा अनायास ही सेनापति तथा सैनिकों को यश प्राप्त होगा, विशेष श्रम या उत्साह प्रदर्शन की स्थिति नहीं आयेगी। फिर भी यदि सभी शस्त्रधारी मौन हैं तो यह कथन सत्य ही है कि ''शौकिया तलवार बांध लेने से ही कोई वीर नहीं हो जाता'' इतना कहकर अफजल खाँ ने पान का बीड़ा मुँह में डाल लिया–

इति सरभसमुत्पात चण्डो मदकलिताक्षिविघूर्णितेन दृप्यन्।
सगरलमिव पानपत्रबन्धम् शिशुरिवमोदकमादधौ स्ववक्त्रे।।[४४]

१६५९ ई० में बीजापुर राज्य ने अपने एक प्रख्यात सरदार अफजल खान को शिवाजी को कैद करने या मार डालने के लिए भेजा।[२] उसके साथ करीब १० हजार घुड़सवार और एक अच्छा तोपखाना था। मार्ग में आते हुए अफजल खान ने मन्दिरों को तोड़ा, गांवों को उजाड़ दिया। इस प्रकार अनेक उपायों द्वारा शिवाजी को आतंकित किया। शत्रु सेना के पीछे चलने वाले लूटपाट करने वाले अर्धसैनिक सदा प्रत्येक वस्तु पर अपना अबाध अधिकार समझते थे–

अनवरतमशङ्किताधिकाराः मुहुरुपशल्यनिवासपाशवद्धान्।
अभिलषितपशून् विकर्षयन्तो द्विपदनुगाः गृहिणो व्यवाधयन्त।।[४५]

प्रायः गांव के किनारे पशुओं को रखने के लिए बाड़े बने हुए थे। अर्धसैनिकों ने धन, जन, पशु आदि को अपने साथ खींच कर ले जाते हुए बेचारे गरीब ग्रामीणों को भयङ्कर सङ्कट में डाल दिया। उस दुष्ट अफजल खान के सैनिकों ने पशुओं को मारकर खा डाला। अफजल खान ने लोगों की बहुओं की इज्जत लूटी तथा प्रतिष्ठा बचाने के प्रयास में जवान पुत्रों ने अपने प्राण निछावर कर दिये–

स्रवदविरतनेत्रवारिधाराः प्रसभ विषादनिपीतदेहसारान्।
पथविटपितले कुलार्भकानां करुणदृशः समबोधयन्त वृद्धान्।।[४६]

युवती स्त्रियों को सैनिक खींच कर ले गये, लोगों के घरों को जलाया। 'वाई' नामक स्थान पर आकर अफजल खाँ रुका। अब उसने कूटनीति का सहारा लिया। उसने अपने दूत 'कृष्णाजी भास्कर' को शिवाजी के पास भेजकर यह सन्देश दिया कि यदि शिवाजी उससे स्वयं आकर मिले और बीजापुर के आधिपत्य को स्वीकार कर लें तो वह उन्हें 'आदिलशाह' से क्षमा ही नहीं दिला देगा बल्कि जितने भूप्रदेश और किले शिवाजी के पास हैं उनको उन्हीं के जागीर के रूप में तथा कुछ अन्य प्रदेश भी जागीर के रूप में दिला देगा। 'कृष्णाजी भास्कर' शिवाजी से कहते हैं–

दिष्टया स एवाऽरणवर्त्मना त्वां सन्धित्सतीष्टात्मसखं नरेन्द्र।
चित्रं प्रदीपाशरणोऽपि वायुः स्वरंहसा वर्धयते दवाग्निम्।।[४७]

हे शिव यह सौभाग्य की बात है कि वही दुर्धर्ष सेनापति अफजल खान आपको अपना अनन्य मित्र मानते हुए आपको अयुद्ध मार्ग से (बिना शस्त्र उठाये) मित्र बनाना चाहते हैं, सन्धि करना चाहते हैं।

शिवाजी ने धर्म की दुहाई देकर 'कृष्णाजी भास्कर' से 'अफजल खान' की वास्तविक इच्छा को जानने का प्रयत्न किया।

इत्थं नृपस्यात्मनिदर्शनेन धृतो वसन्तेन यथाऽऽम्रशाखी।
नवं किमप्याततगौरवार्हं स्वस्मिन् प्रगल्भं द्रुतमन्वभूत् सः।।[४८]

राजा शिव की निश्छल आत्मस्थिति की अभिव्यक्ति ने पं० कृष्णाजी पर अतिशय प्रभाव डाला। वे शिवराज के आदर्श से मुग्ध हो गये। उन्होंने अनुभव किया कि देशहित के लिए व्यक्तिगत सुख-सुविधा का अणुमात्र भी महत्त्व नहीं है। इस प्रकार कृष्णाजी ने सङ्केत दिया कि अफजल खान का मन साफ नहीं है। अफजल खान वैसे भी विश्वास योग्य नहीं था, शिवाजी ने अफजल खान पर विश्वास नहीं किया एवं 'जैसे को तैसा' करने की इच्छा की।

शिवाजी द्वारा 'मोरो पिंगले' और 'नेताजी पालकर' को शीघ्रता से चुपके-चुपके प्रतापगढ़ के जङ्गलों में आने का आदेश दिया गया और 'गोपीनाथ' को दूत बनाकर अफजल खान के पास भेजा गया। 'गोपीनाथ' ने सन्देश दिया कि शिवाजी बहुत भयभीत है और यदि अफजल खान उन्हें क्षमा करने का आश्वासन दे तो वह प्रतापगढ़ के निकट उनसे मिल सकते हैं; किन्तु अफजल खान की सेना मैत्री में बाधा बन रही है–

परं प्रकृष्टायुधवर्तिनो भटानिहानुगान्ते समवेक्ष्य कातरः।
विशङ्कते सख्यपुरस्कृतोऽप्यसौ मनोरथं नन्दितुमाधिकम्पितम्।।[४९]

शिवाजी उत्तम शस्त्र धारण किये हुए आपके अनुचर वीर सैनिकों को देखकर भयभीत हैं; किन्तु इन सैनिकों की उपस्थिति उनके आपसे मिलन रूप हर्ष में बाधक हो रही है। अफजल खान इस बात पर तत्पर हो उठा–

'तथास्तु' सर्वे कथमायसत्विषं विसोढुमज्ञातरणोत्सवाः क्षमाः।
तमस्तधैर्यं त्वरितं समानय श्रयन्तु दूरावनिमेव मद्धराः।।[५०]

उसने कहा जो युद्ध के मादक रस से अपरिचित हैं वे भला लोहे (शस्त्र) की चमक को सहने में कैसे समर्थ हो सकते हैं? उस धैर्यहीन शिवाजी को लाओ, हमारे सैनिक दूर ही प्रतीक्षा करेंगे। ऐसा कहकर अपनी सेना लेकर प्रतापगढ़ से एक मील दूर जाकर रूक गया।

किले और अफजल खान की सेना के मध्य शिवाजी और अफजल खान के मिलने के लिए स्थान निश्चित किया गया। यह भी निश्चित हो गया कि शिवाजी और अफजल खान केवल दो-दो शरीर-रक्षकों को लेकर एक दूसरे से मिलने आयेंगे। शिवाजी को बिना अस्त्र-शस्त्र के आना था। शिवाजी ने अपनी सुरक्षा के लिए अपने अंगरखे के नीचे लोहे का कवच पहना, अपनी पगड़ी के नीचे लोहे की टोपी, पहनी और अपने बायें हाथ में बघनख तथा सीधे हाथ में तेज कटार छिपा लिया–

ततः शिरस्त्राणमभेद्यमायसं सुगुप्तमुष्णीषनिबद्धमुद्वहन्।
स्वकञ्चुकान्तर्धृतवर्मवेष्ठितं महौजसामायतनं श्रयन् वपुः।।
सुरक्षितां व्याघ्रनखीं कराङ्गुलौ शितक्षुरप्रं मणिबन्धरक्षितम्।
निधाय राजा परिधानसंवृतो दधार कण्ठे स्रजमम्बिकाधृताम्।।[५१]

अपने अंगरक्षकों के रूप में उन्होंने 'जीवमहल' और 'शम्भूजी', 'कावजी' को शस्त्रों सहित साथ रखा था–

तमन्वगातां बलिपूजितौजसौ स्वपक्षबन्धू परपक्षभेदिनौ।
कृपाणिकम्पो युधि जीवमाहलाः परश्च शम्भुःपरशम्भुराहवे।।[५२]

"अफजल खान सशस्त्र आया और उसके साथ दो अंगरक्षक आये जिनमें एक प्रख्यात तलवारबाज 'सैदय बांदा' था। शिवाजी के दूत 'गोपीनाथ' की प्रार्थना पर अफजल खाँ ने अपने एक हजार सैनिक बन्दूकचियों को मिलने के स्थान से कुछ दूर छोड़ दिया।[५३] अब शिवाजी अफजल खाँ से गले मिलने के लिए आगे बढ़ने लगे–

इतः शिवाजिस्त्वरितं पुरो ययावसौ विमुच्यासनमुत्थितस्ततः।
उभावपीद्धोत्कटसंशयोसौ परस्पराश्लिष्टतनू विरेजतुः।।[५४]

इधर से महाराज क्षत्रपति शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़े। तब उधर से अफजल खान भी अपना स्थान छोड़कर मिलने के लिए उठा। यद्यपि विभिन्न कारणों से दोनों का हृदय आशङ्का से भरा हुआ था। फिर भी दोनों एक दूसरे की भुजा में सुशोभित हो गये तभी–

तदैव वेगान्निजकक्षपिञ्जरप्रलीनमर्धानमसौ नरेश्वरम्।
करद्वितीयेन महासिनाऽहनत् तदीयकुक्षौ सहसा दुराशयः।।[५५]

तेजी से दुरात्मा ने एक हाथ से शिवाजी के गले पर दबाव दिया और दूसरे हाथ से शिवाजी पर तलवार से प्रहार किया। शिवाजी के कवच से उनकी रक्षा हुई और शिवाजी ने अपने बघनख व कटार को अफजल खान के पेट में घोंप दिया। अफजल खान ने घायल होकर शिवाजी को छोड़ दिया और जोर से चीखने लगा। शिवाजी ने उसके अशक्त शरीर पर प्रहार कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया–

उरः समन्विष्य तनुत्रयन्त्रितं हठात् क्षुरप्रेण तदैव वैरिणः।
विभिद्य तच्छाठ्यसखं न्यपातयत् क्षणेन भूमौ शिथिलाग्रहं वपुः।।[५६]

अर्थात् सेनापति के कवच के भीतर छिपे हुए उसकी कुटिलता के साथी उसके हृदय को छुरे से तुरन्त बींधकर वीर शिवाजी ने उसके शक्तिहीन शरीर को पृथ्वी पर गिरा दिया।

इस प्रकार शिवाजी के विनाश की जो मन्त्रणा बीजापुर में की गई थी वह सफल नहीं हुई एवं शिवाजी इस घटना से अपनी कीर्ति ही बढ़ाने में सफल रहे।

शिवाजी का ऐतिहासिक मूल्याङ्कन

यद्यपि इतिहास पर दृष्टि डाली जाय तो शिवाजी ने आजीवन शौर्य से वीरपूर्ण कार्य किये हैं– अफजल खाँ को परास्त करना, विभिन्न किलों को जीतना, सूबेदार शाइस्ता खाँ पर अचानक आक्रमण करना इत्यादि।

फिर भी कुछ स्थानों पर शिवाजी को मात भी खानी पड़ी, १६६५ ई० में औरङ्गजेब ने राजा जयसिंह को शिवाजी के विरूद्ध भेजा, शिवाजी ने निश्चय किया कि पुरन्दर किला उनके लिए बचा

पाना मुश्किल है, यह सोचकर उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया और बिना किसी शर्त के राजा जयसिंह से मिलने चले गये, जून १६६५ ई० में पुरन्दर सन्धि हो गयी। इस प्रकार तीन माह में ही जयसिंह की कूटनीति और शक्ति ने शिवाजी को मुगलों की अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इस सन्धि से शिवाजी को बहुत हानि हुई। १९६६ ई० में शिवाजी औरङ्गजेब से मिलने आगरा गये। शिवाजी को नजरबन्द भी कर दिया गया, अपने बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयासों द्वारा शिवाजी रायगढ़ वापस पहुँचे। १६६८ ई० में शिवाजी ने मुगलों से एक सन्धि कर ली। १६७० ई० में शिवाजी ने मुगलों से पुनः युद्ध आरम्भ किया। पुरन्दर की सन्धि द्वारा खोये गये अपने अनेक किलों को शिवाजी ने पुनः जीत लिया। १६७० ई० में सूरत के बन्दरगाह को दुबारा लूटा। १६७२ ई० में मराठों का सङ्घर्ष बीजापुर से भी हुआ जबकि मराठों ने पन्हाला पर आक्रमण किया। मराठों ने पन्हाला, पार्ली और सतारा के दुर्गो को भी जीत लिया। इस प्रकार कुछ ही वर्षों में शिवाजी ने मुगलों और बीजापुर से अनेक दुर्गों और भू-प्रदेशों को जीता।

१६७४ ई० में शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक किया, क्षत्रपति की उपाधि ग्रहण की और रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया।

संक्षेप में शिवाजी का शासनकाल काफी अच्छा रहा। इतिहास पर दृष्टि डाली जाय तो उपर्युक्त घटनाओं के अतिरिक्त अन्य कई घटनाएँ शिवाजी के ऐतिहासिक मूल्याङ्कन के अन्तर्गत ली जा सकती हैं; किन्तु डॉ० उमाशङ्कर शर्मा त्रिपाठी जी ने अन्य सभी घटनाओं का क्षत्रपतिचरितम महाकाव्य में उल्लेख नहीं किया है। उमाशङ्कर ने शिवाजी से सम्बन्धित जिन महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर प्रकाश डाला है, संक्षेप में उनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है–

अफजल खान की मृत्यु के बाद शिवाजी ने कोंकण और कोल्हापुर प्रदेशों पर आक्रमण किया और पन्हाला तथा आस-पास के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। अफजल खान की घटना ने शिवाजी की कीर्ति बढ़ा दी। १६६२-६३ ई० में शाहजी के हस्तक्षेप के कारण शिवाजी ने बीजापुर से यह समझौता कर लिया कि वे एक दूसरे की सीमाओं पर आक्रमण नहीं करेंगे और मिलकर मुगलों का विरोध

करेंगे। इसके पश्चात् शिवाजी का बीजापुर से कोई महत्त्वपूर्ण सङ्घर्ष नहीं हुआ यद्यपि १६७३ ई० में शिवाजी ने पन्हाला को पुनः जीत लिया और १६७७-१६८० ई० के समय में बीजापुर से उन किलों को भी छीन लिया जो बीजापुर ने गोलकुण्डा से जीते थे। इस प्रकार शिवाजी ने बीजापुर राज्य से सङ्घर्ष करते हुए सफलता प्राप्त की।

मुगल सेनापति शायिस्ता खान का पराभव

१६६० ई० में मुगल सूबेदार शाइस्ता खान को शिवाजी को समाप्त करने के आदेश प्राप्त हुए थे।[५७] औरङ्गजेब यद्यपि दिल्ली का बादशाह था फिर भी बीजापुर को हस्तगत करने की उसके अन्दर तीव्र लालसा थी। कहा भी जाता है कि इच्छित शिकार प्राप्त करने पर भी क्या बहेलिये का मन शिकार करने से विरत हो जायेगा–

किमु लब्धपदोऽपि लुब्धकात्मा वृणुते स्वाधमवर्त्मने न रागम्।
मधुपूरमुखोऽपि किं मृगेन्द्रः क्षतजाऽऽस्वादमुपेक्षते कदापि।।[५८]

स्वभाव वस्तुतः अलङ्घ्य होता है। सिंह का स्वभाव रक्त पीना है यदि उसे मधुपान कराया जाय तो क्या वह रक्त पीने की इच्छा त्याग देगा? कदापि नहीं। विडाल के समान लोभी प्रकृति वाला औरङ्गजेब अपने मामा शायिस्ता खान को दक्षिण भारत को अपने राज्य में मिलाने के लिए आदेश देता है–

निजमातुलमोतुलोललीलः सठठं धीवरमात्रसैन्यजालम्।
निदिदेश मनोरथानुबन्धे तरसा याम्यविलोभनाय जैत्रः।।[५९]

शायिस्ता खान कई युद्धों में भाग लेने के कारण अपने युद्धकौशल में अभ्यस्त था। शायिस्ता खान ने वीर शिवाजी को सङ्कट में डालना आरम्भ किया। सैनिक महत्त्व के स्थानों पर सेना की टुकड़ियों को नियुक्त करने से उसने महाराष्ट्र केसरी को विषम स्थिति में डाल दिया। 'चाकन' दुर्ग के भयङ्कर युद्ध में क्षत्रपति के सेनापति 'नारसाल' शत्रु के संख्याबल के कारण पराजित हो गये थे। इस प्रकार शायिस्ता खान ने शिवाजी से पूना, चकन और कल्याण को छीनने में सफलता पाई। प्रायः दो वर्ष के युद्ध में शाइस्ता खान ने शिवाजी के कुछ-कुछ

स्थानों और किलों को जीतने में सफलता पाई, परन्तु शिवाजी युद्ध करते रहे। १६६३ ई० में 'शाइस्ता खाँ' ने पूना में वर्षा बिताने की योजना बनायी। १५ अप्रैल सन् १९६३ ई० को शिवाजी चुपके से पूना में प्रवेश कर गये–

व्यपदेशनिवारिताध्ववाधः शिवराजो हठरक्षितस्ववेषः।
द्विशतेन सह स्वसैनिकानामविशत् पुण्यपुरं सपत्नरूद्धम्।।[६०]

प्रचलित किंवदन्ती एवं इतिहास प्रसिद्ध भी है कि बारातियों के वेश में शिवाजी ने पूना में अपने सैनिकों के साथ प्रवेश किया था। रात्रि बड़ी निस्तब्ध थी। चारों ओर सन्नाटा था। शिवाजी ने रात्रि में ही शाइस्ता खाँ के महल पर आक्रमण करने में सफलता पाई एवं शाइस्ता खान को अपने साहसपूर्ण प्रयोग द्वारा पूना से खदेड़ कर क्षत्रपति ने विभिन्न क्षेत्रों को विशेष ढंग से प्रभावित किया।

किन्तु इस आक्रमण में शिवाजी शायिस्ता खाँ की केवल दो अंगुलियाँ काटने में सफल हुए–

परमर्कयशाः शिवोऽसिमुद्रामलिखच्छत्रुकृपाणबद्धमुष्टौ।
कृतिशुल्कमिवाङ्गुलिद्वयं सो द्रुतमापात्य बलिस्मृतिं ररक्ष।।[६१]

यद्यपि शिवाजी इस रात्रिकालीन आक्रमण में मुगल सेनापति की केवल अंगुलियां ही काटने में सफल हुए पर यह रात्रिकालीन आक्रमण बहुत सफल रहा। वस्तुतः अफजल खान की पराजय के बाद यह दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना थी जिसने क्षत्रपति की कीर्ति विभिन्न क्षेत्रों में फैलाई एवं लोगों पर अपना विशेष प्रभाव डाला।

सूरत पर आक्रमण

सूरत आधुनिक गुजरात प्रान्त का एक समृद्ध व्यापारिक नगर है। उस समय भी सूरत व्यापार का केन्द्र था। अंग्रेजों की अपनी व्यापारिक कोठियाँ भी वहीं स्थापित थीं। मुगलों को वहाँ से प्रभूत मात्रा में कर उपलब्ध होता था–

नहि केवलमत्र वाहिनीनामपि गान्धारजुषाञ्च युद्धसज्जाम्।
सहजार्पितपुष्कलात्मशुल्कै रचितुं सूरतनैगमाः समर्थाः।।[६२]

सूरत के सहारे दिल्ली भयङ्कर युद्धों में विपन्न होकर भी स्वस्थ, सम्पन्न हो जाती थी। इस सूरत दुर्ग में नियुक्त मुगल सेना कर्त्तव्यपरायण न थी। चाटुकार स्वार्थी दुर्गपाल में उसकी (सेना की) तनिक भी आस्था न थी। यह जानकर शिवाजी ने १० फरवरी, १६६४ ई० को सूरत पर आक्रमण किया। सूरत की रक्षा में नियुक्त सेना ने जैसे ही सुना कि चार हजार मराठे घुड़सवार बिजली के वेग से नगर पर आ रहे हैं हड़बड़ी में अपनी स्त्रियों तक को अरक्षित छोड़कर वे सैनिक कायरों की भाँति भागकर सुरक्षार्थ किले के भीतर पहुँच गये। मराठों के इस आकस्मिक अभियान ने परिखा परकोटे को तोड़ दिया।

परिखामिव सन्निपात्य लज्जां पुरलक्ष्म्या नवसङ्गमप्रयोगे।
शिवमावलविक्रमो हठात्तां विदधे लोलविधेयनिस्साहाङ्गीम्।।[६३]

क्षत्रपति के मावले सैनिकों ने हठपूर्वक बलप्रयोग से सूरत को मथ डाला। सूरत की भूमि ने सुवर्ण की वृष्टि करके विजेता मावले सैनिकों को आश्चर्यचकित कर दिया। सूरत का किला लूट लिया गया। प्रकट हो गया कि दिल्ली असमर्थ है वह अपनी वीरता की व्यर्थ ही डींग हांकती है। इस प्रकार शायिस्ता खान एवं सूरत के मानमर्दन द्वारा मुगल बादशाह औरङ्गजेब की युद्धाभिलाषा को उसी की सम्पत्ति से तृप्त करके सूरत के साथ ही मदोत्कट दिल्ली को भी वीर क्षत्रपति ने ग्लानि से मूर्च्छित कर दिया–

अवरङ्गनृपाहवाभिलाषं परितर्प्यार्य्यवरस्तदीयकोषैः।
सह सूरतसम्पदैव दिल्लीं विषमेऽमर्दयदुत्कटोन्मदिष्णुम्।।[६४]

औरङ्गजेब का राजा जयसिंह को शिवाजी के विरुद्ध भेजना

मराठों के निरन्तर अभियानों से विपन्न दक्षिणी मुगल साम्राज्य अपनी प्रतिष्ठा तथा प्रभाव सुरक्षित रखने में असमर्थ हो उठा। शिवराज के सफल अभियानों से दिल्ली भयभीत हो गयी। औरङ्गजेब का पुत्र 'शाहजादा मुअज्जम' नयी अवस्था के कारण रंगरेलियों में डूबा हुआ था। उसी समय मराठों ने अपना साहसिक अभियान तेज कर दिया। महाराजा 'जशवन्त सिंह' ने 'पन्हला' दुर्ग पर आक्रमण किया; किन्तु उन्हें निराशा हाथ लगी। दिल्लीपति औरङ्गजेब की मानसिक विकलता

बढ़ गयी। उसने १६६५ ई० में राजा जयसिंह को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। राजा जयसिंह अपने समय का योग्यतम सेनापति था। साथ ही एक कूटनीतिज्ञ भी था। शाहजहाँ के शासन काल में उसने मुगल साम्राज्य के प्रत्येक भाग में युद्ध किया था। सैकड़ों युद्धों में भाग लिये हुए इस योग्य राजपूत सेनापति को ६० वर्ष की आयु में औरङ्गजेब ने शिवाजी के विरुद्ध भेजा। महाराजा जयसिंह शिवराज के शत्रु औरङ्गजेब दिल्लीपति के परम विश्वासपात्र थे–

विश्वासभूः शिवारातेः शस्त्रशास्त्रपरावधिः।
सुधालेप इवानन्यः शयिताश्वक्षतोरसः।।[६५]

जयसिंह शस्त्र व शास्त्र की पराकाष्ठा थे तथा शायिस्ता खान के क्षत-विक्षत हृदय के लिए अनुपम अमृत लेप थे। जयसिंह ने शक्ति एवं कूटनीति दोनों का सहारा लिया–

कूटनीतिरनार्याणामा- र्याणाञ्चेष्टविक्रमः।
द्वयं सहस्थितिं भेजे जयसिंहे यशस्विनि।।[६६]

एक शक्तिशाली मुगलसेना के दक्षिण में प्रवेश करने से यह सम्भावना थी कि गोलकुण्डा और बीजापुर के राज्य तथा शिवाजी मुगलों के विरुद्ध एक हो जायेंगे। जयसिंह ने इसे रोकने के लिए कूटनीति का सहारा लिया। उसकी नीति सफल रही और बीजापुर ने शिवाजी का साथ नहीं दिया। वे सभी मराठा सरदार जो शिवाजी से ईर्ष्या करते थे, मुगलों की सेवा करने के लिए प्रोत्साहित किये गये। जयसिंह ने शिवाजी के सरदारों को भी लालच देकर अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। इस प्रकार पूरी तैयारी करके जयसिंह ने शिवाजी के विरूद्ध आक्रमण किया। 'वज्रगढ़' को जीतकर जयसिंह ने 'पुरन्दर' के किले में शिवाजी को घेर लिया। आसपास के मराठा प्रदेश को बर्बाद करने के लिए मुगल सेना भेजी गयी किले पर अत्यधिक दबाव डाला गया। यह देखकर कि 'पुरन्दर' किले की रक्षा सम्भव नहीं है, शिवाजी ने सन्धि को ही उचित समझा। सन्धि के पश्चात् शिवाजी औरङ्गजेब से मिलने आगरा गये। राजा जयसिंह ने अपने पुत्र को शिवाजी की आगवानी के लिए नियुक्त किया था–

जयसिंहसुतस्निग्ध- विनयाचारनन्दिनः।
ग्रीष्मतापोऽपि शैथिल्यमतिथेरन्वभूदिव।।[६७]

राजा जयसिंह के पुत्र के प्रेमपूर्ण आगवानी को देखकर क्षत्रपति प्रसन्न हो गये। राजा जयसिंह ने शिवाजी को उनकी सुरक्षा के बारे में पूर्णतया आश्वस्त किया था। राजा जयसिंह ने शिवाजी को अपने पुत्र रामसिंह की व्यक्तिगत सुरक्षा में रखने का विश्वास दिलाया था। शिवाजी आगरा गये। शिवाजी जब औरङ्गजेब के दरबार में पहुँचे तब कुछ झुककर 'महाराष्ट्र के मेघ ने सुवर्णवृष्टि' से आगरा के आंगन को भर दिया अर्थात् शिवाजी ने बहुमूल्य उपहार औरङ्गजेब के समक्ष प्रस्तुत किया–

नमन्महाराष्ट्रबलाहकस्तनः सुवर्णवृष्ट्याऽभरदागराजिरम्।
तथापि न स्निग्धनवाङ्कुरोद्भवा नभोमुखं दृष्टिरूदैदनार्जवा।।[६८]

फिर भी वह कठोर दृष्टि नवाङ्कुर की आशा से स्निग्ध होकर कृतज्ञतावश आकाश की ओर न उठी। क्षत्रपति ने बादशाह पर सोना,चांदी न्योछावर करके उपायन, प्राभृतक, भेंट किया; किन्तु बादशाह की कठोर दृष्टि उन पर आदरपूर्वक न पड़ी। तब निर्दिष्ट मार्ग से क्षत्रपति को पाँचहजारी सामन्तों के लिए निश्चितस्थान पर ले जाते हुए दरबारी ने क्षत्रपति की ओर घूरते हुए देखा। क्षत्रपति को पञ्चहजारी पद दिया गया जो अत्यन्त अपमानजनक था। शिवाजी उसी समय मनसबदारों की पंक्ति से निकलकर बाहर जाकर बैठ गये। शिवाजी ने जयसिंह के पुत्र रामसिंह से कहा–

अये त्वया त्वज्जनकेन वाऽपरैरदृष्टपूर्वा न ममार्यसम्पदः।
वदेहशीमर्हति किं मम स्थितिर्विडम्बनां त्वनरपालदर्शितम्।।[६९]

अरे तुमसे या तुम्हारे बाप से या औरों से मेरी स्थिति छिपी नहीं है, तुम लोग मेरी दशा से पूर्व परिचित हो। कहो तुम्हारे बादशाह ने जो अपमान प्रदर्शित किया है क्या मैं इसी का पात्र हूँ। शिवाजी को नजरबन्द कर दिया गया। शिवाजी औरङ्गजेब की कैद में अस्वस्थ हो गये, तब औरङ्गजेब ने लोकापवाद से बचने हेतु वैद्य का प्रबन्ध किया। वैद्य के रूप में शिवाजी के मित्र 'तानाजी' उनके पास पहुँच गये एवम् उन्होंने शिवाजी को औरङ्गजेब की कैद

से मुक्ति दिलाया।

दरबार में अनेक ऐसे व्यक्ति थे, जो शिवाजी को मरवा देना चाहते थे। अतः शिवाजी को वहाँ से निकलने के लिए इस मार्ग (मिठाई के टोकरे में छिपकर जाना) का पालन करना पड़ा। अन्ततः शिवाजी भागने में सफल हुए। बादशाह शिवाजी के गायब हो जाने से स्तब्ध रह गया।

प्रायः इतिहासकारों में मतभेद है कि महाराज ने किस मार्ग द्वारा महाराष्ट्र में प्रवेश किया। यह सभी जानते है कि तीर्थयात्रियों के रूप में तीर्थों में घूमते वृन्दावन, प्रयाग, वाराणसी, विन्ध्याचल होते हुए वे साधु वेश में महाराष्ट्र की ओर अग्रसर हुए। मथुरा में ही बीमार शम्भाजी को महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों की देखरेख में सौंपना पड़ा। इस प्रकार शिवाजी की आगरा यात्रा निरर्थक रही।

कोण्डना दुर्ग विजय

एक दिन यशस्विनी देवमाता जीजाबाई ने रायगढ़ दुर्ग के उच्च शिखर से 'कोण्डना' की ओर देखा और शत्रु के वश में विकल उसकी दुर्दशा से वह धैर्यहीन हो गयी। उनके युवापुत्र ने उनकी भावना को समझा तब शिवाजी ने अपने अनन्य मित्र 'तानाजी मालसुरे' को कोण्डना विजय की कीर्ति से यशस्वी देखने की इच्छा व्यक्त की। तानाजी मालसुरे ने अपने साहस से कोण्डना दुर्ग को जीता। जिसे शिवाजी ने सिंहगढ़ नाम दिया। उस क्षत्रपति ने उत्कृष्ट कीर्तिवाली माता को सिंहदुर्ग समर्पित कर दिया–

मात्रे राजा प्रथितमहसे कोण्डनां तां समर्प्य,
जन्मावन्यै हृदयमिव तं सिंहमित्रञ्च दत्वा।
आर्तो गत्वा प्रियसखिगृहं तज्जनांश्चानुतोष्य,
वत्सोद्वाहे जनकपरमोऽरञ्जयत्तत्कुटुम्बम्।।[७०]

इस प्रकार कुछ ही वर्षों में शिवाजी ने मुगलों और बीजापुर से अनेक दुर्गों और भूप्रदेशों को जीतने में सफलता प्राप्त की।

१६७४ ई० में शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक किया, क्षत्रपति की उपाधि ग्रहण की और रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया।[७१]

समीक्षा

मराठों के उत्कर्ष में शिवाजी मुख्य रूप से सहायक हुए किन्तु गौड़ रूप से मराठों के उत्कर्ष में अनेक कारक सहायक रहे उनमें सर्वप्रथम नाम महाराष्ट्र के 'मावले' वीरों का आता है। मराठों के उत्थान में महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थितियाँ भी सहायक रहीं। महाराष्ट्रवासियों की मराठी भाषा भी मराठों के उत्थान में सहायक रही। मराठों के उत्थान में शिवाजी के योगदान को भुलाया जा पाना असम्भव है। शिवाजी ने विभिन्न दुर्गों पर अपना आधिपत्य किया। यही नहीं अपितु उन्होंने अफजल खान का वध करके कूटनीति की परम्परा को भी सिद्ध किया। शिवाजी को औरंगजेब द्वारा छल प्रपञ्च से बन्दी भी बनाया गया किन्तु शिवाजी ने हर समस्या का सामना अत्यन्त वीरतापूर्वक किया। अन्ततः शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ एवं वे राजा बने। उनके हिन्दू राष्ट्र निर्माण का स्वप्न भी (कुछ वर्षों के लिए) साकार हुआ। इस प्रकार स्पष्ट है कि शिवाजी का मराठों के उत्थान में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सन्दर्भ

१. क्षत्रपतिचरितम्, ३.२३.

२. वही, ३.२४.

३. वही, ३.३७.

४. वही, ३.४१.

५. वही, ३.४४.

६. एडवर्ड सालवान, दि काकर्स वारियस एण्ड स्टेट्समैन ऑफ इण्डिया, पृष्ठ ३६९.

७. क्षत्रपतिचरितम्, २.१५४.

८. वही, पृष्ठ ७३.

९. वही, २.१५८.

१०. वही, पृष्ठ ७४.

११. मध्यकालीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ४०८.

१२. क्षत्रपतिचरितम्, ३.४७.

१३. मध्यकालीन भारत, १०००-१७६१, एल०पी०शर्मा, पृष्ठ ४०७.

१४. क्षत्रपतिचरितम्, ३.५६.

१५. वही, ३.६७.

१६. डॉ० के०एल० मित्तल का मध्यकालीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, (मराठों का उत्थान, पृष्ठ १९७).

१७. क्षत्रपतिचरितम्, ३.६६.

१८. वही, २.१७९.

१९. मध्यकालीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, मराठों का उत्थान, पृष्ठ १९७.

२०. क्षत्रपतिचरितम्, २.१७८.

*. क्षत्रपतिचरितम् में 'याधवराज' आया हुआ है एवं इतिहास की पुस्तकों में 'यादव' आया हुआ है.

२१. मध्यकालीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, (मराठों का उत्थान, पृष्ठ १९७).

२२. क्षत्रपतिचरितम्, ३.६.

२३. वही, ३.१४.

२४. वही, ३.२१.

२५. वही, ३.३६.

२६. वही, ३.५५.

२७. वही, ३.६०.

२८. वही, पृष्ठ १०१.

२९. मध्यकालीन भारत, एल०पी० शर्मा, १०००-१७६१, पृष्ठ ४११.

३०. क्षत्रपतिचरितम्, ३.७६.

३१. मध्यकालीन भारत, पृष्ठ ४११.

३२. क्षत्रपतिचरितम्, ३.७७.

३३. वही, ३.७९.

३४. वही, ३.८१.

३५. वही, ३.८२.

३६. वही, ३.८४.

३७. मध्यकालीन भारत, पृष्ठ ४११.

३८. वही, पृष्ठ ४११-४१२.

३९. क्षत्रपतिचरितम्, ५.११.

४०. वही, ५.१४.

४१. वही, ५.२०.

४२. वही, ५.२२.

४३. वही, ५.३०.

४४. मध्यकालीन भारत, पृष्ठ ४१२.

४५. क्षत्रपतिचरितम्, ५.७३.

४६. वही, ५.७९.

४७. वही, ७.३५.

४८. वही, ७.६६.

४९. वही, ८.३७.

५०. वही, ८.४१.

५१. वही, ८.४२,४३.

५२. वही, ८.४५.

५३. मध्यकालीन भारत, पृष्ठ ४१२.

५४. क्षत्रपतिचरितम्, ८.६१.

५५. वही, ८.६२.

५६. वही, ८.६५.

५७. मध्यकालीन भारत, एल०पी०शर्मा, पृष्ठ ४१३.

५८. क्षत्रपतिचरितम्, १०.५.

५९. वही, १०.६.

६०. वही, १०.४०.

६१. वही, १०.५५.

६२. वही,१०.८४.

६३. वही, १०.९८.

६४. वही, १०.१०४.

६५. वही, १२.७.

६६. वही, १२.८.

६७. वही, १२.१९५.

६८. वही, १४.१४.

६९. वही, १४.२१.

७०. वही, १६.८९.

७१. मध्यकालीन भारत, पृ० ४१५.

*****

चतुर्थ अध्याय

महाकाव्य के नायक शिवाजी का चरित्र-चित्रण

४

महाकाव्य के नायक शिवाजी का चरित्र-चित्रण

इस बात में कोई संशय नहीं है कि 'शिवाजी' का व्यक्तित्व अपने युग का ही नहीं बल्कि अनेक युगों का एक असाधारण व्यक्तित्व माना जा सकता है। 'शिवाजी' प्रत्येक दृष्टि से आदर्श थे। वे गुरुभक्त, मातृभक्त, देशभक्त थे। इन सभी बातों के साथ वे आदर्श पुत्र, आदर्श पिता, आदर्श राजा एवम् आदर्श मित्र थे। उन्हें स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु किन-किन परिस्थितियों को झेलना पड़ा, इतिहास इस बात का गवाह है। दयालुता, सहिष्णुता, सद्व्यवहार, साहस, शौर्य, पवित्र विचार ये सभी गुण उनमें विद्यमान थे। वे सद्गुणों के कोष थे, उनके गुणों के पक्षों को इस प्रकार समझा जा सकता है–

१. मातृभक्त

'शिवाजी' का जन्म 'शिवनेरी दुर्ग' में हुआ था। जागीर आदि की देख-रेख में पिता 'शाहजी' को बहुधा बाहर ही रहना पड़ता था। अतः 'शिवाजी' की शिक्षा-दीक्षा माता 'जीजाबाई' के ही संरक्षण में हुई थी। 'शिवाजी' ने माता के साहचर्य में अपेक्षित बुद्धि बल प्राप्त किया था। माँ के पीछे चलने वाले उस बालक ने गोशाला, मन्दिर, नटीतट आदि को देखा था–

पदात्पदं तां जननीमनुव्रजन व्रजे गवां देवगृहे तटेऽर्भकः।
चरित्रनिष्ठामनुषङ्गनन्दिनीमुवाह सङ्कल्पधियञ्च मानिनाम्।।[1]

'शिवाजी' ने माँ की देखरेख में सहज रूप में विकसित होती हुई चारित्रिक निष्ठा एवं महापुरुषों की सङ्कल्पबुद्धि को भी आत्मसात कर लिया। माता से 'शिवाजी' ने रामायण एवं महाभारत की कथाएँ सुनी। इन कथाओं को सुनने के पश्चात् शिवाजी के व्यक्तित्व में दयाभाव, वीरता, ईमानदारी ये सभी भाव स्वयं जुड़ गये। घर में माँ 'जीजाबाई' अपने पुत्र 'शिवाजी' के लिए बहन, मित्र, बन्धु सब कुछ थीं–

स्वसा सखा बन्धुरहार्यगौरवा प्रसूः स्वपुत्राय ननन्द सद्मनि।
ऋते जनन्याः परमं न चात्मनः स मातृदेवोऽपि विवेद दैवतम्।।[2]

'शिवाजी' माता को ईश्वर की प्रतिमूर्ति मानते थे। एक बार माता 'जीजाबाई' ने 'कोण्डना दुर्ग' को देखा–

सुव्रतादितिरिवैकदा प्रसू रायदुर्गशिखराट्टवर्तिनी।
कोण्डनामरिनिकारमूर्च्छितां वीक्ष्य नाक्षमत धैर्यमात्मनि।।[3]

शत्रु के वश में उस किले को देखकर 'जीजाबाई' अधीर होने लगीं। (शिवाजी माँ की भावनाओं का अनुकरण करने वाले थे, शिवाजी जान गये कि माता क्या चाहती हैं? उन्होंने माता की भावना को अपने शिर पर धारण कर लिया।) 'जीजाबाई' ने 'शिवाजी' के साथ जुआ खेलने की इच्छा व्यक्त की एवं जीतने पर 'कोण्डना दुर्ग' की वाञ्छा की। इस द्यूतक्रीड़ा में 'जीजाबाई' ने 'शिवाजी' को पराजित कर दिया, शिवाजी ने माता की इच्छा के अनुरूप 'कोण्डना दुर्ग' देने का प्रयास किया। अपने वचन के फलस्वरूप उन्होंने माँ को 'कोण्डना दुर्ग' भी दिया। इस प्रकार शिवाजी एक अनन्य मातृभक्त थे।

गुरुभक्त

'शिवाजी' समर्थगुरु बाबा 'रामदास' के अनन्य भक्त थे। 'शिवाजी' ने औपचारिक रीति से विद्यालयों में उच्च शिक्षा नहीं प्राप्त की थी, परन्तु उनकी माता तथा समर्थगुरु बाबा 'रामदास' से उन्हें पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हुआ था। शिवाजी के अदम्य उत्साह, परोपकार तथा अन्याय दमन आदि सहज गुणों के कारण गुरु समर्थ उन पर विशेष कृपा रखते थे। अन्य शिष्यों को यह देख ईर्ष्या होती थी। अन्य शिष्यों के विचार थे कि समर्थ गुरु की कृपा के अधिकारी

उनके साथ रहने वाले, अपना घर-बार त्याग देने वाले सभी शिष्य थे; किन्तु समर्थ महाराज केवल बाहरी वेष आदि को नहीं अपितु शिक्षा को व्यवहार में लाने की प्रधानता देते थे। यही कारण था कि वे शिवाजी पर विशेष कृपा रखते थे।

एक दिन समर्थगुरु के पेट में बहुत तेज पीड़ा होने लगी। वैद्य ने कहा कि इनकी पीड़ा को समाप्त करने के लिए बघिनी का दूध चाहिए–

तदेङ्गितज्ञेन सतीर्थ्यवर्त्मना शनैर्महीपाय निवेदितो विधिः।
मृगेन्द्रकान्तास्तननिस्सृतं पयोऽथवा गदैकान्तकरा विदेहता।।[४]

गुरु के प्राणों की रक्षा के लिए रात्रि में ही 'शिवाजी' एक पात्र लेकर बघिनी का दूध लाने के लिए तुरन्त तैयार हो गये–

अहो प्रसन्ना मयि लोकदेवता जवेन राजा निजगाद गत्वरः।
वने सवत्सा मृगराजगेहिनी गुरुप्रसादादयमुत्सुकोऽप्यहम्।।[५]

वे समर्थगुरु बाबा 'रामदास' के लाख मना करने पर भी नहीं माने, जब वे दूध लेने जा रहे थे, तब उन्हें एक 'तपस्वी' मिला वह उन्हें अनेक प्रकार से बघिनी का दूध लाने के हठ के लिए मना करने लगा–

तदस्तु कार्यव्यतिपातनिर्णये न मोहनिघ्नं हृदयं तवानघ।
त्याजाशु भूत्यै मृगराजगेहिनी पयोनिनीपां नरराज! घातिनीम्।।[६]

किन्तु 'शिवाजी' की गुरुभक्ति अटूट थी फलतः विपुल बाधाओं को जानकर भी वे बघिनी का दूध लेने के लिए चले गये एवम् अपने कार्य में सफल भी हुए। यह 'शिवाजी' की गुरुभक्ति ही थी जिसने उन्हें इस प्राणघातक कार्य में तत्पर किया।

मित्रप्रेमी

'शिवाजी' अपने सैनिकों से बहुत स्नेह करते थे, उन्हें वे सदैव अपना मित्र ही मानते थे। उनकी आन्तरिक इच्छा समझ लेने के बाद वे उन्हें वह कार्य करने की आज्ञा दे देते थे, जो वे सैनिक करना चाहते थे। एक बार शिवाजी सैनिकों के साथ आगरा गये हुए थे,

वहाँ सैनिक आगरे का मनोरम दृश्य देखने को उत्सुक थे। शिवाजी ने उनका भाव जान लिया एवं वहाँ घूमने की आज्ञा दे दी (एक मित्र ही दूसरे मित्र का आशय समझ सकता है शिवाजी में आदर्श मित्र के गुण विद्यमान थे)–

प्रेक्षा-कुतूहल- निबद्ध- मनोरथाना
मालक्ष्य लक्ष्यविषयं प्रणतानुरागी।
याञ्चानुबन्धविरहेऽपि समादिदेश
द्रष्टुं गणान् पुरमपूर्वकलाभिरामाम्।।[७]

शिवाजी बिना किसी प्रार्थना के ही अपने सैनिकों का मनोरथ पूर्ण कर देते थे। 'तानाजी मालसुरे' को शिवाजी अपना प्रिय मित्र मानते थे। 'कोण्डना दुर्ग' विजय के समय जब 'तानाजी मालसुरे' का देहान्त हो गया तब शिवाजी रोते हुए कहते हैं–

सिंहतापमपहरन् कथं विधे! दुर्गमर्पयसि केवलं मम।
स्वीकुरुष्व शतदुर्गमद्य मे तं मदैकसुहृदं परं त्यज।।[८]

दुर्दैव इस 'सिंह दुर्ग' में से सिंह (तानाजी) का अपहरण करते हुए केवल दुर्ग क्यों दे रहे हो (मैं इस दुर्ग के लिए अपना सिंह (मित्र तानाजी) नहीं छोड़ सकता) आज ही मुझसे सौ दुर्ग ले लो; किन्तु मेरे एकमात्र उस मित्र को जिसे तुमने ले लिया है लौटा दो।

इस प्रकार शिवाजी एक आदर्श मित्र थे। उन्हें अपने मित्रों से स्नेह था।

आदर्श सैनिक

'शिवाजी' अत्यन्त वीर योद्धा थे। जब वे युद्ध के मैदान में जाते थे तो डटकर शत्रुओं का सामना करते थे। उनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी। वे कभी-कभी कूटनीति का सहारा भी लेते थे। एक बार जब 'कृष्णाजी' 'अफजल खाँ' का सन्देश लेकर आये तब शिवाजी ने उनकी खूब सेवा की एवं धर्म की दुहाई देकर यह बात जान ली कि 'अफजल खाँ' के मन में खोट है–

जयाभिलाषी स्वयमक्षतैरपि बलैरवाप्तुं परमावधिं श्रियः।
प्रतीतिकूटे विनिगृह्य सौनिको मृगं यथा मामभिहन्तुमीहते।।[९]

'शिवाजी' जब उससे मिलने गये तो पूरी सुरक्षा के साथ ही गये–

ततः शिरस्त्राणमभेद्यमायसं सुगुप्तमुष्णीषनिबद्धमुद्वहन्।
स्वकञ्चुकान्तर्धृतवर्मवेष्टितं महौजसामायतनं श्रयन् वपुः।।
सुरक्षितां व्याघ्रनखीं कराङ्गुलौ शितक्षुरप्रं मणिबन्धरक्षितम्।
निधाय राजा परिधानसंवृतो दधार कण्ठे स्रजमम्बिकाधृताम्।।[१०]

आने वाले सङ्कटों के निवारणार्थ पूर्व में ही दत्तचित्त हो जाना ये लक्षण एक अच्छे सैनिक के होते हैं, जो उनमें थे इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'शिवाजी' एक आदर्श सैनिक थे।

आदर्श शत्रु

'शिवाजी' आदर्श मित्र होने के साथ ही आदर्श शत्रु भी थे। एक बार 'शिवाजी' के सैनिक युद्ध जीत लेने के पश्चात् शत्रु के नगर से पालकी में एक वधू उठा लाये। तब 'शिवाजी' ने सैनिकों से कहा–

जिजीविषामो व्यसनक्षता अपि स्वयं यमादर्शमणिं निरीक्षितुम्।
तमेव सञ्चूर्ण्य मदोन्मदा इव सपत्नसामान्यवृकाः वयं न किम्?।।[११]

अर्थात् हम अपने द्वारा सम्मानित मानवीय मूल्यों, आदर्शों को प्रतिष्ठित देखने के लिए अनेक बाधाओं, विपत्तियों से प्रताड़ित होते हुए भी जीवित रहना चाहते हैं; किन्तु यदि अपनी विवेकहीनता से मद्यप के समान हम स्वयम् उन मूल्यों, आदर्शों की हत्या करने लगेंगे, तो हम भी अपने विरोधी शत्रुओं के समान ही भेड़िये हैं। हममें तथा हमारे शत्रुओं में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। हम दोनों ही अनाचारी हैं।

'शिवाजी' ने जब उस वधू की तरफ दृष्टिपात् किया तब वह डर गयी। उसे डरती हुई देख शिवाजी ने अविलम्ब कहा–

प्रसीद वत्से! पुरतो मयि स्थिते न देहलीशोऽपि तवाप्रिये प्रभुः।
पितुर्गृह प्राप्य सुतादृगुत्सवं कथं विषादैः परितत्यसेऽधुना।।[१२]

बेटी दुःखी न हो, तुम्हारा कोई कुछ भी न बिगाड़ पायेगा पिता का घर तो कन्या के लिए स्नेहपूर्ण होता है। भला यहाँ आकर तुम्हें किस बात का खेद है?

कवि शिवाजी के उदात्त व्यक्तित्व के साथ यह भी इंगित करना चाहते हैं कि शिवाजी आदर्श शत्रु भी हैं। वे एक उत्तम चरित्र के स्वामी थे, क्योंकि युवावस्था के होते हुए भी किसी पर स्त्री का सौन्दर्य उन्हें आकर्षित न कर सका। वह स्त्री सुन्दर होते हुए भी इनके मन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न दिखा पायी, यह सब शिवाजी के उत्तम चरित्र के कारण ही सम्भव हुआ।

धर्म में आस्था

'शिवाजी' की धर्म में अटूट आस्था थी। एक बार उन्हें स्वप्न में 'तुलजा भवानी' (शिवाजी की कुलदेवी) ने आदेश दिया कि तुम मेरा मन्दिर बनवाकर उसमें मेरी प्रतिमा स्थापित कराओ–

अरातिराज्यायतने गतस्पृहा महानुभावा तुलजा पुरेश्वरी।
शिवं निजादेशरमं समादिशत् पुनः प्रतिष्ठातुममर्त्यविग्रहम्।।[१३]

आस्तिक होने के कारण उन्होंने स्वप्न के कथन को आदेश मानकर वस्तुतः एक मन्दिर बनवाया जिसमें अपने कुलदेवी 'तुलजा भवानी' की प्रतिमा को स्थापित कराया–

प्रतापदुर्गे नवमण्डपे ततः स्वयं प्रतिष्ठाप्य कुलेष्टदेवताम्।
प्रदाय सर्वं सह जीवितेन सः तदाग्रहेणैव दधौ पुनर्वपुः।।[१४]

शिवाजी को 'दूसरे के धर्म में चाहे कितना भी सुख मिले और अपने धर्म में चाहे कितना भी दुःख मिले' फिर भी उन्हें अपना धर्म प्रिय लगता था–

श्रेयः स्वधर्मे निधनं पुरा यो गायन् स्वदेशः स्वपदं ररक्ष।
सुखोपलब्धौ परधर्मरागस्तत्रैकहेतुः किमतोऽपि चित्रम्।।[१५]

शिवाजी स्वदेश के अमोघ मन्त्र 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो हि भयावह' से आत्मस्थिति को सुरक्षित रखने पर बल देते थे। ये बातें स्पष्ट रूप से बताती हैं कि शिवाजी की धर्म में आस्था थी।

आदर्श राजा

शिवाजी एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न शासक थे। राज्य की सम्पूर्ण शक्तियाँ उनमें केन्द्रित थीं। वही राज्य के अन्तिम कानून

निर्माता, शासकीय प्रधान, न्यायाधीश एवं सेनापति थे। 'शिवाजी' अपनी शक्तियों का प्रयोग अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं अपितु प्रजापालन के लिए करते थे। शिवाजी की सहायता के लिए आठ बड़े अधिकारी या मन्त्री थे जिनकी सहायता से इनका शासन चलता था। ये 'अष्ट प्रधान' के नाम से जाने जाते थे। कवि अष्टप्रधानों से सम्बन्धित निम्न श्लोक में कहते हैं–

अष्टप्रधानयशसो मघोनः सवसोरिव।
अष्टमूर्तेरिव स्निग्धा वशगास्तस्य सम्पदः।।[१६]

अर्थात् अष्टप्रधान (पेशवा आदि अष्ट सचिव) की कीर्तिवाले 'शिवाजी' अष्ट वसुगणों से सेवित इन्द्र के समान अष्टमूर्ति भगवान् शिव के समान, वैभव सम्पत्ति को अपनी वशवर्तिनी के समान रखते थे। वास्तव में देखा जाय तो 'अष्टप्रधान' एक मन्त्रिपरिषद् अथवा समिति की तरह कार्य नहीं करते थे। सभी मन्त्री अपने विभाग के प्रधान थे और वह 'शिवाजी' की इच्छा पर निर्भर करता था कि वह उनसे पृथक्-पृथक् अथवा सम्मिलित रूप से सलाह लें। उनकी सलाह मानने के लिए 'शिवाजी' बाध्य नहीं थे। वे आठ प्रधान 'शिवाजी' के सचिवों की भाँति कार्य करते थे। शिवाजी के द्वारा दिये गये आदेशों का पालन करना उनके लिए अनिवार्य दायित्व की तरह था। उनके अष्टप्रधानों में पेशवा की स्थिति श्रेष्ठ थी शेष अन्य प्रधान किसी भी प्रकार उनके (पेशवा के) अधीन न थे। उनमें से प्रत्येक का उत्तरदायित्व 'शिवाजी' के प्रति था। ''शिवाजी वास्तव में 'फ्रान्स' के शासक 'लुई' चौदहवें और 'प्रशा' के शासक 'फ्रेडरिक' महान् की भाँति स्वयं ही अपने 'प्रधानमन्त्री' थे और शासन की सभी शक्तियों को अपने हाथों में केन्द्रित रखते थे।''[१७] अष्टप्रधानों की स्थितियों को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है–

१. पेशवा अथवा मुख्य प्रधान

'पेशवा' का कार्य राज्य के शासन की देखभाल करना था। राजा की अनुपस्थिति में उसके कार्यों की देखभाल करना, शासन में एकरूपता लाने के लिए शासन के अधिकारियों पर नियन्त्रण रखना

और प्रजा के हित के लिए प्रयत्न करना उनका मुख्य उत्तरदायित्व था। राजा के सभी आदेशों और पत्रों पर राजा की मुहर के नीचे उसकी मुहर लगती थी।

२. अमात्य

'अमात्य' राजा की आय-व्यय की देखभाल करता था एवं वह इससे राजा को अवगत कराता था।

३. मन्त्री

राजा के दैनिक कार्यों को लेखबद्ध करना, मिलने-जुलने वालों की देखभाल करना और राजा के जीवन की सुरक्षा का उत्तरदायित्व ही इसका कार्य था।

४. सचिव

राजा द्वारा लिखित पत्रों की 'भाषा-शैली' को सुधारना और परजनों की आय और व्यय की देख-रेख इसके उत्तरदायित्व के अन्तर्गत आता था।

५. सुमन्त्र

यह राजा का विदेश मन्त्री था। यह राजा को सन्धि अथवा युद्ध की सलाह देता था। विदेशों से समाचार प्राप्त करना, विदेशों में राजा के सम्मान की सुरक्षा, विदेशी राजदूतों की देखभाल और अपने राजदूतों को विदेशों में भेजना तथा उनके कार्यों की देखभाल करना इसका कार्य था।

६. सेनापति

यह सेना में भर्ती, संगठन, अध्ययन, शस्त्र एवं रसद व्यवस्था का दायित्व पूर्ण करता था।

७. पण्डित राव

ये राजा की तरफ से विद्वानों को दिये जाने वाले दान की व्यवस्था, धार्मिक कार्य का सुनिश्चितीकरण, पापार्थ दण्ड-व्यवस्था, धर्म

एवं जाति के झगड़ों का निर्णय तथा प्रजा के सच्चरित्र का निर्माण इन सभी कार्यों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

८. न्यायाधीश

सैनिक और असैनिक झगड़ों का हिन्दू कानून के आधार पर न्याय करना, भूमि सम्बन्धी झगड़ों तथा गाँव के मुखिया के पद के झगड़ों का निवारणार्थ निर्णय करना, इनका कार्य था।

इस प्रकार शिवाजी की राज्य-व्यवस्था अष्टप्रधानों के माध्यम से सुचारु रूप से चलती थी। एक अच्छे एवम् आदर्श राजा में जो गुण विद्यमान होने चाहिए, स्पष्ट है शिवाजी में वे गुण थे तभी उन्होंने आठ बुद्धिमान् व्यक्तियों को राज्य के आठ उच्च पदों पर आसीन कर उन्हें 'अष्टप्रधान' की उपाधि से विभूषित कर दिया था जिनके माध्यम से उनकी शासन-व्यवस्था अनवरत गति से चलती थी।

समीक्षा

शिवाजी में अनेक गुणों का समावेश था। वे एक आदर्श सैनिक, आदर्श एवम् अच्छे राजा, आदर्श पुत्र, अच्छे मित्र, गुरुभक्त, आदर्श शत्रु थे। इस प्रकार नायक के गुण जो **दशरूपक** में 'धनञ्जय' ने दिये हैं वे शिवाजी के चरित्र में पाये जाते हैं। **दशरूपक** में लिखा हुआ है–

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढ़वंशः स्थिरो युवा।।
बुद्धयुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्र चक्षुश्च धार्मिकः।।[१८]

अर्थात् नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर दक्ष, प्रिय बोलनेवाला (प्रियंवद), लोगों को खुश करने वाला (रक्तलोक), पवित्रमनवाला (शुचि), बातचीत करने में कुशल (वाग्मी), कुलीन वंश में उत्पन्न (रूढ़वंश) मन, आदि से स्थिर युवा अवस्था वाला होता है। वह बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त होता है, शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता धार्मिक होता है।

१. नायक विनम्र हो, क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के नायक 'शिवाजी' विनम्र हैं उनकी विनम्रता की अभिव्यक्ति इस श्लोक द्वारा हुई है–

सुखं समाराधितशर्मशय्यं राजा निशीथेऽनुमतप्रवेशः।
लक्ष्मीवरेणोरसि सेव्यमानं तदङ्घ्रियुग्मं शिरसा ववन्दे।।[१९]

प्रसङ्ग तब का है जब 'पं० कृष्णाजी' अफ़जल खान के दूत 'शिवाजी' के पास 'अफ़जल खान' का सन्धि प्रस्ताव लेकर आये हैं। अर्धरात्रि के समय जब पं० 'कृष्णाजी' आनन्ददायक शय्या पर लेटे हुए थे, तब प्रवेश के लिए अनुमति लेकर राजा शिवाजी ने शिर से उनके दोनों चरणों की वन्दना की। शिवाजी महाराज अत्यन्त ही विनम्र स्वभाव के थे। ब्राह्मण-प्रकृति को वे पूर्णतः जानते थे। भक्तिभाव ही वह माध्यम है जिससे विद्वान् प्रसन्न होते हैं। अस्तु, राजा ने प्रदर्शन के लिए नहीं अपितु विनम्र भाव प्रवणता से वशीभूत होकर विप्रचरणों की वन्दना की) इस प्रकार स्पष्ट है कि 'शिवाजी' में विनम्रता थी जो एक नायक में होनी चाहिए। कवि ने 'शिवाजी' को (भवभूति के महावीरचरित के) 'रामचन्द्र' के सदृश विनम्र प्रस्तुत किया है।

२. नायक मधुर अर्थात् प्रियदर्शन होना चाहिए, क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में शिवाजी के माधुर्य का उपनिबन्धन किया गया है–

युवा सुशीलो नवराष्ट्रपद्मभूरजस्रवर्धिष्णुमहत्वमण्डितः।
स्वदारनिर्व्याजमनास्तथाप्ययं सुविस्मिताः पौरमृगीदृशो जगुः।।[२०]

प्रसङ्ग तब का है जब 'शिवाजी' 'औरङ्गजेब' से मिलने आगरा गये हुए हैं। उन्हें देख अत्यन्त विस्मित होकर नगर की मृगनयनी युवतियों ने कहा–

वे युवक हैं, शीलवान् हैं, नये राष्ट्र के निर्माता हैं, निरन्तर बढ़ते हुए महत्त्व से विभूषित हैं, फिर भी यह केवल अपनी ही पत्नियों में अनन्य प्रेम रखते हैं। नगर की महिलायें विस्मित है कि अनेक मोहक गुणों से युक्त प्रियदर्शन यशस्वी यह युवक अन्य सुन्दरियों में आमोद-प्रमोद, विलास केलि के लिए आकर्षित क्यों नहीं होता? 'शिवाजी' के सम्बन्ध में इस तरह युवतियों द्वारा कहा जाना यह

दर्शाता है कि 'शिवाजी' सुदर्शन एवं मधुर थे जिसके कारण वे उन पर आसक्त हो गयी थीं।

३. नायक त्यागी अर्थात् समस्त वस्तुओं (तन, मन, धन) को देने वाले हो, किसी भी सांसारिक वस्तु के प्रति उसका अनुचित मोह न हो। महात्माओं की यही त्यागशीलता 'शिवाजी' के चरित्र की एक महान् विशेषता थी। महाकाव्य से निम्नलिखित उदाहरण शिवाजी के 'त्याग' गुण को स्पष्ट करने के लिए दिया जा रहा है–

गतस्पृहः पार्थिवभोगवैभवे यथोपलब्धैरतिवाहितक्रियः।
उपोढकान्तिः परमार्थतेजसाऽवधूतकल्पोऽरमतार्यरक्षिता।।[२१]

अर्थात् 'शिवाजी' को राजोचित भोग अपने ओर आकृष्ट न कर सके। मिथ्या भोग-वैभव में उन्हें तनिक भी रुचि न रही। जो कुछ मिल जाय उसी में आत्मतोष कर लेते थे। इस प्रकार स्पष्ट है 'शिवाजी' महान् 'त्यागी' थे।

४. नायक 'दक्ष' होना चाहिए। दक्ष से तात्पर्य किसी भी कार्य को एकदम फुर्ती से करने (क्षिप्रकारिता) से है। नायक सुस्त और दीर्घसूत्री न होकर क्षिप्रकारी होना चाहिए। 'शिवाजी' अत्यन्त 'दक्ष' थे। महाकाव्य से 'शिवाजी' के विषय में उदाहरणस्वरूप यह श्लोक दिया जा रहा है–

उरः समन्विष्य तनुत्रयन्त्रितं हठात् क्षुरप्रेण तदैव वैरिणः।
विभिद्य तच्छाठ्यसखं न्यपातयत् क्षणेन भूमौ शिथिलाग्रहं वपुः।।[२२]

यह प्रसङ्ग 'अफ़जल खान' की कुटिल मित्रता का उत्तर देते समय का है। 'अफ़जल खान' धोखे से 'शिवाजी' की हत्या करना चाहता है वह शिवाजी से गले मिलकर 'शिवाजी' पर वार करता है। 'शिवाजी' अफ़जल खान के कवच के भीतर से उसके हृदय को छूरे से बींधकर उसे अशक्त कर पृथ्वी पर गिरा देते हैं। दुश्मन की चालों को समझ कर एक 'दक्ष' नायक ही ऐसा प्रत्युत्तर दे सकता है जैसा 'शिवाजी' ने 'अफ़जल खान' के साथ किया। स्पष्ट है 'शिवाजी' एक 'दक्ष' नायक थे।

५. नायक (प्रियंवद) प्रिय वचनों को बोलने वाला होता है। 'शिवाजी' स्वतन्त्रता देवी से बात करते समय अपनी 'प्रियंवदता' का परिचय देते हैं–

रहस्य गुप्तों यदि नासि बद्धा निराकुलं ब्रूहि यथार्थमम्ब!
जानीहि मां दैन्यपयोधिमग्नाकुलोपकारव्रतवंशजातम्।।[२३]

माँ यदि रहस्य को गुप्त रखने के लिए आप वचनबद्ध नहीं हैं तो विकलता छोड़कर अपना वृतान्त कहें। मेरे बारे में बस जान लें कि मैं उस कुल में उत्पन्न हुआ हूँ जो दुःख के समुद्र में पड़े विकल विह्वल लोगों का उपकार करना ही अपना धर्म मानता है।

६. नायक 'रक्तलोक' होना चाहिए अर्थात् उससे सभी लोग खुश रहें। क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में इस श्लोक के द्वारा दी गयी सूचना के आधार पर पता चलता है कि शिवाजी सबको खुश रखते थे, शिवाजी लोगों के मन की बातों को समझ कर उनकी इच्छा के अनुरूप कार्य करने की आज्ञा दे देते थे–

प्रेक्षा- कुतूहल- निबद्ध- मनोरथाना-
मालक्ष्य लक्ष्यविषयं प्रणतानुरागी।
याञ्चानुबन्धविरहेऽपि समादिदेश
द्रष्टुं गणान् पुरमपूर्वकलाभिराभाम्।।[२४]

प्रसङ्ग आगरा भ्रमण हेतु सैनिकों की लालसा से सम्बद्ध है। अर्थात् दृश्यावलोकन की लालसा से उत्कण्ठित मनोरथवाले अपने अनुचरों के उद्देश्य को जानकर अपने आश्रित जनों के अनुरागी महाराज 'क्षत्रपति' ने उनकी प्रार्थना के बिना ही उन्हें अपूर्व कला से सुसज्जित नगरी को देखने के लिए अपनी आज्ञा देकर अनुगृहीत कर दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'शिवाजी' 'रक्तलोक' अर्थात् सबको खुश रखने वाले थे।

६. इसी परिपाटी से नायक के अन्य गुणों– शौचादि का भी उदाहरण महाकाव्य से दिया जा सकता है। 'शौच' का तात्पर्य यहाँ मन की निर्मलता से है, जिससे मन, काम आदि दोषों से युक्त न हो सके। क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में 'शिवाजी' की शुचिता का प्रकाशन करते हुए कवि यह श्लोक प्रस्तुत करते हैं–

प्रसीद वत्से! पुरतो मयि स्थिते न देहलीशोऽपि तवाप्रिये प्रभुः।
पितुर्गृह प्राप्य सुतादृगुत्सवं कथं विषादैः परितत्यसेऽधुना।।[२५]

प्रसङ्ग तब का है जब शिवाजी के सैनिक एक 'नवयौवना वधू' को युद्ध में विजयी होने के उपरान्त शत्रुनगरी से उठा लाते हैं एवं वे उसे शिवाजी के सामने प्रस्तुत करते हैं। शिवाजी का मन अत्यन्त निर्मल है वे उस अनिन्द्य सुन्दरी को देख किसी भी प्रकार से विकारग्रस्त नहीं होते हैं। वे कहते हैं– "बेटी तुम घबराओ मत, प्रसन्न होवो, मेरे रहते 'दिल्लीपति' (औरंगजेब) भी तुम्हारा अप्रिय नहीं कर सकते। पिता का घर तो कन्या के लिए स्नेहभरी गोदी है, भला वहाँ आकर विषाद से क्यों विकल हो।" इस प्रकार स्पष्ट है महाकाव्य के नायक 'शिवाजी' के चरित्र में शौचादि गुण सम्मिलित थे।

८. नायक बातचीत करने में 'कुशल' होना चाहिए। शिवाजी बातचीत में अत्यन्त कुशल थे। निम्नलिखित श्लोक में 'शिवाजी' की कुशलता का परिचायक है–

विचित्रमातिथ्यमिदं स्वधामनि तदातिथेयस्य तनोतु गौरवम्।
इयं क्षणं सोदुमपीह मे धृतिरशीलिताभ्यासजडा विमुह्यति।।[२६]

प्रसङ्ग 'शिवाजी' का 'औरङ्गजेब' के दरबार में अपमान होने के समय का है। 'शिवाजी' जयसिंह के पुत्र राम सिंह से 'कुशल' नायक की तरह वार्तालाप करते हैं, वे कहते हैं अपने घर में बुलाकर इस तरह का विचित्र आतिथ्य (अपमानजनक व्यवहार) अभूतपूर्व है। इससे आतिथ्य करनेवाले (औरङ्गजेब) की ही गौरववृद्धि (निन्दा) हो। इस प्रकार के सत्कार से सर्वथा अपरिचित, अनभ्यस्त रहने के कारण मेरा धैर्य ऐसी स्थिति को सहन करने में अचेत हो रहा है।

९. नायक 'उच्चवंश' में उत्पन्न हो। 'शिवाजी' की कुलीनता का व्यञ्जक निम्नलिखित श्लोक है–

विभर्तु सामान्यविधौ स्वरागं परम्परा प्राकृतबोधभूमिः।
यस्मात् स्वयं सा लभते स्वरूपं तस्याः प्रमाणं किमपेक्षते सः।।
युगान्तमेघस्तनितानुभावां यद्धुङ्कृतिं नागवरा निशम्य।
सवेपथुस्तब्धदृशः पतन्ति ससंशया तस्य मृगेन्द्रता किम्।।[२७]

अर्थात् शास्त्र-परम्परा का अनुवर्ती नहीं है, परम्परा, शास्त्र की अनुवर्तिनी है। परम्परा लीक है अतः परम्परा, सामान्य बुद्धि वालों के लिए गति है। परम्परा निर्मिति है, महान् व्यक्तियों के पद चिह्नों से उत्पन्न हुई है अतः यह परम्परा उन्हीं महान् व्यक्तियों की नियामिका नहीं हो सकती। परम्परा का बन्धन 'क्षत्रपति' के लिए नहीं है। युगान्तकालीन मेघगर्जन के समान जिसकी दहाड़ सुनकर महाबलवान् गजयूथप भी काँपते हुए भय से आंखों को बन्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं उसकी मृगेन्द्रता में भी सन्देह रह ही गया क्या? पराक्रमी शत्रुओं को क्षण में परास्त कर देने वाला 'क्षत्रपति' यदि 'क्षत्रिय' नहीं है तो क्या है? इस प्रकार स्पष्ट है कि वीर 'शिवाजी' की जाति राजन्यकुल (क्षत्रिय) के अतिरिक्त अन्य न थी।

१०. नायक स्थिर होना चाहिए अर्थात् वह मन, वाणी तथा शरीर से चञ्चल न हो। प्रस्तुत श्लोक शिवाजी की स्थिरता को दर्शाता है–

नैशं तमो नश्यति गात्रकान्त्या विषीयतीवेन्दुमुखं तथापि।
अशोकरम्याम् कुरुषे स्थलीं त्वं सशोकभावाऽपि कुतूहलम्मे।।[२८]

'शिवाजी' ने 'स्वतन्त्रता देवी' को रात्रि का निर्जन स्थान में अश्रुपात करते हुए देखा तब उन्होंने अत्यन्त स्थिरतापूर्वक कहा– आपके शरीर की प्रभा से रात्रि का अन्धकार नष्ट हो रहा है फिर भी आपका मुखचन्द्र विषाद, चिन्ता से भरा हुआ है। आप अपनी सहज प्रभा से इस पृथिवी को शोकविहीन, सुषमापूर्ण बना रही है, फिर भी आप विषाद में डूबी हुई हैं। मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। इस प्रकार की बातचीत एक स्थिरचित्त नायक ही कर सकता है। अतः स्पष्ट है शिवाजी में स्थिरचित्तता थी।

इस प्रकार उपर्युक्त नायक के लक्षण के निकष पर 'शिवाजी' के चरित्र की, की गयी परीक्षा यह बताती है कि शिवाजी में वे सभी गुण विद्यमान थे जो एक नायक में पाये जाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिवाजी एक आदर्श नायक हैं।

महाकाव्य से अन्य पात्रों का चरित्र-चित्रण

अफ़जल खान

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के 'पञ्चम सर्ग से अष्टम सर्ग' तक 'अफ़जल खान' की भूमिका प्रमुख है। अफ़जल खान इस महाकाव्य का खलनायक है। अफ़जल खान नवोदित 'शिवाजी' के विनाश के लिए 'बीजापुर' में मन्त्रणा करता है। वह यद्यपि वीर सैनिक है फिर भी एक दूषित चरित्र रखता है।

बीजापुर के सुल्तान ने एक बार परिषद् में सेनापतियों, मन्त्रियों एवं सलाहकारों को बुलाया एवं 'शिवाजी' के उपद्रवों से अवगत कराया–

विषमनिकृतिकारणं ततोऽसौ शिवकृतचापलमामयानुकारम्।
भृशतरमापकारि राज्यदेहे विषयमुखेन, निवेदयाञ्चकार।।[२९]

सुल्तान ने कहा कि आपलोगों में से जो वीर है वह शिवाजी को समाप्त करने का बीड़ा उठाये–

परिषदि कलितौजसां वरेण्यः खर-करवाल-कलाधरो मनस्वी।
तदिह हठमलङ्करोतु कश्चित् सुभटवरो जयपानवीटिकाम्मे।।[३०]

शिवाजी के समय में पान का 'बीड़ा', किसी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए वीरों के समक्ष रखा जाता था। 'अफ़जल खान' बीजापुर के सुल्तान द्वारा आयोजित परिषद् में उपस्थित था उससे यह बात सुनकर रहा नहीं गया उसने तुरन्त पान के बीड़े को उठाकर मुँह में डाल लिया–

इति सरभसमुत्पात चण्डो मदकलिताक्षिविघूर्णितेन दृप्यन्।
सगरलमिव पानपत्रबन्धम् शिशुरिवमोदकमादधौ स्ववक्त्रे।।[३१]

'अफ़जल खान' ने पान का बीड़ा मुँह में डालकर 'शिवाजी' को मिटाने का सङ्कल्प लिया था इस प्रकार पता चलता है कि 'अफ़जल खान' एक वीर सेनापति था। 'अफ़जल खान' वीर था; यह बात निःसन्देह मानने योग्य है, किन्तु साथ ही वह अत्यन्त क्रूर था इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है। अपने युद्ध अभियान में उसने

गांव के गांव तहस-नहस कर डाले। प्रजा को बेघर कर दिया। उसने कितने ही पालतू पशुओं को मार डाला, उन मरे हुए पशुओं को उसने अपना भोजन बना लिया–

पशुधनमुदरे वसूनि कोषे युवतिजनान् रूदतो महाक्ततल्पे।
प्रतिपद युवकांश्च खङ्गतर्षे शठरिपुसैन्यभटाः प्रसह्य निन्युः।।[३२]

'अफ़जल खान' ने युद्ध के दौरान धन-सम्पत्ति लूटकर अपने खजाने में डाल लिया। अफजल खान ने अनेक निन्दित कर्म किये, स्त्रियों का शील नष्ट किया, माताओं की गोद सूनी की। प्रस्तुत श्लोक उसके निन्दित कर्म का साक्षात् दृश्य उपस्थित करता है–

समहृत मणिकेश्वरेण सार्धम् निजशठनोभावखलीकृतोन्यमूर्तीः।
विषमतरविषैर्यथानुरुपां भुजगच्छ्रियमातनोति धुर्याम्।।[३३]

अर्थात् अपनी दुष्टता के कारण अति निकृष्ट आचरण वाले उस अफजल खाँ ने मणिकेश्वर की प्रतिमा के साथ ही अन्य देव मन्दिरों को भी ध्वस्त कर डाला। अफजल खान का आचरण उसके स्वभाव के अनुरूप ही था।

अफजल खाँ यद्यपि वीर सेनापति है; किन्तु वह मूर्ख भी है। वह अपनी प्रशंसा स्वयं करता है–

रिपुकदन विधौ श्रमो न कश्चित् परमयमेव मनो दुनोति खेदः।
यदहितदहनप्रथं कदापि नहि युधि मामरुणज्जयान्तरायः।।[३४]

''शत्रु को ध्वस्त करने में मुझे कुछ भी विशेष श्रम नहीं करना पड़ता'' जो व्यक्ति 'शिवाजी' से युद्ध करने से पहले ही ऐसी बात करता हो, भला उसकी मूर्खता की और क्या सीमा हो सकती है? 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य में 'शिवाजी' ने 'अफजल खाँ' के साथ युद्ध किया है, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन है।

अफजल खाँ एक कूटनीतिज्ञ एवं धोखेबाज व्यक्ति था वह धोखे से शिवाजी की हत्या करना चाहता था वह मित्र बनने का ढोग रचकर शिवाजी से गले मिलता है। शिवाजी जैसे ही उससे गले मिलते हैं, वह तुरन्त ही तलवार से उनके सिर पर वार करता है–

तदैव वेगान्निजकक्षपिञ्जरप्रलीनमूर्धानमसौ नरेश्वरम्।
करद्वितीयेन महासिनाऽहनत् तदीयकुक्षौ सहसा दुराशयः।।[३५]

किन्तु वह शिवाजी की 'जैसे को तैसा' वाली नीति का शिकार हो जाता है एवं मारा जाता है।

समीक्षा– 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य में 'शिवाजी' के अतिरिक्त 'अफजल खान' का प्रसङ्ग भी काफी देर तक चला है। 'अफजल खान' यद्यपि एक वीर योद्धा है किन्तु कपटपूर्ण नीतियों द्वारा युद्ध जीतना चाहता है।

कृष्णाजी भास्कर

'कृष्णाजी भास्कर' 'अफजल खान' के दूत थे। 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य के 'सप्तम सर्ग' में श्री उमाशङ्कर शर्मा 'त्रिपाठी' जी ने उनका वर्णन किया है। महाकाव्य के कथानक में इनका आविर्भाव तब होता है जब 'अफजल खान' उन्हें 'शिवाजी' के पास अपना सन्देश पहुँचाने के लिए दूत बनाकर भेजता है। कृष्णाजी भास्कर 'शिवाजी' के पास आकर अभीष्ट वार्ता आरम्भ करते हैं–

एवं नृपं मन्त्रिमनीषिजुष्टं दूतः समागम्य रिपोरधृष्टः।
गिरा शुभाशीर्भरयाभिनन्द्य कृष्णाजिनामाऽऽरभतेष्टवार्ताम्।।[३६]

वस्तुतः 'अफजल खान' अपनी विशेष दक्षता प्रदर्शित करने के लिए, तथा अपनी सेना का एक बूँद भी रक्त बहाये बिना ही 'शिवाजी' को वश में करना चाहता था। स्वयं राजमाता का भी आग्रह था कि राज्य शक्ति तथा कोष को यथावत् राते हुए नवयुवक 'शिवराज' को वश में कर लिया जाय इसीलिए 'अफजल खान' ने अपना पुराना प्रयोग 'विश्वासघात' नये ढंग से ('कृष्णाजी' को दूत बनाकर भेज) कार्यान्वित करना चाहा।

'कृष्णाजी भास्कर' 'शिवाजी' से कहते हैं–

अव्याहताज्ञेन नृपेण सेर्ष्य राजन् नियुक्तः पृतनाधिपत्ये।
अपञ्जलोऽहेतुहिनस्तथापि भवत्कृते नोज्झति सख्यबन्धम्।।[३७]

हे 'शिवाजी' 'अफजल खान' आपके अकारण हितैषी हैं यूँ तो बीजापुर के अप्रतिहत शासन वाले सुन्तान ने यद्यपि विशेष ईर्ष्यापूर्वक

उन्हें सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित किया है तथापि 'अफजल खान' आपका ख्याल करके ही मैत्री सम्बन्ध को छोड़ना नहीं चाहते हैं। 'कृष्णाजी भास्कर' अत्यन्त वाक्पटु एवं कुशल दूत थे। उपर्युक्त वार्ता ये दर्शाती है कि किस प्रकार 'कृष्णाजी' के समक्ष 'अफजल खान' की एक साफ छवि प्रस्तुत कर रहे हैं। वाक्पटुता ही वह माध्यम होती है जिसके द्वारा किसी बुरे से बुरे व्यक्ति की छवि को सुन्दर से सुन्दर रूप में प्रस्तुत करती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'कृष्णाजी भास्कर' अत्यन्त कुशल एवं वाक्पटु दूत थे। अफजल खान के बल की प्रशंसा जिस प्रकार 'कृष्णाजी' करते हैं वह देखते ही बनती है–

प्रापुः पुनर्नैव तटं प्रविष्टाः व्यपेतयाथार्थ्यगिरस्तटस्थाः।
गाम्भीर्यमद्यापि बलार्णवस्य नास्याभिधातुं भुवने शरीरी।।[३८]

वे सेनापति 'अफजल खान' को अद्वितीय समुद्र के रूप में 'शिवाजी' के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। वे कहते है कि 'अफजल खान' के बल की गम्भीरता कितनी गहरी है यह बताना किसी भी जीवित मनुष्य के बस की बात नहीं है।

'कृष्णाजी भास्कर' 'शिवाजी' से 'अफजल खान' की मैत्री कराने पर विशेष बल देते हैं–

पोतानिलोद्योगनिभं तदत्र द्वयोः समाश्रित्य वरेण्ययोगम्।
सुखेन भीतिव्यसनोर्मिपूरं प्रजा समुत्तीर्य घिनोतु कामम्।।[३९]

'कृष्णाजी' कहते है जहाज और अनुकूल पवन के सहयोग के समान (वीर 'शिवाजी' और 'अफजल खान') की उत्कृष्ट मैत्री का आश्रय प्राप्त करके भय और सङ्कट की लहरों से युक्त दुःख सागर को प्रजाजन अनायास ही सुखपूर्वक प्राप्त कर अपना अभिलषित फल प्राप्त करें। 'कृष्णाजी' एक प्रकार से यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं कि युद्ध करने से प्रजा को कष्ट उठाना पड़ेगा जबकि सन्धि द्वारा 'शिवाजी' की उन्नति का मार्ग प्रास्त होगा। 'कृष्णाजी' 'शिवाजी' को अफजल खान से मैत्री करने के लिए अनेक प्रकार से समझाते हैं।

'कृष्णाजी' 'शिवाजी' से कहते है कि मैं प्रतीक्ष्य उत्तर प्राप्त करने तक यहाँ रूकूँगा। ईश्वर करें मेरा यह निवास आपके कल्याण

के लिए अत्यन्त फलदायी हो। दूतकर्म निवेदनीय सन्देश के अतिरिक्त अन्य बातों पर मौन ही रहता है। अर्थात् दूत तो प्रभुजनों का सन्देशवाहक मात्र होता है। अपने विषय से असम्बद्ध प्रश्नों पर कुछ नहीं कर सकता। अतः मेरे जैसे व्यक्ति इससे 'अफजल खान' के पक्ष की बात के अतिरिक्त) कुछ अधिक कहने में स्वतन्त्र नहीं हो सकते।

'शिवाजी' ने 'कृष्णाजी' का सम्मानूर्वक आतिथ्य-सत्कार किया हैं। 'कृष्णाजी' 'शिवाजी' के आतिथ्य-सत्कार से प्रसन्न थे। वस्तुतः 'कृष्णाजी' को 'शिवाजी' की प्रजा में धर्म प्रवृत्ति तथा पारस्परिक सौहार्द देखकर अत्यन्त विस्मय था। 'शिवाजी' 'कृष्णाजी' से कहते हैं कि हे ब्राह्मण देवता यह हमारे धर्म पालन की पराकाष्ठा है कि आप जैसे विद्वानों को भी शत्रु का दूत बनना पड़ रहा है। वीर 'शिवाजी' की धर्म से सम्बन्धित बातों ने 'कृष्णाजी' को अतिशय प्रभावित किया–

इत्थं नृपस्यात्मनिदर्शनेन धृतो वसन्तेन यथाऽऽम्रशाखी।
नवं किमप्याततगौरवार्ह स्वस्मिन् प्रगल्भं द्रुतमन्वभूत सः।।[४०]

'कृष्णाजी' 'शिवाजी' से अत्यन्त प्रभावित एवं उनके आतिथ्य-सत्कार से प्रसन्न थे अतः उन्होंने 'शिवाजी' को अफजल खान की नीतियों का सङ्केत दिया–

सदार्जवाजानार्जवयोरजस्रं वैरानुबन्धोऽतिनिमित्तभूमिः।
हेतून यदृक्षाप्रभवान् प्रकल्प निर्यातनं वाल्छति बद्धकक्ष्यः।।[४१]

अर्थात् सरलता और वक्रता में सज्जन तथा दुष्ट में सनातन वैर है अतः सज्जनता और दुष्टता में अनाक्रमण सन्धि व्यर्थ है। इस प्रकार 'कृष्णाजी भास्कर' का प्रसङ्ग महाकाव्य में समाप्त होता है।

समीक्षा– 'कृष्णाजी भास्कर' 'अफजल खान' द्वारा भेजे गये एक वाक्पटु दूत थे। उन्होंने शिवाजी के समक्ष 'अफजल खान' की भरपूर प्रशंसा की; किन्तु वे देशभक्त भी हैं एवं धर्म से उनका बहुत लगाव भी है। वे शिवाजी के द्वारा धर्म की स्थितियों का वर्णन करने पर अत्यन्त प्रभावित हो जाते हैं तथा 'अफजल खान' की नीतियों का सङ्केत शिवाजी को देते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि

'कृष्णाजी भास्कर' धर्म में आसक्त हैं यह उनके चरित्र की एक बहुत बड़ी विशेषता है।

गोपीनाथ

'गोपीनाथ' 'शिवाजी' के दूत थे। 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य में श्री उमाशङ्कर शर्मा 'त्रिपाठी' जी ने अष्टम सर्ग के कुछ श्लोकों में इनका वर्णन किया है। 'गोपीनाथ' 'शिवाजी' के दूत बनकर 'अफजल खान' के पास जाते हैं एवं कहते हैं–

परं प्रकृष्टायुधवर्तिनो भटानिहानुगान्ते समवेक्ष्य कातरः।
विशङ्कते सख्यपुरस्कृतोऽप्यसौ मनोरथं नन्दितुमाधिकम्पितम्।।[४२]

(प्रसङ्ग तब का है जब 'शिवाजी' 'अफजल खान' से मैत्री करने के लिए जा रहे थे) 'गोपीनाथ' 'अफजल खान' से कहते है कि उत्तम शस्त्र धारण किये हुए आपके अनुचरों (इन सैनिकों) को देख शिवाजी भयान्वित हैं वे आपकी मैत्री से सनाथ होने के बावजूद भी सशङ्कित हैं। यहाँ 'गोपीनाथ' 'अफजल खान' को सङ्केत कर रहे हैं कि आप अपने सैनिकों को यहाँ से दूर हटा दें।

महाकाव्य में इससे ज्यादा गोपीनाथ का कोई प्रसङ्ग नहीं है; किन्तु उपर्युक्त प्रसङ्ग के अध्ययन से पता चलता है कि वे अपने आन्तरिक भावों (शिवाजी यद्यपि अफजल खाँ से भयभीत नहीं थे) को बड़ी ही चतुरतापूर्वक छिपाकर 'अफजल खान' से 'शिवाजी' के भयभीत होने की बात कहते हैं।

समीक्षा– गोपीनाथ के चरित्र के बारे में यही कहा जा सकता है कि वे एक निपुण, चतुर, स्वामिभक्त, देशभक्त दूत हैं। गोपीनाथ अत्यन्त सहनशील व्यक्तित्व के भी स्वामी हैं यद्यपि 'अफजल खान' उनसे 'शिवाजी' को धमकाते हुए अशिष्टतापूर्वक कहता है–

निशम्य यान् सौरिनिवेशितायुधान् रणादरं मुञ्चति साऽपि देहली।
विलोकनादेव वनेचरास्त्विमे ध्रुवं विहास्यन्ति हतायुषि स्पृहाम्।।[४३]

अर्थात् यमदण्ड के समान जिन योद्धाओं के नाम श्रवण से वह दिल्ली भी युद्धेच्छा को त्याग देती है। उन्हें केवल देखने मात्र से

ये जंगली मराठे तो अपनी गरीब जिन्दगी से रिश्ता तोड़ लेंगे; इतना सब कुछ सुन लेने के बाद भी वे अपनी गम्भीरता एवं सहनशीलता बनाये रखते है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि 'गोपीनाथ' चतुर एवं सहनशील दूत हैं।

बाजीप्रभु देशपाण्डे

'क्षपतिचरितम्' महाकाव्य के अन्य महत्त्वपूर्ण पात्र 'बाजीप्रभु देशपाण्डे' थे। 'बाजीप्रभु देशपाण्डे' 'शिवाजी' के पक्ष के सैनिक थे। महाकाव्य के 'नवम सर्ग' में उनकी शौर्यगाथा वर्णित है। 'बाजीप्रभु देशपाण्डे' ने थोड़े से सैनिकों द्वारा गजपुर की घाटी का मार्ग रोककर महान् शत्रु संख्याओं को रोक दिया तथा 'क्षत्रपति शिवाजी' के मार्ग से बाधाएँ समाप्त करके उन्हें दुर्ग में पहुँचने का मार्ग दिया। 'बाजीप्रभु देशपाण्डे' एक वीर सैनिक थे। वे वीर होने के साथ-साथ स्वामिभक्त एवं मातृभूमिभक्त भी थे। प्रस्तुत श्लोक इस बात की पुष्टि करता है–

जनुस्सगर्भजन्मनाऽपि मृत्युना सविस्तरं
जनो निषेव्यतेऽवधार्य कालवर्त्मनिर्भयः।
स्वदेशवैरिपातनात् स्वभूपजीवनावनात्
परोऽपि कोऽवनौ कृपाणसङ्गिनामतो विधिः।।[४४]

अर्थात् जन्म के साथ ही उत्पन्न होने वाला मृत्यु भी व्यक्ति को मृत्यु भयरहित जानकर उसका सम्मान करता है। मित्रों (अन्य सैनिकों को सम्बोधित करके) मातृभूमि के शत्रुओं का विनाश और अपने राजा के जीवन की रक्षा से बढ़कर इस पृथ्वी पर सैनिक का और क्या कर्त्तव्य हो सकता है?

'बाजीप्रभु देशपाण्डे' स्वामिभक्त एवं मातृभूमिभक्त होने के साथ ही अत्यन्त वीर सैनिक थे। 'अफजल खान' का पुत्र, पिता की मृत्यु से अत्यन्त क्रुद्ध था, अतः उसने 'शिवाजी' को अल्पसेनायुक्त जानकर 'पन्हला दुर्ग' को घेर लिया। 'बाजीप्रभु देशपाण्डे' ने 'शिवाजी' से कहा मैं सेनापति हूँ आप मेरी आज्ञा मानें और आप 'विशाल दुर्ग' में जायें। मैं बाहर मृत्यु को चुनौती देता हुआ यहाँ स्थिर हूँ। सेनापति ने क्रोधपूर्ण दृष्टि से शत्रुओं को देखा। दोनों सेनाओं के

बीच घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। सेनापति का स्वरूप ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वीररस वीरवेश में आया हो। 'बाजीप्रभु देशपाण्डे' को स्वतन्त्रता अत्यन्त प्रिय थी–

स्वतन्त्रता गृणाति नः स्वतन्त्रता धिनोति नः
त्रिलोकलोकनन्दिनी स्वतन्त्रता वृणोति नः।
स्वधर्मवर्त्मसिद्धये स्वजन्मलक्ष्यलब्धये
स्वतन्त्रता द्विषच्छिदः स्वतन्त्रताऽऽजुहोति नः।।[४५]

वे कहते हैं स्वतन्त्रता हमारा अभिनन्दन कर रही है शत्रुसंहारकों धर्ममार्ग की सिद्धि के लिए स्वतन्त्रता हमारा आवाहन कर रही है। इस प्रकार युद्ध करते हुए सेनापति का उत्साह उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त कर रहा था; किन्तु कुछ समय पश्चात् सेनापति की सेना का चौथाई भाग ही शेष रह गया (अर्थात् युद्ध में अन्य योद्धा मारे गये) तब घावों से खून बहते हुए सेनापति ने 'विशालदुर्गगढ़' की दिशा को देखा। यद्यपि वे 'शिवाजी' के तोप की ध्वनि को सुनना चाहते थे, सहसा उन्हें तोप की ध्वनि सुनायी दी जिससे उन्हें विश्वास हो गया कि 'शिवाजी' किले में सुरक्षित हैं; किन्तु सेनापति ने युद्ध लड़ते-लड़ते त्याग की उस परम्परा को प्रतिष्ठित किया जिसकी उपलब्धि को ही संसार स्वतन्त्रता के नाम से सम्मानित करती है–

असुप्रसूनमेव शोणिताम्बुधारमिश्रितं
गतस्पृहं स्वदेशमातृगुप्तये प्रयच्छता।
अनीकनायकेन साऽर्चनासृतिः प्रचारिता
स्वतन्त्रता यदेकनिष्क्रिया जनेषु गीयते।।[४६]

इस प्रकार वीर 'बाजीप्रभु देशपाण्डे' वीरगति को प्रप्त हो गये। महाकाव्य में इनका प्रसङ्ग उपर्युक्त प्रकार से ही (बस इतना ही) वर्णित है।

समीक्षा– 'बाजीप्रभु देशपाण्डे' एक वीर योद्धा थे। वे स्वामिभक्त एवं स्वतन्त्रता प्रेमी थे। वे अनुशासन प्रिय थे। वे आवश्यकता पड़ने पर किसी को अलग रहेगा भी कुछ भी आदेश आदेश दे देते थे, यहाँ तक कि उन्होंने एक बार 'शिवाजी' को भी सेनापति होने के नाते आदेश दे दिया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'बाजीप्रभु देशपाण्डे'

उपर्युक्त सभी गुणों के स्वामी थे जिसका वर्णन उनके चरित्र-चित्रण में किया गया है।

शाइस्ता खान

'शाइस्ता खान' 'औरङ्गजेब' का मामा था। १६६० ई० में मुगल सेनापति सूबेदार 'शाइस्ता खान' को 'शिवाजी' को समाप्त करने के आदेश प्राप्त हुए थे।''[४७] 'शाइस्ता खान' ने बीजापुर से मिलकर 'शिवाजी' को समाप्त करने की योजना बनायी और 'शिवाजी' से पूना, चकन, कल्याण को छीनने में सफलता पायी। 'शाइस्ता खान' एक वीर योद्धा था, फलस्वरूप उसने दो वर्ष के युद्ध में 'शिवाजी' के बहुत से स्थानों को छीनने में सफलता पायी।

''१६६३ ई० में शायिस्ता खान जब पूना में वर्षा व्यतीत कर रहा था तभी शिवाजी चुपके से पूना प्रवेश कर गये एवं रात्रि को उसके महल पर आक्रमण कर दिया।''[४८] इस अचानक आक्रमण से वह घबरा गया और घबरा कर भाग गया।

'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य में श्री उमाशङ्कर शर्मा 'त्रिपाठी' ने 'द्वादश सर्ग' में 'शाइस्ता खान' के पराभव का वर्णन किया है। 'शाइस्ता खान' अनेक युद्ध लड़ लेने के कारण युद्ध के प्रदर्शन में अभ्यस्त था–

नहि केवलमाजिधाम्नि शत्रुर्विषमे किन्तु नयेऽपि जेतुकामः।
शिवमन्त्रमक्षिपन् सदर्प कृतिनामात्मनि विस्मयं ततान।।[४९]

अर्थात् केवल युद्धभूमि में ही नहीं, अपितु प्रचुर साधन सम्पन्न मुगल सेनापति ने नीतिप्रयोग में भी 'शिवाजी' को नीचा दिखाना चाहा। 'शिवाजी' की नीतियों को अपने प्रतिरोधी नीतियों से वह विफल कर विवेकियों को आश्चर्यचकित कर दिया। वस्तुतः सैन्यशक्ति तथा धन के कारण मुगल अनेक प्रलोभनों एवम् आतंकों के द्वारा महाराष्ट्र की जनता को प्रभावित करने में सफल हो रहे थे, सबसे बड़ी बात उनके उस प्रदेश में सेना के साथ उपस्थित रहने के कारण थी, जनता का मनोबल तोड़ने के लिए 'शायिस्ता खान' अपने धन बल का भरपूर प्रयोग कर रहा था।

'शायिस्ता खान' के साथ (मुगल सेनाओं के साथ) परिवार के अतिरिक्त, पेशेवर वेश्याओं गाने बजाने वालों की एक अच्छी खासी संख्या आमोद-प्रमोद का साधन प्रस्तुत करने के लिए रहती थी, इस प्रकार स्पष्ट है कि 'शायिस्ता खान' विलासी एवं सङ्गीत, नृत्य इत्यादि देखने में रुचि रखता था। 'शायिस्ता खान' को 'शिवाजी' की सेना की कोई चिन्ता न थी–

अविचिन्त्य पताकिनीं शिवस्य शायिस्ताश्वो मनसो विनोदनाय।
सहते स्म हृदि स्मरोत्सवानां चपलापाङ्गमिवारितीक्ष्णकुन्तम्।।[५०]

अर्थात् 'शायिस्ता खान' 'कामलीला' में निमग्न था। 'शिवाजी' ने ठान लिया था कि वर्षा ऋतु में शत्रुरूपी प्रचण्ड ताप को दूर कर दिया जाय। 'शिवाजी' ने वेश बदलकर (किंवदन्ती एवम् इतिहास का कथन है कि 'शिवाजी' ने पूना में बारातियों के वेश में प्रवेश किया था। दो सौ वीर सैनिकों के साथ पूना में प्रवेश किया। निस्तब्ध रात्रि में 'शिवाजी' ने शत्रुओं में भय उत्पन्न कर दिया। शिवाजी के साहसपूर्ण प्रयासों द्वारा 'शायिस्ता खान' पूना से खदेड़ दिया गया। मुगल सेनापति 'शायिस्ता खान' पर 'शिवाजी' ने जब रात्रि में आक्रमण किया तब वह भागने लगा, भागते समय शिवाजी की तलवार से उसकी दो अङ्गुलियाँ भी कट गयी–

परमर्कयशाः शिवोऽसिमुद्रामलिखच्छत्रुकृपाणबद्धमुष्टौ।
कृतिशुल्कमिवाङ्गुलिद्वयं सो द्रुतमापात्य बलिस्मृतिं ररक्ष।।[५१]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि 'शायिस्ता खान' कायर भी था, क्योंकि यदि वह वीर होता तो शिवाजी का डटकर मुकाबला करता। यद्यपि शिवाजी ने रात्रिकालीन आक्रमण किया; किन्तु आक्रमण का लक्ष्य सेनापति 'शायिस्ता खान' बाल-बाल बच गया। फिर भी एक सेनापति के लिए यह एक लज्जा का विषय है कि वह अपने ऊपर होने वाले किसी अकस्मात आक्रमण का सूत्र पता न कर पाये, इससे शायिस्ता खान की अदूरदर्शिता का भी पता चलता है। महाकाव्य में 'शायिस्ता खान' का बस इतना ही प्रसङ्ग आया है।

समीक्षा– शायिस्ता खान एक वीर सेनापति था; किन्तु साथ-साथ अत्यन्त विलासी एवम् अदूरदर्शी था। उसकी विलासिता एवम्

अदूरदर्शिता के कारण ही उसे शिवाजी के हाथों पराजित होना पड़ा। 'शायिस्ता खान' यद्यपि वीर था; किन्तु उसके कायरता की कहानी (शिवाजी के आक्रमण से वह घबराकर भाग गया और शिवाजी ने उसकी दो अङ्गुलियाँ काट लीं) आज भी स्मरण होने पर हास्यास्पद लगती है। 'शायिस्ता खान' ने अपनी युद्ध नीतियों द्वारा कुछ किले भी जीते थे यह भी स्मरण करने योग्य है। इस बात से यह पता चलता है कि वह वीर सेनापति एवं बुद्धिमान व्यक्ति था।

समर्थगुरु बाबा रामदास

समर्थगुरु बाबा रामदास शिवाजी के गुरु थे। इन्हीं के संरक्षण में 'शिवाजी' को शिक्षा प्राप्त हुई थी। **क्षत्रपतिचरितम्** महाकाव्य में 'त्रिपाठी' जी ने इनके जीवन के सभी पहलुओं की तरफ ध्यान नहीं दिया है अपितु 'एकादश सर्ग' में उनकी उदर पीड़ा का वर्णन किया है एवम् उनके द्वारा किये गये अलौकिक चमत्कार (तपस्वी एवं बघिनी का जङ्गल में प्रकट हो जाना) का वर्णन किया है। समर्थगुरु के कई शिष्य थे; किन्तु वह 'शिवाजी' को सबसे अधिक अपने स्नेह का पात्र समझते थे। समर्थगुरु बाबा 'रामदास' ने मराठा शक्ति के उत्कर्ष में भी योगदान दिया था। महागुरु समर्थ अलौकिक विभूति थे। वे शिवाजी के अदम्य उत्साह, परोपकार तथा अन्याय विनाश आदि सहज गुणों के कारण विशेष कृपालु रहा करते थे। उनके अन्य शिष्यों को यह उचित नहीं लगता था। वे सोचते थे कि हमलोग उनकी विशेष कृपा के प्रथम अधिकारी है, क्योंकि हमलोग उनकी सेवा के लिए अपना घर-द्वार त्याग कर यहाँ आये हैं, जबकि शिवाजी धन वैभव में लीन होने के कारण गुरु सेवा में सदैव उपस्थित नहीं रहते हैं; किन्तु समर्थगुरु केवल बाहरी वेश-भूषा ही नहीं (कि शिष्य घर द्वारा त्याग कर गुरु की सेवा में सदैव उपस्थित हो) अपितु शिक्षा को व्यवहार में लाने की प्रधानता देते थे। यहाँ व्यवहार में लाने से तात्पर्य है कि यदि तथ्यतः कोई शिष्य गुरु की सेवा करना चाहता है या किसी कार्य को करना चाहता है तो वह कार्यारम्भ के पूर्व ही 'आगा पीछा न सोचे' उदाहरणतः जब समर्थगुरु के उदर में पीड़ा हो रही थी, तब वैद्य ने कहा कि 'बघिनी के दूध से उदर पीड़ा शान्त होगी' इस पर अन्य शिष्य तो शान्त रह गये जबकि शिवाजी ने अपने गुरु के उदर

कष्ट के निवारणार्थ (बघिनी हमला भी कर सकती थी अतः परिणाम के बारे में सोचना आवश्यक था, पर शिवाजी ने) आगा-पीछा नहीं सोचा और तुरन्त बघिनी का दूध लेने निकल गये। यही बात यहाँ सिद्ध करती है कि समर्थगुरु के सभी शिष्यों में 'शिवाजी' को ही व्यावहारिक ज्ञान (किसी के दुःख या कष्ट में उसकी सहायता करना प्रथम धर्म एवं कर्त्तव्य है) था, जबकि अन्य शिष्य केवल घर-बार त्याग कर (बाह्य वेश-भूषायुक्त शिष्य) गुरु की सेवा करना ही अपना प्रथम कर्त्तव्य समझते थे।

व्यावहारिक शिक्षा पर बल देना समर्थ गुरु के जीवन का विशेष एवं विचित्र अङ्ग था। यही कारण है कि महाकाव्य के 'एकादश सर्ग' में उन्होंने अन्य शिष्यों के आगे यह प्रमाणित करने के लिए कि वह क्यों 'शिवाजी' को स्नेह का पात्र समझते हैं; उन्होंने शिवाजी की परीक्षा ली है। बस यही इतना प्रसङ्ग समर्थगुरु बाबा रामदास से सम्बन्धित है, जो महाकाव्य के एकादश सर्ग में आया है। समर्थगुरु बाबा रामदास ने शिवाजी को धार्मिक एवम् आध्यात्मिक शिक्षा दी थी। उन्होंने शिवाजी को धर्म और सदाचार का भी पाठ पढ़ाया था। वे शिवाजी के प्रेरणा स्रोत थे। उन्होंने शिवाजी के चरित्र में उत्तम गुणों का विकास किया था जिसके कारण शिवाजी तत्कालीन इतिहास के नायक हुए।

समीक्षा– समर्थगुरु बाबा 'रामदास' एक श्रेष्ठ गुरु एवं धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होंने अपने शिष्यों को 'व्यावहारिक ज्ञान' की शिक्षा दी थी।

आमेरनरेश राजा जय सिंह

कवि ने महाकाव्य के 'द्वादश सर्ग' में आमेरनरेश राजा 'जयसिंह' का वर्णन किया है। ''१६६५ ई० में 'औरङ्गजेब' ने राजा 'जयसिंह' को 'शिवाजी' के विरुद्ध भेजा था।''[५२] राजा 'जयसिंह' एक कुशल सेनापति थे। वह एक कुशल सेनापति होने के साथ-साथ एक कूटनीतिज्ञ भी थे। उन्हें तुर्की, फारसी, उर्दू एवं राजस्थानी भाषा का ज्ञान था। 'शाहजहाँ' के शासन काल में उन्होंने मुगल साम्राज्य के सभी भागों में युद्ध किया था। ''शाहजहाँ के काल का एक भी

वर्ष ऐसा न था जबकि राजा 'जयसिंह' ने किसी न किसी प्रकार की सफलता न प्राप्त की हो और बादशाह से सम्मान और पद न प्राप्त किया हो।''[५३] जयसिंह शत्रु से युद्ध लड़ते समय शक्ति एवं कूटनीति दोनों का सहारा लेते थे–

कूटनीतिरनार्याणामा- र्याणाञ्चेष्टविक्रमः।
द्वयं सहस्थितिं भेजे जयसिंहे यशस्विनी।।[५४]

जब 'औरङ्गजेब' ने 'जयसिंह' को 'शिवाजी' के विरुद्ध भेजा तब उन्होंने यहाँ भी शक्ति और कूटनीति का सहारा लिया। कवि ने लिखा है कि 'जयसिंह' अनेक महायुद्धों में अपनी शौर्यकीर्ति के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध थे–

जयसिंह महायुद्धकीर्तिमाम्बेरभूपतिम्।
असौ पोतमिवापश्यद् दुस्तराऽऽवर्तव ेम्पियतः।।[५५]

'जयसिंह' के प्रयासों (वज्रगढ़ को जीतकर 'जयसिंह' ने पुरन्दर के किले में 'शिवाजी' को घेर लिया यह निश्चय हो गया कि पुरन्दर किले की रक्षा सम्भव न हो सकेगी) के कारण 'शिवाजी' ने आत्मसमर्पण कर दिया एवं बिना किसी शर्त के राजा 'जयसिंह' से मिलने गये फलस्वरूप 'पुरन्दर की सन्धि' हो गयी। जिसके अनुसार[५६]–

१. 'शिवाजी' ने अपने २३ किले और करीब ४ लाख हूण की वार्षिक आय की भूमि मुगलों को दे दी।

२. रायगढ़ को सम्मिलित करके 'शिवाजी' के पास केवल १२ किले और एक लाख हूण की वार्षिक आय की भूमि रही।

३. शिवाजी ने मुगल आधिपत्य को स्वीकार कर लिया, परन्तु अपने स्थान पर अपने पुत्र 'शम्भाजी' को ५,००० घुड़सवारों के साथ मुगलों की सेवा में भेजना स्वीकार किया।

४. 'शिवाजी' ने 'बीजापुर' के विरुद्ध मुगलों को सैनिक सहायता देने का वायदा किया।

५. (बाद में इस सन्धि में ५वीं शर्त जोड़ी गयी जिसके अनुसार) 'शिवाजी' ने वायदा किया कि यदि कोंकण में ४ लाख हूण

की वार्षिक आय की भूमि और बालाघाट (जो बीजापुर के पास था) की ५ लाख हूण वार्षिक आय की भूमि उन्हें दे दी जाय तो वह मुगलों को १३ वर्षों में ४० लाख हूण देंगे। इन प्रदेशों को 'शिवाजी' को स्वयं ही जीतना था। इस शर्त से मुगलों को बहुत लाभ था। प्रथम 'शिवाजी' और बीजापुर एक-दूसरे के शत्रु हो गये और दूसरे 'शिवाजी' की शक्ति के इन प्रदेशों में ही लग जाने की सम्भावना हो गयी। यह 'जयसिंह' की कूटनीति का परिणाम था। इस प्रकार केवल तीन महीने के प्रयास में ही 'जयसिंह' की कूटनीति और शक्ति ने 'शिवाजी' को मुगलों की अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया। इस युद्ध और सन्धि से 'शिवाजी' का बहुत नुकसान हुआ। 'जयसिंह' के ही प्रयासों के कारण 'शिवाजी' 'औरङ्गजेब' से मिलने आगरा गये। महाकाव्य में 'जयसिंह' का बस इतना ही प्रसङ्ग आया है।

समीक्षा– जयसिंह अपने समय के एक योग्यतम सेनापति एवं कूटनीतिज्ञ थे। 'जयसिंह' विजय प्राप्त करने के लिए शक्ति एवं कूटनीति दोनों का सहारा लेते थे। 'शिवाजी' के आत्मसमर्पण में 'जयसिंह' की कूटनीतियों का योगदान था। 'जयसिंह' वीर थे और वे 'शिवाजी' का सम्मान करते थे। उन्होंने आगरा में 'शिवाजी' की आगवानी के लिए अपने पुत्र 'रामसिंह' को नियुक्त कर रखा था।

औरङ्गजेब

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में 'औरङ्गजेब' भी एक पात्र था। वह वीर था; किन्तु बहुत ही क्रूर था। वह वीरों का सम्मान करना नहीं जानता था। शिवाजी जब उससे मिलने आगरा गये तब उसने उन्हें पञ्चहजारी मनसबदारों में खड़े हो जाने का इशारा किया–

यथा निदिष्टेन ततः पथाऽतिथिं जनो नयन् पञ्चसहस्रकासने।
अमोघगूढस्मितलक्ष्यलक्षितं तदुत्तरोत्कर्षजुषामकल्पयत्।।[५७]

'औरङ्गजेब' दिल्ली का शासक था; किन्तु उसे अतिथि-सम्मान का कोई ज्ञान नहीं था। 'औरङ्गजेब' के यहाँ जाने के बाद 'शिवाजी' बीमार पड़ गये (यद्यपि बीमारी एक बहाना था)। 'औरङ्गजेब' ने जब

सुना कि 'शिवाजी' बीमार हैं तब उसने 'घड़ियाली आँसू' की तरह वैद्य को 'शिवाजी' के उपचारार्थ जाने का आदेश दिया। वह व्यक्त करना चाहता था कि वह 'शिवाजी' की बीमारी से अत्यन्त चिन्तित है। वह समाज की पूर्णरूपेण उपेक्षा नहीं कर सकता था यदि वह अस्वस्थ 'शिवाजी' के उपचारार्थ वैद्य न भेजता तो समाज में उसके लिए यह प्रचार फैल जाता कि अतिथि के बीमार होते हुए भी बादशाह उसके पास वैद्य नहीं भेज रहे हैं। स्पष्ट है कि सद्भावना या आदर के कारण नहीं अपितु स्वयं को प्रवाद से दूर रखने के लिए उसने वैद्य का प्रबन्ध किया।

इस महाकाव्य में ऐसी किसी घटना का वर्णन नहीं है जिसमें 'औरङ्गजेब' खुलकर सामने आया हो, क्योंकि यह महाकाव्य 'शिवाजी' विषयक है। इसमें उन्हीं घटनाओं का वर्णन है, जो शिवाजी से साक्षात् सम्बद्ध हैं। औरङ्गजेब किसी पात्र के माध्यम से ही इस महाकाव्य में दृष्टिगत होता है, जैसे राजा जयसिंह। (जिनके माध्यम से औरङ्गजेब महाकाव्य में दृष्टिगत हुआ है)।

समीक्षा– औरङ्गजेब इस महाकाव्य में शिवाजी के विरुद्ध दृष्टिगत हुआ है। वह एक क्रूर राजा है। आतिथ्य सम्मान का भान उसमें दृष्टिगत नहीं होता है, साथ ही 'वीर के साथ वीर जैसा व्यवहार' होना चाहिए यह भान भी उसमें दृष्टिगत नहीं होता है।

जीजाबाई

'जीजाबाई' अत्यन्त उदार महिला थी। वह याधवराज नामक एक सामन्त की पुत्री थीं। उनका विवाह 'मालोजि' के एक आठ वर्षीय बालक 'शाहजी' से बाल्यावस्था में ही होना निश्चित हो गया था। जब उनका विवाह हो गया तब उन्होंने भोसला कुल की कीर्ति को बढ़ाया यद्यपि वे आरम्भ में एक सामान्य वातावरण से सम्बद्ध थीं, पर आगे चलकर वे राजकुल दीपक (शिवाजी) की जन्मदात्री के सम्मान से प्रसिद्ध हुई–

आराधितोदारशिवावतारणा सा भोसलेवंशयशः पलाशिनी।
अव्यक्तमूलापि ततान गौरवं भूभृत्कुलालङ्कृतपात्रपद्धतिः।।[५८]

'जीजाबाई' के पुत्र 'शिवाजी' थे। 'जीजाबाई' ने अपना जीवन बहुत ही सादगी के साथ बिताया। उनके पति अन्य सपत्नियों में अनुराग रखते थे इसीलिए उन्होंने अपना ध्यान धर्म, त्याग की तरफ लगाया। उन्हीं की संरक्षण में शिवाजी की शिक्षा-दीक्षा भी पूर्ण हुई थी। 'जीजाबाई' अपने पुत्र 'शिवाजी' को रामायण, महाभारत की कथाएँ सुनाया करती थी। उन्होंने 'शिवाजी' को देशभक्ति का भी पाठ पढ़ाया था साथ ही 'शिवाजी' के उत्तम चरित्र का निर्माण किया था। माता 'जीजाबाई' अपने पुत्र को अच्छी दिशा में लगाने हेतु निरन्तर विभिन्न प्रयत्न किया करती थीं।

'कोण्डना दुर्ग विजय' का कथानक अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। माता 'जीजाबाई' दुर्ग को शत्रु के अधिकार में देख अत्यन्त चिन्तित एवं दुःखी थी। उन्होंने योजना बनायी कि किस प्रकार वे 'शिवाजी' से 'कोण्डना दुर्ग' विजय करने के लिए कहेंगी। एक दिन उन्होंने शिवाजी से कहा कि पुत्र मैं तुम्हारे साथ जुआ खेलना चाहती हूँ। यह निश्चय हुआ कि उस द्यूतयुद्ध में बाजी लगेगी, दोनों खेलने वालों में विजेता, पराजित से मनोवाञ्छित फल प्राप्त करने का अधिकारी होगा। यह पारितोषिक उसके द्यूतकौशल के पुरस्कारस्वरूप होगा।

शिवाजी ने जिज्ञासा प्रकट की कि माता क्या चाहती हैं? इस पर जीजाबाई ने कहा–

तारकारिमिव साऽऽह पुत्रिणी तत्क्षणं सुतमुदारदर्शना।
विस्तृतेऽपि वद दुर्गमण्डले दुर्गता तनय केन मेऽधुना।।[५९]

अर्थात् उस उदारदर्शना माता ने पुत्र से पूछा– "बेटा, तुम अपने किलों में से कौन-सा किला मुझे देना चाहोंगे?" (अर्थात् वे 'कोण्डना दुर्ग' द्यूत में विजयी होने पर लेना चाहती थीं) इस घटना से स्पष्ट सङ्केत मिलता है कि 'जीजाबाई' एक वीर क्षत्राणी थीं, वे एक वीर पुत्र को चाहती थीं। 'जीजाबाई' से सम्बद्ध बस इतना ही प्रसङ्ग विशेष रूप से महाकाव्य में कवि ने दर्शाया है।

समीक्षा– जीजाबाई एक आदर्श नारी थीं। वे धार्मिक, त्यागमयी एवं सत्य की मूर्ति थी। वे एक आदर्श माता थी।

तानाजी मालसुरे

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के 'षोडश सर्ग' में 'तानाजी मालसुरे' की वीरता का वर्णन है। 'तानाजी मालसुरे' 'शिवाजी' के मित्र थे। 'कोण्डना दुर्ग' जब शत्रु के अधिकार में था (तब माता 'जीजाबाई' द्यूतक्रीड़ा के पुरस्कारस्वरूप इस दुर्ग को चाहती थी अतः) तब उन्होंने मित्र (शिवाजी) की माँ (जीजाबाई) की इच्छा की पूर्ति के लिए 'कोण्डना दुर्ग' को शत्रु से अपने अधिकार में कर लिया। उन्होंने माता जीजाबाई से कहा–

कोण्डनामुदयभानुशासना- दौग्रसेनिनिगडादिवाच्युतः।
देवकीमिव न मोचये यदि मास्तु मे जननि वीरसत्क्रिया।।[६०]

अर्थात् माँ, जिस प्रकार उग्रसेन के पुत्र कंस के कारागृह से भगवान् कृष्ण ने माता देवकी को मुक्त किया यदि उसी प्रकार उदयभानु (किलेदार) के पञ्जे से मैं 'कोण्डना' को मुक्त न कर लूँ तो मुझे वीरोचित प्रतिष्ठा न मिले। अपने प्रयासों के फलस्वरूप उन्होंने 'कोण्डना दुर्ग' जीत लिया और स्वयं मृत्यु की शरण में चले गये। तानाजी एक कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति थे। वे अपने व्यक्तिगत कार्यों ('तानाजी मालसुरे' के पुत्र का विवाह था; किन्तु माता 'जीजाबाई' का आदेश सुनने के बाद वे विवाह की तैयारियां छोड़कर युद्ध की तैयारी में लग गये) की अपेक्षा 'शिवाजी' की आज्ञा को अधिक महत्त्व देतेथे।

कोण्डना दुर्ग विजय के समय जब 'तानाजी मालसुरे' की मृत्यु हो गयी तब 'शिवाजी' ने रोते हुए इन्हें 'सिंह' की संज्ञा दी एवं 'कोण्डना दुर्ग' का नाम 'सिंह दुर्ग' रख दिया।

समीक्षा– तानाजी मालसुरे एक वीर, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं मित्रभक्त व्यक्ति थे। आमरण उन्होंने अपना कर्त्तव्य निभाया।

उपसंहार– प्रस्तुत अध्याय (चतुर्थ) में क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के नायक तथा अन्य अप्रमुख पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। सर्वप्रथम शिवाजी का चरित्र-चित्रण दिया गया है। शिवाजी इस महाकाव्य के नायक हैं। वे वीर, मातृभक्ति, गुरुभक्त, मित्रप्रेमी, आदर्श सैनिक, आदर्श शत्रु, आदर्श नायक हैं। वे धर्म में आस्थावान् हैं उनमें

आदर्श राजा के सभी गुण विद्यमान है। शिवाजी के चरित्र की विशेषताओं को बताने के बाद शिवाजी के पक्ष के क्रमशः कुछ पात्रों– गोपीनाथ, गुरुसमर्थ, जीजाबाई, तानाजी मालसुरे, बाजीप्रभु देशपाण्डे के चरित्र की विशेषताओं पर भी संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है, इसके साथ ही शिवाजी शत्रु पक्ष के पात्रों की भी संक्षिप्त चारित्र्यगत विशेषताएँ बतायी गयी हैं यथा– अफजल खाँ, कृष्णाजी भास्कर, शाइस्ता खाँ, आमेरनरेश राजा जयसिंह, औरंगजेब।

सन्दर्भ

१. क्षत्रपतिचरितम्, ३.१०.
२. वही, ३.३५.
३. वही, १६.१४.
४. वही, ११.४२.
५. वही, ११.४३.
६. वही, ११.५६.
७. वही, १३.७.
८. वही, १६.८४.
९. वही, ८.७.
१०. वही, ८.४२,४३.
११. वही, ३.१२७.
१२. वही, ३.१२१.
१३. वही, ३.९०.
१४. वही, ३.९१.
१५. वही, ७.५९.
१६. वही, १९.३२.
१७. मध्यकालीन भारत, १०००-१७६१, एल०पी०शर्मा, पृष्ठ ४१९.
१८. दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, पृष्ठ ७५.

१९. क्षत्रपतिचरितम्, ७.५०.
२०. वही, १४.७.
२१. क्षत्रपतिचरितम्, ३.२८.
२२. वही, ८.६५.
२३. वही, ४.१४.
२४. वही, १३.७.
२५. वही, ३.१२१.
२६. वही, १४.२२.
२७. वही, १८.१४,१५.
२८. वही, ४.१०.
२९. वही, ५.१४.
३०. वही, ५.२२.
३१. वही, ५.३०.
३२. वही, ५.७८.
३३. वही, ५.७६.
३४. वही, ५.४३.
३५. वही, ८.६२.
३६. वही, ७.२६.
३७. वही, ७.२७.
३८. वही, ७.३२.
३९. वही, ७.४७.
४०. वही, ७.६६.
४१. वही, ७.८७.
४२. वही, ८.३७.
४३. वही, ८.४०.
४४. वही, ९.१४.
४५. वही, ९.४६.
४६. वही, ९.७५.

४७. मध्यकालीन भारत, एल०पी० शर्मा, पृष्ठ ४१३.
४८. वही, ४१३.
४९. क्षत्रपतिचरितम्, १०.२२.
५०. वही,१०.३०.
५१. वही, १०.५५.
५२. मध्यकालीन भारत, एल०पी० शर्मा, पृष्ठ ४१३.
५३. वही, ४१३.
५४. क्षत्रपतिचरितम्, १२.८.
५५. वही, १२.६.
५६. मध्यकालीन भारत, एल०पी० शर्मा, पृष्ठ ४१४.
५७. क्षत्रपतिचरितम्, १४.१५.
५८. वही, २.१७७.
५९. वही, १६.२०.
६०. वही, १६.३१.

*****

पञ्चम अध्याय

साहित्यिक परिशीलन

५

साहित्यिक परिशीलन

(क) रस

काव्य का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन 'सद्यः पर निर्वृतये'[1] भी है जिसका तात्पर्य है कि काव्य तुरन्त पढ़ने के साथ ही आनन्द का अनुभव कराने के लिए होता है। आचार्य 'मम्मट' कहते हैं कि इस अलौकिक आनन्द की अनुभूति ही काव्य का मुख्य प्रयोजन है। यह ऐसा प्रयोजन है जो समस्त प्रयोजनों में शीर्षस्थ है। यह आनन्द रसास्वादन से निष्पन्न होता है तथा रस रूप ही है। रसास्वादन का अर्थ है 'रस'= 'स्थायी भाव रस्यते आस्वाद्यते' 'रसास्वादन'= स्थायी भाव का विभावानुभाव सञ्चारी भावों से संयोजन; इस संयोजन के अनन्तर ही (अविलम्ब) वह आनन्द, जो रसास्वादन रूप है, निष्पन्न हो जाता है। यही सद्यः परनिर्वृति है। इस अलौकिक आनन्दानुभूति के समय रसयिता को अन्य ज्ञेय वस्तुओं का ज्ञान नहीं रहता। तभी तो इस आनन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। समाधिस्थ योगी को जैसा आनन्द होता है वैसा ही काव्य रसास्वादन का विलक्षण आनन्द है।

वास्तव में श्री उमाशङ्कर शर्मा 'रस कवि' हैं उनके पद्य उत्कृष्ट हैं। वीर रस से भरे **क्षत्रपतिचरितम्** महाकाव्य की अद्‌भुत छटा देखते ही बनती है। कवि ने न केवल वीर रस अपितु शृङ्गार रस की मार्मिक और मनोहर व्यञ्जना महाकाव्य में प्रस्तुत की है। संयोग तथा वियोग की दशाओं में प्रेमी-प्रेमिकाओं के अन्तस्तल में जो ललित कल्पनाएँ, प्रेमिल उत्कण्ठाएँ एवं सुकुमार भाव-भङ्गियाँ अठखेलियाँ करती हैं, उनका कवि ने बड़ा मार्मिक और स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है। नागरिक

स्त्रियों की उद्दाम शृङ्गार भावना और ग्राम तरूणियों की मुग्ध मञ्जुल लीलाभङ्गियाँ नारी हृदय के इन दोनों पटलों का कवि ने सजीव चित्रण किया है। कवि ने सहृदय पाठकों को आनन्द की प्राप्ति कराने के लिए महाकाव्य में नवरसों की धाराओं को प्रवाहित कर दिया है। महाकाव्य के एक-एक श्लोक को पढ़ते ही 'सद्यः परनिर्वृतये' वाली बात घटित होती है।

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य 'वीर' रस प्रधान काव्य है; किन्तु इसमें सभी रसों की धाराएँ प्रवाहित होती हैं। संक्षिप्त रूप में महाकाव्य के नव रसों के वर्णन को दिग्दर्शित किया जा रहा है–

(१) शृङ्गार रस

''शृंगारस्य द्वौ भेदौ, सम्भोगो विप्रलम्भश्च।''[2]

रसों में शृङ्गार रस के दो प्रकार हैं– सम्भोग तथा विप्रलंभ इसका स्थायी भाव 'रति' होता है।

(क) सम्भोग शृङ्गार

सम्भोग शृङ्गार नायक तथा नायिका के परस्पर अवलोकन, आलिङ्गन, अधरपान, परिचुम्बन आदि अनन्त क्रियाओं के कारण अनगिनत प्रकार का होता है; किन्तु एक सम्भोग ही माना जाता है। **क्षत्रपतिचरितम्** महाकाव्य में श्री उमाशङ्कर शर्मा 'त्रिपाठी' जी ने शृङ्गार-विषयक सुन्दर श्लोकों को प्रस्तुत किया है इस श्लोक में सम्भोग शृङ्गार रस का सुन्दर चित्रण देखा जा सकता है–

स्तनभरोष्मरूचैव तपश्रियं समवधूय मनोरथनन्दिनी।
प्रसभकान्तभुजान्तरयन्त्रिता हिमरताऽमरतामपि नेहते।।[3]

'तपसाराध्यते स्वर्गम्' तप से स्वर्गसिद्धि होती है, ऐसा कहा गया है पर नयी वधू ने अभिनव अनुभूति का साक्षात्कार किया है स्तनों की उष्णता की प्रभा से उसने तपश्री (तप माघमास का पर्याय है) को व्यर्थ कर दिया है, ठीक भी है मेनका, रम्भा आदि अनेक सुन्दरियों ने तपः प्रभा को अपमानित किया था। अस्तु इच्छा पूर्ति से प्रसन्न नयी वधू प्रिय के हठ से किये हुए शिथिल भुजपाा में बँधकर हिमकालीन, शिशिर ऋतु की रात्रियों में आनन्दोपभोग करती हुई देवलोक को भी व्यर्थ मानती है।

ठीक है तप द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति होती है; किन्तु उस तप को यह नववधू पराजित कर चुकी है वह भी अपने एकांश से। वस्तुतः आनन्द में जिसकी स्थिति है उसे स्वर्ग की क्या इच्छा होगी?

शृङ्गार रस के सम्बन्ध में दो बातें विशेष द्रष्टव्य हैं–

१. 'शृङ्गार' शब्द की व्युत्पत्ति है 'शृङ्गस्य आगमनं (अरम्) हेतुर्यस्य स शृङ्गारो रसः' 'शृङ्ग' शब्द अलङ्कारशास्त्र में कामोद्रेक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है (शृङ्गं हि मन्मथोद्भेदः)।[४] रति-विषयक रस ही शृङ्गार रस है। मन के अनुकूल पदार्थों में सुखानुभव ही रति कहलाती है– 'रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्।' शृङ्गार के आलम्बन विभाव नायक तथा नायिका होते हैं, उद्यान, चन्द्रिका आदि उद्दीपन विभाव होते हैं; भ्रूविक्षेप, कटाक्ष आदि अनुभाव होते है तथा लज्जा, हास इत्यादि व्यभिचारी भाव होते हैं।

२. परस्पर अनुरागयुक्त नायक-नायिका के दर्शन, स्पर्शन आदि के वर्णन द्वारा जहाँ शृङ्गार रस की अनुभूति होती है वह संयोग शृङ्गार रस है। इस पारस्परिक प्रेम में दर्शन, स्पर्श आदि असंख्य रति-केलियाँ होती हैं अत एव उनके विचार से सम्भोग शृङ्गार अनन्त प्रकार का हो सकता है; किन्तु इन सबको एक मानकर सम्भोग शृङ्गार के भेद नहीं किये गये हैं।[५]

किन्तु नायक या नायिका के द्वारा आरम्भ किये जाने की दृष्टि से सम्भोग शृङ्गार दो प्रकार का कहा जा सकता है–

१. नायिकारब्ध,

२. नायकारब्ध।[६]

नायिकारब्ध संयोग शृङ्गार का उदाहरण महाकाव्य में देखा जा सकता है– अतिदिनेशमिवोदितशासनं समवधाय विधुं शरदागमे।

अभिसरत्यवशा नवमानिनी सविनयं विनयन्तमपि प्रियम्।।[७]

शरद् ऋतु की उन्मादक वेला में चन्द्रमा की सत्ता अनुपेक्षणीय हो जाती है वह सूर्य से भी अधिक प्रभावशाली हो जाता है एवं नवीन मान का अभ्यास करने वाली नववधू के लिए मार्ग निश्चित करना कठिन हो जाता है। नववधू जान जाती है कि मेरे मान का निभ पाना कठिन है। अतः विनयपूर्वक प्रार्थी प्रियतम के सर्वथा अनुगामी

रहते हुए भी वह स्वयं सब भूलकर कातर हो प्रिय के मनोरथ को पूर्ण करने के लिए उतावली हो जाती है।

यहाँ नायिका के द्वारा आरम्भ किया हुआ सम्भोग शृङ्गार प्रतीत हो रहा है। इसी प्रकार 'नायकारब्ध' सम्भोग शृङ्गार का यह उदाहरण देखा जा सकता है–

प्रणयकृत्रिमकोपपराङ्मुखी- कठिनमाननिरासविधित्सुना।
समदनाऽभिहिता मदनन्दिना क्व कलहं कलहंसि धनागमे।।[८]

नायक किसी मानिनी नायिका के मान को तोड़ने का प्रयास कर रहा है। प्रणय में झूठ-मूठ ही क्रोधित नायिका ने मौन व्रत धारण कर लिया, मान हठ क्रमशः गुरुतर होने लगा, अस्तु उस कठिन मान को दूर करने की चेष्टा में लीन मद-विह्वल नायक ने मद परवशा मानिनी से विनयपूर्वक कहा– राजहंसिनी! भला धनागम (वर्षाकाल) के इस अवसर पर कहीं कलह किया जाता है। अस्तु, यह मान भङ्ग हो।

यहाँ नायक द्वारा आरम्भ किया हुआ सम्भोग शृङ्गार स्पष्ट हो रहा है।

(ख) विप्रलम्भ शृङ्गार

'अपरस्तु अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति पञ्चविधः।'[९]

वियोग शृङ्गार १. अभिलाषा, २. विरह, ३. ईर्ष्या, ४. प्रवास, ५. शप इन हेतुओं के कारण पाँच प्रकार का होता है। इसके सम्बन्ध में कुछ विशेष बातें भी ध्यान देने योग्य हैं– जहाँ नायक-नायिका में गाढ़ अनुराग होता है; किन्तु परस्पर मिलन नहीं हो पाता है वहाँ विप्रलम्भ शृंङ्गार होता है–'यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ'[१०]

तथा

'सम्भोगसुखास्वादलोभे न विशेषेण
प्रलभ्यते आत्माऽत्रेति विप्रलम्भः।'[११]

क्षत्रपरिचरितम् महाकाव्य से कुछ विप्रलम्भ शृंङ्गार के उदाहरण देखे जा सकते हैं–

फलवती जगती नवयौवनं हतवनं सरितां भरितः क्रमः।
भवतु नाम विधौ सविधे परं भुवनजीवन! जीवनहाऽसिमे।।[१२]

कोई प्रोषितभर्तृका मेघ को उलाहने दे रही है। ऐसा स्पष्ट हो रहा है कि उसके प्रिय अचानक वर्षा हो जाने से घर नहीं पहुँच सके। पथों का अवरूद्ध हो जाना तो वर्षा के ही कारण होता है। नायिका कह रही है– मेघ! तूने अपने अनुग्रह से सबका कल्याण कर दिया। उजड़ी हुई पृथ्वी हरी हो गयी, जला हुआ उजड़ा वन नयी पत्तियों से ढककर सुन्दर हो गया। नदियाँ भर गयी। संसार के प्राण होकर भी तुमने हमारा जीवन नष्ट कर दिया। तुम्हारे एकाएक आगमन से मेरी आशा, अभिलाषा निष्फल हो गयी। तुम्हारे शीघ्र आ जाने के कारण मेरा परदेशी प्रियतम घर न आ सका।

यहाँ नायिका की नायक से मिलने की अभिलाषा (इच्छा व्यक्त) करती है। यह विप्रलम्भ श्रृङ्गार के प्रथम उदाहरण (अभिलाषा) की दृष्टि से उच्चकोटि का श्लोक है।

विप्रलम्भ श्रृङ्गार का यह एक श्लोक भी देखा जा सकता है, जो विरह अवस्था को व्यक्त कर रहा है–

नमसि साम्भसि साम्प्रतमक्षमा श्वसनशासनशासितकल्पना।
अधिकृताऽऽधिकृतासहवेदना कृशमना शमनाश्रयमीहते।।[१३]

यहाँ प्रोषितभर्तृका की अवस्था का वर्णन है। सावन के मौसम में बादल छाये हुए हैं। अकेली पति विरह में आतुर वधू ठण्डी पवन से विकल हो रही है, उसके मन में सन्ताप ने घर कर लिया है, दुःखी चित्त होकर वह यमराज से अपने कष्ट के उद्धार के लिए इच्छा कर रही है। श्रावण का दुःसह दिन, मेधाच्छादित आकाश, ठण्डी पवन, ये सभी उद्दीपन में सहायक तत्त्व है; किन्तु प्रियतम का समीप न होना वह भी मार्ग अवरुद्ध हो जाने के कारण, विप्रलम्भ को तीव्रतर बना रहा है। दुःखी चित्त के कारण 'मृति' ही केवल एकमात्र सहारे के रूप में दिखायी पड़ रही है।

श्रृङ्गार रस से सम्बन्धित महाकाव्य से अन्य श्लोक भी देखे जा सकते हैं–

१. **घनपयोधरमण्डलमण्डिताः युवतयश्चपलाश्च मनोहराः।**
विदधते पथिकाधिसमुच्चयं रसघनाः सघनाम्बरभूषिताः।।[१४]

२. **घनतमालदलद्युति- मेचकैर्वनघनैरनुषिक्तमनोरथः।**
प्रतिदिशं चकितोमुहुरीक्षते स पथिकान् पथि कान्तवधूजनः।।[१५]

३. **घनपयोधरवृंहितवैभवाः कुनदिका शतगोत्रभिदोऽभितः।**
न कलयन्ति तरङ्गचलेक्षणाः क्रमहताः महतामपि शासनम्।।[१६]

४. **करगृहीतविलोललतालकं नभसि वीक्ष्य घनं दयितागमम्।**
परिपिबन्ति भृशं नयनाञ्जलौ उपरि ताः परितापजुषोऽङ्गनाः।।[१७]

५. **कल्पप्रसूनमृदुतामुपकल्प्य यत्नाद्**
वेधा दिदर्शयिपुरात्मकलाप्रकर्षम्।
गात्रं निरस्थि सुषमायतनं विरच्य
मूढो न्यधान्मनसि तेऽस्थिकठोरतां किम्।।[१८]

६. **वीक्षोत्सुकेन सततं जगदापणेऽस्मिन्**
नूनं मनोऽभिलषितं निपुणं परीक्ष्य।
लब्धं मया विदितमेव विनार्थदर्प
तत् त्वं गुणैकगणिकेव भवातिथेयी।।[१९]

(२) हास्य रस

'हास्य रस' हास प्रकृतिक होता है। इसका तात्पर्य है वचन, वस्त्रादि विकृतियों द्वारा चित्त का विकास। जैसा कि आचार्य विश्वनाथ कविराज कहते हैं–

विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत्
हास्यो हासस्थायिभावः श्वेः प्रमथदैवतः
.....
विकृताकारचेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः।[२०]

"विकृत आकार तथा चेष्टादि वाला व्यक्ति हास्य रस का आलम्बन होता है उसकी चेष्टाएं उद्दीपन होती है; नेत्र सङ्कोच, मुस्कराना आदि अनुभाव होते है तथा निद्रा आलस्य आदि इसके व्यभिचारी भाव होते हैं।"[२१]

इसका स्थायी भाव 'हास' होता है। 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य के इन श्लोकों में 'हास्य' रस का सुन्दर पुट देखा जा सकता है, ये सभी श्लोक एक ही समय (मुगल सेनापति के पराभव के समय) के हैं। देखें–

निपतत्परिगृह्य प्राणिनाधोवसनं कोशमुपाददत्परेण?
न शशाकभटः प्रयातुं करवालं शयने धृतं विचिन्त्य।।[२२]

विचित्र अर्धनिद्रा में वीरगण सेनापति के निवास (यह प्रसङ्ग 'शायिस्ता खान' के पराभव के समय का है) पर दौड़ पड़े। एक सामन्त शीघ्रता से विस्तर छोड़कर, शिथिल होते हुए अधखुले अधोवस्त्र को एक हाथ से सम्हाले, म्यान को दूसरे हाथ में पकड़े हुए भी आगे न बढ़ सके। उन्हें याद आया कि म्यान में तलवार नहीं है, वह तो उन्होंने निकालकर बिस्तर के नीचे रख दी थी। इसी प्रकार

परिवेष्ट्य शिरस्यनावृताया वलिनोष्णीपमिवां शुकं प्रियायाः।
परिपार्श्ववतां कृते भटानां विदधेऽन्योक्तिभरावहाससर्गः।।[२३]

झटके से उठने वाले एक वीर ने बगल में लेटी हुई वस्त्रहीन प्रिया की साड़ी को ही पगड़ी के समान शिर पर जल्दी में लपेट कर रास्ते में अपने साथ चलने वाले अगल-बगल के वीरों के लिए विभिन्न उक्तियों से पूर्ण हास का विधान उपस्थित कर दिया। तथा–

अपहाय तुरङ्गमाशु कश्चिच्चरणे कञ्चुकसङ्गतिं दधानः।
खरमेव खलीनसज्जवक्त्रं प्लुतधारां परिशिक्षयन् ततान।।[२४]

और किसी ने पाजामें के स्थान पर कुरते को ही अंधेरे में पहनकर– घोड़े के स्थान पर गधे के ही मुँह में लगाम डालकर, उसे शीघ्रतापूर्वक चलने के लिए आघात द्वारा शिक्षा देते हुए विचित्र क्षोभ का अनुभव किया।

'हास्य' रस का सभी मनुष्यों के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि की रचनाओं में उसे उचित स्थान मिला है। साथ ही उन्होंने इस बात का भी ध्यान रखा है कि वह हास-परिहास अस्वाभाविक न होने पाये। कवि ने शिवाजी के सैनिकों के आगरा भ्रमण के समय हास-परिहास का सुन्दर वर्णन किया है। संस्कृत साहित्य में कवि द्वारा किये हास-परिहास के दृश्य हृदयाह्लादकता से युक्त हैं। कहीं-कहीं कवि के हास्य में व्यंग्य का पुट भी दिखायी पड़ता है इसे निम्नलिखित श्लोकों में देखा जा सकता है–

१. **भोगारतिर्यदि विलोभ्यवपुष्पु मोक्षो**
यद्वा सुखोपकरणातिशयप्रणाशः।
पण्डो दरिद्रपरमो नु तदेकपात्रं
मुक्तिः स्थितिः शमविवेकभरात्मदृष्टेः।।[२५]

२. **भद्रे! विलासवसताविह धर्मवर्त्मा**
बाल्यं विटेषु नवयौवनमिष्टदेषु।
सम्भुज्य वृद्ध– परमेष्वधुना चरन्ती
निष्ठावती त्वमिव तापसि! राजसे त्वम्।।[२६]

३. **क्षोणीव भीषणवराहरदाग्रलग्ना**
शक्रद्विपोल्लसितदन्तधृतेव माला।
त्वत्तुन्दिलोदरनभस्युदितेन्दुलेखा-
मायुष्मती पततु हेमगिरे! गृहाण।।[२७]

४. **तत् स्वागतं फलितमेव ममाद्य पुण्यै-**
र्घिङ्मां यदर्थमयि! सङ्कुचितं त्वयाऽपि।
श्रेष्ठिन् त्वदीयजठरे परिरम्भसुप्ता
मत्प्राण, तुन्दिल-पितामहमास्मरामि।।[२८]

५. **देहे विकारिणि वयोऽनुचरे भवत्या**
निर्लिचित्तमनुलोच्य सतां विवेके।
भूयो नवीक्रियत एव वचोऽच्युतस्य
कृत्वाऽपि यत् किमपि नैव करोति योगी।।[२९]

(३) करुण रस

करुण रस का स्थायी भाव 'शोक' है। प्रिय वस्तु के नष्ट हो जाने से किसी के भी चित्त का व्याकुल हो जाना स्वाभाविक है। यही स्वाभाविक व्याकुलता ही 'शोक' कहलाती है। 'इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।''[३०] जिसके लिए शोक किया जाता है (शोच्य) वही आलम्बन होता है। उसकी दाह अवस्था उद्दीपन है, दैवनिन्दा, क्रन्दन आदि अनुभाव हैं तथा मोह, व्याधि, ग्लानि, विषाद आदि व्यभिचारी भाव हैं। यहाँ जो उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है उसमें 'तानाजी मालसुरे' 'आलम्बन' हैं, 'शिवाजी' का रुदन 'अनुभाव'; दैन्य ग्लानि आदि 'व्यभिचारी' भाव हैं। यहाँ पर सहृदय सामाजिक में 'शोक' प्राकृतिक 'करुण रस' अभिव्यक्त होता है। यथा–

मुञ्च मुञ्च कृतकाक्षिमीलनं सोऽहमस्मि वद किं न वीक्षसे।
मातरं विजययागवर्णितैः किं विनोदयसि नाद्य मूर्च्छिताम्।।[३१]

'शिवाजी' अपने मित्र 'तानाजी' के मृत्यु पर विलाप करते हुए कह रहे हैं– ''अरे, उठो, ये झूठ-मूठ का आँख मूदने का बहाना मत

करो। मैं तुम्हारा वही पुराना बचपन का सखा हूँ। बोलो, मुझे क्यों नहीं देखते हो। शोक से अचेत माँ (जीजाबाई) को अपनी विजयगाथा सुनाकर उनका मन क्यों नहीं बहला रहे हो?''

इसी प्रकार–

सिंहतामपपहरन् कथं विधे! दुर्गमर्पयसि केवलं मम।
स्वीकुरुष्व शतदुर्गमद्य मे तं मदेकसुहृदं परं त्यज।।[३२]

'शिवाजी' विलाप करते हुए कहते हैं– ''दुर्दैव, इस 'सिंह दुर्ग' से 'सिंह' (तानाजी) को हरण करके केवल दुर्ग क्यों दे रहे हो (मैं इस दुर्ग के लिए अपना सिंह नहीं छोड़ सकता) तुम मुझसे आज ही सौ दुर्ग ले लो, किन्तु मेरे एकमात्र उस मित्र को लौटा दो।''

तथा–

त्वामवेक्ष्य परलोकवर्त्मनि मामनाश्रयमपूर्वबान्धव।
साऽनवाप्तशरणाऽपि शोकधूर्हन्ति निर्दयमुपेक्षसे कथम्।।[३३]

'शिवाजी' पुनः कहते हैं– 'मेरे अपूर्व सखा तुम्हें यमलोक के मार्ग में देख मेरा शोकभार कहीं भी शरण नहीं पा रहा है यह मुझे निर्दयी होकर आघात कर रहा है, फिर भी तुम क्यों मुझे उपेक्षित कर रहे है?'

इस प्रकार क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में 'त्रिपाठी' जी ने उच्चकोटि का करुण रस उपस्थित किया है।

(४) रौद्र रस

रौद्र रस का स्थायी भाव 'क्रोध' है विरोधी प्रकृति के लोगों के लिए हृदय में जो तीक्ष्ण विकार या प्रतिरोध की भावना होती है वही क्रोध कहलाती है–

रौद्रः क्रोधस्थायिभावो रक्तो रूद्राधिदैवतः।
आलम्बनमरिस्तत्र तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्।।[३४]

इसका 'आलम्बन' शत्रु होता है। शत्रु की चेष्टाएँ 'उद्दीपन' होती हैं तथा भयङ्कर मारकाट आदि संग्राम के वातावरण से इसकी विशेष रूप से उद्दीप्ति होती है। भुजाएँ ठोकना, शस्त्रोत्क्षेपण, उग्रभाव, कम्पन, मद, रोमाञ्च आदि इसके 'अनुभाव' हैं। मोह, अमर्ष आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं।

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के चतुर्दश सर्ग में श्लोक १९ से २६ तक 'रौद्र रस' का उदाहरण देखा जा सकता है। महाकाव्य से इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

तथापि तद्धाम विधूय संशयं स्वरूपमादर्शयदेव जिह्मगान्।
युगान्तरौद्रामवलोक्य तद्दृशं शशङ्किरे स्वायुषि पार्श्वभाजिनः।।[३५]

इस श्लोक का प्रसङ्ग तब का है जब 'शिवाजी' को 'औरङ्गजेब' अपने दरबार में उचित सम्मान नहीं देता है तब शिवाजी क्रोधित हो जाते हैं। फिर भी संशय (अपना घर दूर है, शत्रु पुरी में निवास है, अपनी स्थिति सर्वथा असुरक्षित है तथा शत्रु भी निर्लज्ज है, 'जय सिंह' का आश्वासन निष्फल हो रहा है।) को दूर भगाकर 'शिवाजी' के ओजस्वी स्वभाव ने अपना परिचय दे दिया। युगान्तकालीन उनकी क्रोधरत दृष्टि को देखकर अगल-बगल में बैठे सामन्तगण अपनी आयु (जीवन) के बारे में सशङ्कित हो उठे। यह भी देखें–

ततो ज्वलत्तारकनिश्चलत्विषा दृशाऽऽतिथेयस्य दृशं समीक्ष्य सः।
हुताशनेऽसह्यनिकारकश्मले दहन्नवोचदृज्जयसिंहपुत्रकम्।।[३६]

तब क्रोध से जलती हुई पुतिलयों की निर्निमेष प्रभावाली दृष्टि से आतिथेय (बादशाह) की आंखों को देखते हुए असह्य अपमान की ज्वाला में जलते हुए क्षत्रपति ने 'जयसिंह' के युवक पुत्र राम सिंह से कहा–

अये त्वया त्वज्जनकेन वाऽपरैरदृष्टपूर्वा न ममार्यसम्पदः।
वदेदृशीमर्हति किं मम स्थितिर्विडम्बनां त्वन्नरपालदर्शिता।।[३७]

''अरे, तुमसे, तुम्हारे बाप से या औरों से, मेरी स्थिति छिपी नहीं है, तुम लोग मेरी स्थिति से सर्वथा पूर्व परिचित हो। कहो, तुम्हारे बादशाह ने जो अवज्ञा, अपमान प्रदर्शित किया है, क्या मैं इसी का पात्र हूँ?''

रौद्र रस के कुछ अन्य श्लोकों को भी देखा जा सकता है–

१. **विचित्रमातिथ्यमिदं स्वधामानि तदातिथेयस्य तनोतु गौरवम्।**
इयं क्षणं सोढुमपीह मे धृतिरशीलिताभ्यासजडा विमुह्यति।।[३८]

२. **स्वलक्ष्यसिद्धानतिलक्षसैनिकांश्चमूपतिः पाति यदाज्ञयाऽनिशम्।**
इहावसीदामि दुराधिकर्दमे स पञ्चसाहस्रपदार्थमर्थितुम्।।[३९]

३. **अलं प्रसादीकृतकञ्चुकेन तत् स्वविक्रमोपार्जितसत्क्रिया वयम्।**

इयं न मे पङ्क्तिरूपस्थितिं पुनर्निकारगर्ह्यामलोकितुं क्षमा।।[४०]

४. **अतः सुखं गच्छतु मामकं शिरः प्रणन्दितुं त्वन्नृपतेर्मनोरथम्।**
ध्रुवं ममापुण्यसमीरितापदो बलादिहाकृष्य कदर्थयन्ति माम्।।[४१]

५. **तदित्थमाभाष्य विशन्निवात्मनि भिया भरन् शङ्कि सभासदं मनः।**
दधौ स्थितिं दूरमधिक्षिपन् विधिं स्वबिम्बसक्तस्फटिकानुसेवितः।।[४२]

उपर्युक्त उदाहरणों से सहृदय सामाजिक में 'रौद्र रस' की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में कवि ने उच्चकोटि के रौद्र रस का वर्णन प्रस्तुत किया है।

(५) वीर रस

'वीर रस' का स्थायी भाव 'उत्साह' है। कार्य करने में जो आनन्द एवं प्रसन्नता का अनुभव होता है वही 'उत्साह' के रूप में दिखायी पड़ता है। ''कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते''।[४३] विजेतव्य आदि ही वीररस का आलम्बन विभाव है, उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन हैं युद्ध की सामग्री या अन्य सहायकों की खोज आदि अनुभाव हैं, धैर्य, मति, गर्व आदि व्यभिचारी भाव हैं।

'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य से वीर रस के कुछ उदाहरण देखें–

निजासनं सानुनयं स्ववाजिने ददौ भटः कुन्तमतोलयत् परः।
चुचुम्ब चैकोऽसिलतामरिच्छिदं रणश्रियः कार्तिकथैकलेखनीम्।।[४४]

मावले वीरों के उत्साह की सीमा न रही। आसन्न युद्ध की आशा से वे झूम उठे। एक सैनिक ने आग्रहपूर्वक अपने घोड़े को अपना भोजन खिला दिया, दूसरा अपने भाले को तौलने लगा, एक ने शत्रु को काटनेवाली, कीर्तिगाथा की लेखनीस्वरूप अपनी तलवार को चूम लिया।

यह भी देखें–

तमार्यसङ्कल्पधरं परन्तपं निरीक्ष्य देवा इव तारकान्तकम्।
स्वदेशगुप्त्यै व्यपनीतसंशयाः श्रमायताङ्गाः प्रतिपेदिरे भटाः।।[४५]

महान् सङ्कल्प वाले शत्रुहन्ता शिवराज को सेनापति स्कन्द (तारकासुर का वध करने वाला) के समान देखकर कठिन परिश्रम करने के कारण परिपुष्ट अङ्गों वाले सैनिक (शिवराज के सङ्घर्ष में सहायता करने के लिए) स्वयं आने लगे। उनका हृदय संशय मुक्त

था, उनमें स्वदेश रक्षा के लिए महान् उत्साह भरा था।

यह भी देखें–

यतस्व रक्षितुं स्वदेश जीवनं निरापदं
जयस्व रक्षितुं स्वदेश जीवनं निरापदं।
सहस्व रक्षितुं स्वदेश जीवनं निरापदं
म्रियस्व रक्षितुं स्वदेश जीवनं निरापदं।।[४६]

मातृभूमि के निरापद जीवन की रक्षा के लिए प्रयत्न करो, विजयी बनो, कष्ट सहन करो, मर मिटो।

उपर्युक्त उदाहरणों से सहृदय सामाजिकों में 'उत्साह' प्राकृतिक 'वीर रस' की अभिव्यक्ति होती है। 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य 'वीर रस' प्रधान काव्य है इसमें कवि ने उच्चकोटि के वीर रस के श्लोक प्रस्तुत किये हैं।

(६) भयानक रस

भयानक रस का स्थायी भाव 'भय' है। किसी भीषण वस्तु के कारण चित्त में जो विकलता हो जाती है वही चित्तवृत्ति भय कहलाती है–

भयानकोभयस्थायिभावो कालाऽधिदैवतः।
स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्वविशारदैः।।
यस्मा दुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम्।
चेष्टा घोरतरास्तस्य भेवदुद्दीपनं पुनः।।[४७]

जिससे भय उत्पन्न होता है वही इसका आलम्बन होता है; भीषण वस्तु की चेष्टाएं ही उद्दीपन हैं, वैवर्ण्य, गद्गद् स्वर, स्वेद, रोमाञ्च, पलायन आदि अनुभाव है तथा शङ्का, सम्भ्रम, मरण आदि व्यभिचारी भाव हैं। उदाहरण देखें–

विलोक्य कश्चिद्रिपुरोषशोषितं भियाऽस्तवाचो विनता इवाक्षमाः।
क्रमेण लब्ध्वापि तमेव दुर्णयं जनाः स्वगुप्त्यै स्तवनं व्यधुर्द्विषाम्।।[४८]

प्रायः किसी निर्दोष व्यक्ति को शत्रु के क्रोध का शिकार होते हुए देखकर भी समाज के अन्य लोग भय के मारे चुप हो जाते थे। वे झुककर शत्रु के अन्याय का समर्थन करते थे; किन्तु क्रमशः जब उन पर विपत्ति पड़ती थी तब वे एक-एक कर शत्रु के अन्याय का

शिकार होते थे एवं असहाय हो अपनी सुरक्षा के लिए उन्हीं शत्रुओं का गुणगान करते थे।

यह भी देखें–

सुते कलत्रे वपुषि स्वबन्धुषु न कोऽपि कुत्रापि जहौ स्वसंशयम्।
महोत्सवस्तस्य तु येन वीक्षितो निशं निषेव्यापि पुनर्नवोंऽशुमान्।।[४९]

परतन्त्रता के उस युग में किसी का कुछ भी कभी भी सुरक्षित न था। लोग अपने पुत्र, स्त्री, बन्धुजन आदि के लिए सदा सशङ्क रहा करते थे। रात्रि निश्चिन्त व्यतीत कर यदि किसी ने प्रातःकाल के उगते हुए सूर्य को भी देख लिया तो वह इसे अहोभाग्य मानता था।

यह भी देखे–

अकृत्रिमाह्लादरमेऽपि चिन्तया स शैशवास्ये समवेक्ष्य रोपितम्।
विवेकभाजमपि दुर्वहं पदं प्रकम्पमानोऽपि ततान कुण्ठितः।।[५०]

सहज स्वाभाविक प्रसन्नता से पूर्ण भोले-भाले बच्चों के मुख पर बुद्धिमानों को भी विकल कर देने वाली चिन्ता की काली रेखा देखकर नवयुवक शिवाजी क्रोध से कांप जाते थे पर कुछ करते न बनता था।

यह भी देखें–

अनारते त्राणवता सनाथिते स्वकीयपार्श्वेऽपि विरूढसाध्वम्।
निवेदयामास भविष्णवे स्थितिं नृपाय सौभाग्यधनं नतभ्रुवाम्।।[५१]

पति के बगल में सोयी हुई, पति के सावधान रहने पर भी सुन्दरी नवयुवतियाँ अपनी अरक्षा के भय से विकल रहती थीं। भावी राजा को (शिवाजी) मानो सुन्दरियों ने अपने सौभाग्य की रक्षा के लिए आत्मनिवेदन ही कर डाला।

उपर्युक्त उदाहरणों से सहृदय सामाजिक में भय प्रकृतिक भयानक रस की अभिव्यक्ति होती है। महाकाव्य में कवि ने भयानक रस से सम्बन्धित सुन्दर श्लोकों का वर्णन किया है।

(६) बीभत्स रस

बीभत्स रस में स्थायी भाव 'जुगुप्सा' है, किसी घृणित वस्तु के दोषदर्शन से उत्पन्न होने वाला घृणा भाव ही 'जुगुप्सा' कहलाता है।

जुगुप्सास्थायिभावस्तु बीभत्सः कथ्यते रसः।
नीलवर्णो महाकालदैवतोऽयमुदाहृतः।।
दुर्गन्धमांसरुधिरमेदांस्यालम्बनं मतम्.....।।[५२]

दुर्गन्ध, मांस, रुधिर इत्यादि इसके आलम्बन हैं। उनमें कीड़े पड़ना आदि उद्दीपन है, थूकना, मुंह फेरना इत्यादि अनुभाव हैं तथा मोह, व्याधि, मरण इत्यादि व्यभिचारी भाव है।

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य से 'वीभत्स रस' के उदाहरण को देखें–

जगर्ज वाहिनी ननर्त वाजिराजिरूद्धता
बबन्ध संहतान्त्रबन्धने स्वकण्ठमण्डजः।
चकर्ष वर्षदुष्णरक्तसक्थि फेरूमण्डली
रुराव वृद्धगृध्रचञ्चुलुञ्चितान्यचिल्लकी।।[५३]

सेना ने गर्जन किया, घोड़े हिनहिना पड़े। मांसभक्षी पक्षियों के गले में अँतड़ी की माला उलझ गयी, ताजे रक्त से लथपथ जांघों को गीदड़ों का झुण्ड खींचने लगा। बूढ़े जटायु की चोंच से डरी चील ठनकने लगी।

वभावपांसुले क्षताङ्गशोभिशौर्यदुर्मदे
महाश्मशानभस्मवर्णिनीव पांसुसच्छविः।
असृक्प्रसिक्तरेणुकर्दमच्छटातटी तनुः
स्रवन्निसर्गरक्तभैरवापगाऽवहत् क्वचित्।।[५४]

घाव लगे हुए अङ्गों से शोभित शौर्य दुर्मद निष्कलंक वीर पर पड़ती हुई धूल चिता भस्म जैसे प्रतीत हो रही थी। खून से सनी, धूल, कीचड़ में लिपटी देह मानों बराबर बहने वाले रक्त से भयङ्कर नदी बह रही थी।

उपर्युक्त उदाहरणों से सहृदय सामाजिक में जुगुप्सा प्रकृतिक बीभत्स रस की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार कवि ने उत्तम 'जुगुप्सा' रस विषयक श्लोकों का वर्णन इस महाकाव्य में किया है।

(८) अद्भुत रस

अद्भुत रस का स्थायी भाव 'विस्मय' है। विलक्षण वस्तुओं के दर्शन श्रवण आदि से जो चित्त का विकास होता है वही 'विस्मय' कहलाता है। देखें–

अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवतः।।
पीतवर्णो, वस्तु लोकातिगमालम्बनं मतम्।
गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुनः।।
स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चगद्गदस्वरसंभ्रमाः।
तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः।।
वितर्कावेगसंभ्रान्तिहर्षाद्या व्यभिचारिणः।[५५]

इसका आलम्बन विलक्षण वस्तु है, उस वस्तु का गुण वर्णन ही उद्दीपन है; स्वेद, रोमाञ्च, नेत्र विकास आदि अनुभाव है, वितर्क, आवेग, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं।

महाकाव्य से अद्भुत रस के उदाहरण को देखें–

प्रेमा मृदूपकरणो मृदुलोऽपि चित्र-
मात्माकृतिं लिखति वज्रकठोरभित्तौ।
स्पृष्टोऽथवा कृतिकलाधरपाणिनाऽयं
ग्रावाऽपि पुष्पमृदुतामुररीकरोति।।[५६]

आश्चर्य की बात है, प्रेम तो कोमल होता है तथा प्रेम उपकरण (प्रेम उपहार) भी मृदुल ही होते हैं, फिर भी प्रेम ने आत्मछवि को वज्र के समान कठोर भित्ति पर अंकित किया। अथवा यह कहे कि अमर कलाकार के हाथ से स्पर्श हो जाने के कारण पत्थर भी कुसुम-कोमल हो गया, नहीं तो पत्थर में ऐसा सुकोमल भाव किस प्रकार व्यञ्जित हो पाता।

यह भी देखें–

जगदरेणु नभोऽपघनं ततं सविनया सरितोऽच्छपयः सरः।
सकलमा खलभूरपि साम्प्रतं सकमला कमलाकरपद्धतिः।।[५७]

शरत् का वैभव बड़ा विस्मयकारी है। संसार में कहीं धूल का पता भी नहीं, आकाश अब अत्यन्त निर्मल, मेघरहित, अतः विस्तृत प्रतीत हो रहा है। नदियों की उद्दाम चपलता विलीन हो गयी अब वे सर्वथा अपनी सीमा में मर्यादित विनयवती दीख पड़ती हैं। तालाबों का जल भी स्वच्छ निर्मल हो गया। खलिहान अन्न से पल पूरा है और सरोवरों में शोभा, अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है।

यह भी देखें–

युवा सुशीलो नवराष्ट्रपद्मभूरजस्तवर्धिष्णुमहत्वमण्डितः।
स्वदारनिर्व्याजमनास्तथाप्ययं सुविस्मिताः पौरमृगीदृशो जगुः।।[५८]

प्रसङ्ग तब का है जब 'शिवाजी' आगरा के राजदरबार में जा रहे थे तब अत्यन्त विस्मित होकर नगर की मृगनयनी युवतियों ने कहा–

ये युवक हैं, शीलवान् हैं, नये राष्ट्र के निर्माता हैं, निरन्तर बढ़ते हुए महत्त्व से विभूषित हैं, फिर भी यह केवल अपनी ही पत्नियों में स्नेह रखते हैं। (नगर की महिलाएँ विस्मित हैं कि अनेक मोहक गुणों से यशस्वी यह युवक अन्य सुन्दरियों में आमोद-प्रमोद, विलासकेलि के लिए आकृष्ट क्यों नहीं होता?)

यह भी देखें–

समुत्थितो लब्धवरो यथाऽभितो ददर्श कान्तारमसौ न वादिनम्।
सुविस्मितस्तल्लघु दृष्टवान् पदं महामृगावासनिसर्गनिर्मितम्।।[५९]

प्रसङ्ग तब का है जब शिवाजी अपने गुरु समर्थ बाबा रामदास के उदर कष्ट मुक्ति हेतु बघिनी का दूध लेने जङ्गल गये हैं वहाँ उन्हें एक मुनि दिखायी दिये। शिवाजी ने उनको दण्डवत किया, जब मुनि के चरणों से शिवराज उठे, तब शिवाजी को ऐसा लगा मानों उन्हें वरदान मिला है। उठने पर उन्होंने भयानक जङ्गल के चारों ओर देखा किन्तु मुनि कहीं नहीं दिखाई दिये, और अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर उन्होंने उस स्थान (जंगल) को देखा जिसे सृष्टिकर्ता ने सहज ही भयङ्कर वनचारी जीवों के निवास के लिए ही निर्मित किया हो।

यह भी देखें–

शशाम वृष्टिर्विरराम कम्पनो दिशः प्रसेदुर्विधुरम्बरं श्रितः।
तमोव्यपायोऽपगतोऽसदर्थवत् परीक्षितानां सहजा हि सम्पदः।।[६०]

और फिर एक विचित्र बात हुई। मूसलाधार वर्षा रुक गयी। आंधी तूफान थम गया। दिशाओं से काला मेघ छट गया। वे स्वच्छ और प्रसन्न हो गयी। चन्द्रमा आकाश में प्रकाशित हो गया। सचमुच जो जीवन की परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं उनके लिए सारी मनोवाञ्छित सम्पत्तियाँ सुलभ हो जाती हैं।

यह भी देखें–

अये किमेतद् गुरुविग्रहे कथं मुनिर्वनस्थः स वनेश्वरी च सा।
इति स्थिरं यावदसौ व्यलोकयद् ददर्श तावत् पुरतः स्थितं गुरुम्।।[६१]

(वीर शिवाजी बाघ का दूध लेकर आश्रम आ गये) तब तक सहसा शिवाजी ने कुछ चमत्कार देखा और बोल पड़े 'अरे यह क्या' गुरुदेव के शरीर में जङ्गल के महात्मा कैसे दिखायी पड़ रहे है! साथ ही वह दूध देने वाली सिंहिनी भी स्पष्ट दिखायी पड़ रही है। ऐसा कहकर जब उन्होंने ध्यान से देखा तो समर्थ महाराज को अपने सम्मुख उपस्थित पाया।

उपर्युक्त उदाहरणों से सहृदय सामाजिक में अद्भुत रस की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में अद्भुत रस के श्लोक भी अपना स्थान रखते हैं।

(९) शान्त रस

''निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।''[६२]

शान्त रस का स्थायिभाव 'निर्वेद' है। इसे 'शम' भी कहते हैं। 'शम' या 'निर्वेद' का अभिप्राय है– वैराग्यदशा में आत्मरति से होने वाला आनन्द है। देखें–

शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः।।
कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवतः।
अनित्यत्वादिनाऽशेषवस्तुनिःसारता तु या।।
परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते।
पुण्याश्रमहरिक्षेत्रती- र्थरम्यवनादयः।।
महापुरुषसङ्गाद्यास्त- स्योद्दीपनरुपिणः।
रोमाञ्चाद्याश्चाऽनुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः।।
निर्वेदहर्षस्मरण- मतिभूतदयादयः।[६३]

मिथ्यारूप से भाव्यमान जगत् ही शान्त रस का आलम्बन है, पवित्र आश्रम, तीर्थ महापुरुष सङ्ग आदि इसके उद्दीपन हैं, रोमाञ्च आदि अनुभाव हैं तथा स्मृति, मति, जीवदया आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं। क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य से इसके उदाहरण को देखें–

व्यपेतकामा विमलाम्बरावृता विधेयवर्त्माऽपि फलोत्सवास्पृहा।
प्रशान्तचेताः करुणापयस्विनी वपुष्मतीवार्यकुलाधिदेवता।।[६४]

श्वेतवसना माँ जीजाबाई सांसारिक कामनाओं, प्रपञ्चों से मुक्त थीं। कर्त्तव्य-बुद्धि से कर्म करती थीं; किन्तु फलागम में उनकी उत्सुकता नहीं थी। वे करुणा की नदी थीं। उनका चित्त शान्त था। ऐसा प्रतीत होता था कि स्वयं आर्यकुल की अधिष्ठात्री देवी सशरीर उपस्थित हैं। वे निष्काम कर्मयोगिनी थीं, उनका स्वभाव उदार था।

यह भी देखें–

सुतद्वितीयाऽपि विविक्तसेविनी निरन्तरोत्साहवती जनोदये।
निसर्गधर्माचरणाऽपि तत्प्रसूर्मनो दधौ विष्णुपदेऽधिकाधिकम्।।[६५]

पुत्र शिवाजी के साथ रहती हुई भी वे एकान्तसेविनी थीं। जनकल्याण में उनकी स्वाभाविक रुचि थी। उनका सम्पूर्ण जीवन ही धर्म के आचरण से भरपूर था, तथापि वे भगवान् विष्णु के पावन चरणों में अपने मन को स्थिर करती रहती थीं।

यह भी देखें–

विदूरमन्याग्रहबद्धमानसे धवे नियम्यात्मशुचं मनस्विनी।
बबन्ध रागातिशयं रमाधवे निगूढवर्त्मा हि हरेरनुग्रहः।।[६६]

पति को अन्य सपत्नियों में आसक्त जानकर, दूर रहती हुई मनस्विनी माँ जीजाबाई लक्ष्मीपति भगवान् के चरणों को अपने अनुराग से बांध लिया। उन्होंने अपनी चिन्ता तथा निर्वेद को शान्त कर लिया। ईश्वर की कृपा विचित्र होती है। अव्यक्त रूप से प्रभु कृपा करते हैं। जीजाबाई को यदि पतिप्रेम का अभीष्ट प्रसाद न मिला तो प्रभुप्रेम का द्वार प्रशस्त हो गया। उपर्युक्त श्लोकों से सहृदय सामाजिक में 'शम' प्रकृतिक 'शान्त रस' की अभिव्यक्ति होती है।

समीक्षा– क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में कवि ने नव रसों का आस्वादन कराया है। नवरसों में कुछ रस परस्पर विरोधी रस है, साहित्यदर्पण (६.३०-३१) में रस विरोध का विशद् विवेचन भी किया गया है। रसों का विरोध तीन प्रकार का है– १. आलम्बनैक्य-विरोध, २. आश्रयैक्य-विरोध, ३. नैरन्तर्य। उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है–

१. (क) वीर एवं शृङ्गार रस का परस्पर विरोध है,
(ख) सम्भोग शृङ्गार एवं हास्य रस का तथा रौद्र एवं वीभत्स रस का परस्पर विरोध है,
(ग) विप्रलम्भ का वीर; करुण, रौद्र आदि रस के साथ आलम्बनैक्य विरोध है।

२. वीर और भयानक रस का आश्रयैक्य-विरोध है तथा आलम्बनैक्य विरोध भी है।

३. एवं शान्त एवं शृङ्गार रस का आलम्बनैक्य विरोध होने के साथ-साथ नैरन्तर्य विरोध भी है। कवि ने विश्वनाथ कविराज की उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए श्लोक रचना की है जिससे रस विरोध होने से महाकाव्य दोषयुक्त न हो।

आचार्य मम्मट ने भी रस विरोध परिहार के प्रसङ्ग में लिखा है–

आश्रयैक्ये विरुद्धो यः स कार्यो भिन्नसंश्रयः।
रसान्तरेणान्तरितो नैरन्तर्येण यो रसः।।[६७]

अर्थात् जो रस आश्रय (आधार तथा आलम्बन) के एक होने के कारण विरुद्ध प्रतीत होता हो उसका आश्रय में सन्निवेश कर देना चाहिए तथा जो रस अव्यवधान के कारण विरुद्ध प्रतीत होता हो उसे किसी अन्य रस से व्यवहित कर देना चाहिए।

मम्मट ने 'वीर' एवं 'भयानक' का आश्रयैक्य भेद माना है इस प्रकार वे (नायक आदि के) प्रतिपक्षी रूप आश्रय में भयानक का सन्निवेश करने की बात कहते हैं। शान्त और शृङ्गार का अव्यवहित रूप में रहने से विरोध है, अतः इनके मध्य किसी अन्य रस का वर्णन करना उचित नहीं है। उक्त बातों को त्रिपाठी जी भी स्वीकार करते है।

मम्मट दो प्रकार से रस विरोध को काव्यप्रकाश में प्रस्तुत करते हैं–

१. दैशिक

२. कालिक।

१. दैशिक विरोध– यह आलम्बनैक्य विरोध एवम् आश्रयैक्य विरोध के भेद से दो प्रकार का होता है। रति आदि भावों की उत्पत्ति में जो निमित्त है, वह आलम्बन विभाव कहलाता है और जहाँ किसी

भाव की उत्पत्ति होती है वह आश्रय कहलाता है। जब एक ही आश्रय में या एक ही आलम्बन विषयक दो रस नहीं हो सकते हैं तो उनका 'आश्रयैक्यनिमित्तक' विरोध होता है; यथा– वीर तथा भयानक में। जिस निमित्त से भयानक की उत्पत्ति होती है उससे उसी समय वीरभाव की उत्पत्ति नहीं होती (आलम्बनैक्य विरोध)। ठीक इसी तरह जिस आश्रय में वीर भाव जाग्रत होता है उसमें उसी समय 'भय' का उद्भव नहीं होता (आश्रयैक्य विरोध)। इस विरोध को दूर करने के लिए जिस नायक आदि में वीर रस का वर्णन किया जा रहा है, उसके पतिपक्षी में भयानक रस का वर्णन करना चाहिए। इससे नायकगत वीर रस का परिपोष भी होगा। त्रिपाठी जी ने **क्षत्रपतिचरितम्** महाकाव्य में उपर्युक्त बातों का ध्यान दिया है। उन्होंने शिवाजी के सन्दर्भ वीर रस तथा उनके विरोधी (अफजल खां, शाइस्ता खां) के सन्दर्भ में भयानक रस का वर्णन किया है।

२. कालिक विरोध– जो रस एक साथ बिना किसी व्यवधान के नहीं रह सकते, उनका 'नैरन्तर्यनिमित्तक' विरोध होता है; जैसे शान्त और शृङ्गार का। एक ही व्यक्ति के निमित्त एक ही समय में शान्त तथा शृङ्गार के भाव का उदय नहीं होता उनमें परस्पर विरोध न हो इसलिए दोनों के बीच में किसी अन्य रस का वर्णन करना चाहिए, जैसा कि कवि 'उमाङ्कर शर्मा' जी ने **क्षत्रपतिचरितम्** महाकाव्य में किया भी है। कवि ने माता 'जीजाबाई' के सन्दर्भ में शान्त रस का वर्णन किया है, यह वर्णन महाकाव्य में 'तृतीय सर्ग' में प्राप्त होता है जबकि कवि ने शृङ्गार रस का वर्णन षष्ठ सर्ग में षड्ऋतु वर्णन प्रसङ्ग में किसी मानिनी नायिका के सन्दर्भ में किया है। इस प्रकार इन दोनों रसों के मध्य अत्यधिक व्यवधान आया है। चतुर्थ तथा पञ्चम सर्ग में कवि ने इन दोनों रसों के अतिरिक्त अन्य रसों का भी वर्णन किया है।

आचार्य विश्वनाथ जी ने साहित्यदर्पण[६८] में रस विरोध का विशद विवेचन किया है वे वीर एवं शृङ्गार रस को परस्पर विरोधी रस मानते हैं यद्यपि क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में वीररस प्रधान है एवं कवि ने इसमें नव रसों की धारा को प्रवाहित किया है; किन्तु उन्होंने यह ध्यान रखा है कि वीर एवं शृङ्गार का आश्रय एक समय में एक ही व्यक्ति न हो अतः उन्होंने शिवाजी के सन्दर्भ में वीर रस

तथा त्रयोदश सर्ग में आगरा वर्णन क्रम में वेश्याओं के वर्णन में तथा षड्ऋतुवर्णन क्रम (षष्ठ सर्ग) में मानिनी नायिका के सन्दर्भ में शृङ्गार रस का वर्णन किया है इस प्रकार आश्रय भेद होने से रस दोष उत्पन्न नहीं होता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में रस वर्णन शास्त्रगत दृष्टि से भी निर्दुष्ट है।

(ख) छन्द

श्री उमाशङ्कर शर्मा 'त्रिपाठी' जी ने क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य की रचना विविध छन्दों में की है। इसे निम्न क्रम से देखा जा सकता है–

प्रथम सर्ग– प्रथम सर्ग में कवि ने अनुष्टुप छन्द में श्लोकों की रचना की है। प्रथम अध्याय के निम्नलिखित श्लोक में देखें–

श्रेयसामेकभू-ज्योति- रमृतालोक- नन्दिनी।
वाचां जयतु सा देवी यस्यां विश्वं प्रसूयते।।[६९]

अनुष्टुप छन्द का लक्षण*

पंचमं लघु सर्वत्र, सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
गुरु षष्ठं च जानीयात्, शेषेष्वनियमो मतः।।[७०]

अर्थात् वक्त्र छन्द के सभी चरणों में पांचवा अक्षर लघु हो, द्वितीय और चतुर्थ चरणों में सातवाँ अक्षर लघु और छठा अक्षर गुरु हो तो अनुष्टुप छन्द होता है।

उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये गये उपर्युक्त श्लोक में 'अनुष्टुप' छन्द का लक्षण घटित होता है। स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है। प्रथम सर्ग के सभी श्लोक अनुष्टुप छन्द में हैं; किन्तु महाकाव्य के लक्षण के अनुसार (अन्तिम छन्द बदल जाता है) इस सर्ग का अन्तिम छन्द बदल गया है इस प्रकार अन्तिम श्लोक 'स्रग्धरा' छन्द में है। उदाहरण–

ब्रह्माणं याऽतिशेते नियमपरवशं सर्वतन्त्रस्वतन्त्रा।
आनन्दस्यन्दसर्गा निकृतिघने द्वन्द्वजुष्टे भवेऽपि।।
प्रोद्यद्भावानुबन्धोल्लसित नवरसाम्भोधि लावण्यलक्ष्मीः।
ज्ञानाधिष्ठानभूमिः शिवमशिवहरा भारती सा वृणोतु।।[७१]

स्रग्धरा छन्द का लक्षण

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुतां स्रग्धरा कीर्तितेयम्।।[७२]

अर्थात् मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण हों, तथा तीन बार सात-सात अक्षरों पर यति हो, तो उसे 'स्रग्धरा' नामक वृत्त कहते हैं।

प्रस्तुत उदाहरण में ये लक्षण घटित होते हैं इस प्रकार स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक में स्रग्धरा छन्द है।

द्वितीय सर्ग– कवि ने द्वितीय सर्ग का प्रारम्भ निम्नलिखित श्लोकों के साथ किया है–

शैलेश्वरो यस्य शिरः समुन्नतं गाम्भीर्यमम्भोधिरनन्तरत्नभूः।
दाक्षिण्यपुण्योपचितैव सन्ततिस्तत् कीर्त्यते देशवरेषु भारतम्।।[७३]

उपर्युक्त श्लोक 'उपजाति' छन्द में है एवम् इस सर्ग के अन्य श्लोक भी इसी छन्द में हैं।

उपजाति छन्द का लक्षण

अनन्तरोदीरित- लक्ष्मभाजौ।
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु।
वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।[७४]

अर्थात् इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों जहाँ पर सम्मिलित हो जाते हैं वहाँ 'उपजाति' छन्द होता है। इस प्रकार दो-दो छन्दों के भी सङ्कर को 'उपजाति' कहते हैं।

प्रस्तुत उदाहरण में स्पष्टतया ये लक्षण घटित होते हैं। महाकाव्य में द्वितीय सर्ग के अन्य सभी श्लोक भी इसी छन्द में हैं; किन्तु १८५ संख्या का निम्नलिखित श्लोक 'अनुष्टुप' छन्द में है–

सम्भ्रमेऽपि यमाशङ्क्य गह्वरान्तर्हितं तमः।
चलदित्ययशो धत्ते तं नुमस्तिमिरान्तकम्।।[७५]

महाकाव्य के लक्षण में लिखा हुआ है कि किसी सर्ग में विविध छन्द भी हो सकते हैं इसी बात का अनुपालन करते हुए कवि ने द्वितीय सर्ग में उपर्युक्त श्लोक 'अनुष्टुप' छन्द में लिखा है; किन्तु इसके पश्चात् आने वाली श्लोक द्वितीय सर्ग का जो अन्तिम श्लोक है वह

'स्रग्धरा' छन्द में है, इसे देखें–

गाम्भीर्येऽम्भोधिकल्पो हिमगिरिरुदितो योऽपरो मानमाने।
गङ्गाम्भः स्वच्छधारः प्रवहति सततं सिद्धये यद्विवेकः।।
यस्यर्तूनां समाजः श्रयति तरूलतासस्यसौभाग्यलक्ष्मीम्।
पुण्यात्तत्र प्रसूतिर्विधिरचिते भारते भारतेऽत्र।।[७६]

इस प्रकार कवि ने द्वितीय सर्ग में तीन छन्दों में श्लोकों की रचना की है।

तृतीय सर्ग– तृतीय सर्ग का आरम्भ निम्नलिखित श्लोक के साथ होता है–

विविक्तभूः सिद्धिपथेऽनुगच्छतामशङ्कितारातिसमीरणार्गलः।
प्रजाद्विजानां शरणं गतिः सतां प्रसन्नतोयोल्लसितापगाजनिः।।[७७]

उपर्युक्त श्लोक 'वंशस्थ' छन्द में है।

वंशस्थ छन्द का लक्षण

वदन्ति वंशस्थबिलं जतौ जरौ।।[७८]

अर्थात् जिस छन्द में क्रम से जगण तगण, जगण और रगण होते हैं उसे 'वंशस्थबिल' छन्द कहते है। प्रस्तुत उदाहरण में ये लक्षण घटित होते हैं अतः स्पष्ट है इस श्लोक में 'वंशस्थ' छन्द है। तृतीय सर्ग के प्रायः सभी श्लोक 'वंशस्थ' छन्द में ही है। इस सर्ग का निम्नलिखित अन्तिम श्लोक 'स्रग्धरा' छन्द में है–

भूरन्ध्रे योऽवरूद्धः क्वचिदुपरि हठाच्छैलभारावसन्नः।
कृच्छान्नित्यप्रयत्नक्षुमित- गिरिमनस्यूतसूक्ष्मप्ररोहः।
लब्धारम्भः कथञ्चिद् गगनसखिभृगोः पातितश्चूर्णितात्मा।
वारां सोऽसौ प्रवाहो नद इति कथितो वर्धताम् लोकबन्धुः।।[७९]

इस प्रकार तृतीय सर्ग में तीन छन्दों में श्लोक रचे गये हैं।

चतुर्थ सर्ग– चतुर्थ सर्ग का प्रारम्भ 'उपजाति' छन्द के साथ हुआ है–

अथोपकूलं कुललोकपालं देवालये दर्भकटे शयानम्।
चारित्र्यनिष्ठात्मधनं सिषेवे श्रद्धेव निद्रा वशिनं विवेकम्।।[८०]

इस सर्ग के प्रायः सभी श्लोक इसी छन्द में हैं। इस सर्ग का अन्तिम श्लोक 'वसन्ततिलका' छन्द में है–

याऽनागतप्रणयिनी तदुपक्रमाङ्कास्वान्तस्समुल्लसितमेव विधौ युनक्ति।
सा भावना जयतु विश्वजनीनवर्त्मा निर्व्याजरक्षितविवेक मनोरथश्रीः।।[८१]

वसन्ततिलका छन्द का लक्षण

ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः।।[८२]

अर्थात् जिसमें तगण, भगण, जगण पुनः जगण और अन्त में दो गुरु हों, उस छन्द को 'वसन्ततिलका' छन्द कहते हैं।

उपर्युक्त उदाहरण में ये लक्षण घटित होते हैं अतः स्पष्ट है कि प्रस्तुत श्लोक वसन्ततिलका छन्द में रचित है। प्रस्तुत अध्याय में २ छन्द में कवि ने श्लोकों की रचना की है।

पञ्चम सर्ग– कवि ने पाँचवें सर्ग का आरम्भ 'पुष्पिताग्रा' छन्द के निम्न श्लोक के साथ किया है–

प्रतिपलमधुरै र्विहङ्गरावैररूण-शिख-स्तन-बोधितैर्वनश्रीः।
किसलयदलवामैश्च कम्रैरभिमतबोधमवाप नन्दितात्मा।।[८३]

पुष्पिताग्रा छन्द का लक्षण

अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।[८४]

अर्थात् प्रथम तथा तृतीय पाद में दो नगण तथा एक रगण के अनन्तर यगण होने पर तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद में नगण, जगण, जगण, रगण तथा एक गुरु होने से 'पुष्पिताग्रा' नामक छन्द होता है। प्रस्तुत श्लोक में 'पुष्पिताग्रा' छन्द का लक्षण स्पष्ट रूप से घटित होता है अतः स्पष्ट है कि प्रस्तुत श्लोक 'पुष्पिताग्रा' छन्द में है। इस सर्ग में प्रायः अन्य सभी श्लोक भी इसी छन्द में हैं। अन्तिम श्लोक 'स्रग्धरा' छन्द में है–

श्च्योतद्दानाम्बुलुब्धान् मलिनमधुलिहो नन्दयन् कर्णमूले।
सोऽसौ कुम्भीन्द्रकुम्भोत्कदनपटुमिभो याति हन्तुं मृगेन्द्रम्।।[८५]

षष्ठ सर्ग– कवि ने 'द्रुतविलम्बित' छन्द में 'षड्ऋतुवर्णन' किया है। इस सर्ग के प्रायः सभी श्लोक इसी छन्द में हैं। महाकाव्य से 'द्रुतविलम्बित' छन्द के इस श्लोक को देखें–

अथ सपत्नवलं समवेक्षितुं कलयितुञ्च रहस्यमनोरथम्।
शिवचराश्चरितारिविडम्बनाः सविनयं विविशुः शिविरं द्विपः।।[८६]

द्रुतविलम्बित छन्द का लक्षण

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।[८७]

अर्थात् जिस छन्द के एक पाद में क्रम से नगण, दो भगण और रगण होते हैं उसे 'द्रुतविलम्बित' छन्द कहते हैं।

उपर्युक्त श्लोक में 'द्रुतविलम्बित' छन्द का लक्षण स्पष्ट रूप से घटित हो रहा है अतः स्पष्ट है कि प्रस्तुत श्लोक में 'द्रुतविलम्बित' छन्द है। इस सर्ग के ८५ संख्या के निम्नलिखित श्लोक 'वसन्ततिलका' छन्द में है–

इत्थं कलोद्भवचमत्कृतशस्त्रिलोकं विस्रम्भवैभवधनाः शिवचार मुख्याः।
गूढं निरीक्ष्य निखिलं समधीत्य मर्म चेतो बबन्धुरभिनन्दितुभार्यबन्धुम्।।[८८]

एवं सर्गान्त 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द के इस श्लोक के साथ हुआ है–

पूर्वं ज्ञातगदस्वभावगतयः शारीरकान्तर्विदो
व्यक्ताव्यक्तविकारबोधपरमाः दृष्टानुमानप्रथाः।
ते धन्या अगदङ्करा: सुभिषजो ये वै निदानाध्वना
कृच्छ्रेऽपि प्रभवन्ति भेषजगुणैर्रोगे यशोजीविताः।।[८९]

शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण

सूर्याश्वैर्यदि मह सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।[९०]

अर्थात् जिसमें मगण, सगण, जगण, सगण और दो तगण और अन्त में एक गुरु हो और बारह तथा सात पर यति हो, वह शार्दूलविक्रीडित नामक छन्द कहलाता है।

उपर्युक्त लक्षण स्पष्टतया प्रस्तुत श्लोक में घटित होता है। अतः स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक में 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द है। प्रस्तुत सर्ग में तीन छन्दों में श्लोकों की रचना की गयी है।

सप्तम सर्ग– सप्तम सर्ग के प्रायः सभी श्लोक 'उपजाति' छन्द में हैं। उदाहरणस्वरूप निम्न श्लोक को देखें–

अथ श्रियो मण्डयिता यशस्वी तमन्तरायं परिचिन्त्य शत्रुम्।
सभासदो भासदमोघमन्त्रान् समाजुहावाऽवसराभियोगे।।[९१]

प्रस्तुत सर्ग का अन्तिम श्लोक 'वसन्ततिलका' छन्द में है–

इत्थं श्रुतातिथिमुखोदितलोकधर्मो राजा स्वयत्नमभिषिक्तमिवाभिनन्द्य।
विप्रं प्रणम्य तदनुग्रहभावितात्मा प्रस्तोतुमुद्यतविधिं भवनाज्जगाम।।[९२]

अष्टम सर्ग– अष्टम सर्ग का आरम्भ 'वंशस्थ' छन्द के निम्नलिखित श्लोक के साथ हुआ है–

अथ द्विजाच्चारविचारवर्तिनो निशम्य वैरिच्छलगर्भ चेष्टितम्।
शिवोऽपि कार्ष्ण्यव्यवसायवर्त्मना मनो दधौ शम्बरपाशभेदने।।[९३]

इस सर्ग के प्रायः सभी श्लोक वंशस्थ छन्द में हैं। **क्षत्रपतिचरितम्** पुस्तक इस अङ्क के अन्तिम श्लोक तक फटी हुई प्राप्त होने के कारण अन्तिम छन्द उपलब्ध नहीं है।

नवम सर्ग– नवम सर्ग के प्रायः सभी श्लोक 'प्रमाणिका' छन्द में पाये जाते हैं। सर्ग के इस श्लोक को देखें–

मृगेन्द्र शावको मृगव्रजं प्रभञ्जनोऽम्बुदं
प्रभारथाधिरूढ़बाल- तिग्मदीधितिस्तमः।
स्वलक्ष्यमाशुगो गरुत्मदन्वयो यथोरगं
बलाधिपः सपत्नमण्डलं व्यलोकयत्तथा।।[९४]

उपर्युक्त श्लोक प्रमाणिका छन्द का उदाहरण है।

प्रमाणिका छन्द का लक्षण

प्रमाणिका जरौ लगौ।।[९५]

अर्थात् जिस छन्द के प्रथम पाद में क्रमशः, जगण, रगण, लघु और गुरु वर्ण होते हैं, वह 'प्रमाणिका' वृत्त कहलाता है। प्रस्तुत श्लोक में यह लक्षण घटित होता है। नवम सर्ग के ७८ संख्या का श्लोक वसन्ततिलका छन्द में है, जो निम्नलिखित है–

इत्थं नृपे श्रयति दुर्गमनापदं ते शेषा बलाधिपममर्त्ययशोऽभिरामम्।
आदाय सत्वरपदं रिपुदुर्गमार्गैः क्षेत्रं जहुर्गतभियोऽर्जितकीर्तिधन्याः।।[९६]

एवं इस सर्ग का अन्तिम निम्नलिखित श्लोक 'स्रग्धरा' छन्द में है–

बन्धे मोक्षेऽपशङ्का विविधबलमहिताः सिद्धवर्त्मानुशिष्टा
आदेशार्हप्रयत्नास्तृणमिव सहठं जीवितं ये त्यजन्ति।
ते येषामाज्ञनेयाः सततमनुचरा मेदिनीपालकानां
तेषां रामायणीबोल्लसति जयकथा तापपाथोधिसेतुः।।[९७]

प्रस्तुत सर्ग में कवि ने तीन छन्दों में श्लोकों की रचना की है।

दशम सर्ग– दशम सर्ग में 'मालभारणी' छन्द है। अभिज्ञानशाकुन्तल में कालिदास ने इस वृत्त में तृतीय अङ्क की २१, २२ तथा सातवें अङ्क २०, २१ श्लोकों की रचना की है।[९८] मालभारणी छन्द में कुल चार श्लोक कालिदास विरचित है। महाकवि श्री उमाशङ्कर शर्मा 'त्रिपाठी' जी ने भी कालिदास का अनुकरण करते हुए मालभारणी छन्द में श्लोकों की रचना की है। 'मालभारणी' छन्द को गङ्गादास की छन्दोमञ्जरी में 'कालभारणी' नाम से जाना जाता है। महाकाव्य के दशम सर्ग के प्रथम श्लोक को 'मालभारणी' छन्द के उदाहरणस्वरूप देखें–

अथ बन्धुकुलं कुलाभिमानी वसुमत्या विवरेषु शाययित्वा।
अवरङ्गनृपोऽपनीतभीतिः कुटिलां याम्यदिशं दिदृक्षमाणः।।[९९]

मालभारणी (कालभारणी) छन्द का लक्षण

विषमे ससजा यदा गुरु चेत्, सभरायेन तुकालभारणीयम्।[१००]

अर्थात् यदि विषम पाद में दो सगण, एक जगण तथा दो गुरु हों और सम पाद में सगण, भगण, रगण तथा यगण हों, तो 'कालभारणी' नामक छन्द होता है।

उपर्युक्त श्लोक में यह लक्षण घटित होते हैं अतः स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक 'कालभारणी' छन्द में रचित है। इस सर्ग के प्रायः सभी श्लोक 'कालभारणी' छन्द में रचित हैं। सर्गान्त में निम्नलिखित श्लोक 'वसन्ततिलका' छन्द में है–

तामित्थमाहवरमां नृपतिर्विनेतुं
प्राज्यं यदर्पयदुदारवलर्द्धियोगम्।
आनन्त्यनिघ्नमनुरागवती निनाय
सा तत् प्रियाय रुचियौतुकमेव सर्वम्।।[१०१]

एकादश सर्ग– एकादश सर्ग का आरम्भ 'वंशस्थ' छन्द के निम्नलिखित श्लोक के साथ किया गया है–

अथ श्रिया मुक्तचलस्वभावया सनिर्दयश्लेषनिखातमुद्रया।
निषेवितो भारतभाग्यमण्डनः शिवोऽश्रयन्नीतिमनीतिदर्पभित्।।[१०२]

इस सर्ग के प्रायः सभी श्लोक इसी छन्द में हैं। सर्ग का अन्तिम, निम्नलिखित श्लोक 'वसन्ततिलका' छन्द में है–

इत्थं स्वभावपरिषेवितसर्वजीवो राजा परीक्षितगुणोपि विनीतचेताः।
नालं बभूव जनकौतुकहर्षवर्षं सोढुं श्रुतस्वचरितस्तवभारखिन्नः।।[१०३]

द्वादश सर्ग– द्वादश सर्ग का प्रारम्भ 'अनुष्टुप' छन्द के साथ हुआ है। निम्नलिखित श्लोक को देखें–

अभ्रंलिहोर्मिसम्पातघातैरिव शिवक्रमैः।
दिल्लीदक्षिणराज्यश्रीर्नौरिवाब्धौ व्यपद्यत।।[१०४]

इस सर्ग के प्रायः सभी श्लोक 'अनुष्टुप' छन्द में है। एवम् इस सर्ग का अन्तिम श्लोक 'वसन्ततिलका' छन्द में है–

इत्थं प्रविश्य नगरीमवरङ्गजुष्टां
मातुर्गुरोश्च चरणौ हृदये निधाय।
शौरिर्यथा कुटिलनीतिभृतः सभायाः
प्रत्यैक्षतेष्टसमयं शिवराजभूपः।।[१०५]

त्रयोदश सर्ग– त्रयोदश सर्ग का आरम्भ 'वसन्ततिलका' छन्द के साथ हुआ है, निम्नलिखित श्लोक को देखें–

पूज्यातिथेः पथपरिक्लमनोदनाय
रात्रिर्निषेवितुमनाः स्वयमेव तावत्।
सन्ध्यामुखेन नवरागविजृम्भितेन
स्वोपस्थितिं कथयतिस्म नवानुभावाम्।।[१०६]

त्रयोदश सर्ग के प्रायः सभी श्लोक इसी छन्द में हैं। सर्गान्त का निम्नलिखित श्लोक 'स्रग्धरा' छन्द में है–

ग्रीष्मं निर्धूय धात्रीं हरिततृणजलां मेघमाला विधत्ते
रात्रिं घोरान्धकारां प्रभवति विषमां तिग्मरश्मिर्मयूखैः।
द्वन्द्वोदन्तेऽपि लोके निकृतिनिरवधिं दुर्दशां ये विभेतुं
नात्मोद्योगं स्वसिद्ध्यै विदधति कृपणास्तेऽपि किं प्राणवन्तः।।[१०७]

चतुर्दश सर्ग– इस सर्ग का प्रारम्भ 'वंशस्थ' छन्द के निम्नलिखित श्लोक के साथ हुआ है–

अथैकचक्रेऽपि रथे धृतस्थितिस्तमस्तदुत्पादितसंशयैः सह।
सहस्ररश्मिर्विनिकृत्य तेजसा न्ययोजयच्छ्लाघ्यसमुद्यमे भुवम्।।[१०८]

इस सर्ग के प्रायः सभी श्लोक वंशस्थ छन्द में हैं। सर्ग का अन्तिम श्लोक 'स्रग्धरा' छन्द में हैं। देखें–

मुक्तोबन्धाद्विहङ्गः प्रतिगमनमुखं सञ्चरञ्शङ्कितोऽपि।
देशं गच्छन् प्रवासाद् दिशि दिशि सुचिरात् प्रक्षिपन्नादिभारम्।
मृत्योर्हस्ताद् विनष्टः प्रियजननयनं नन्दयन्नश्रुसिक्तं
सोऽसौ जानाति नूनं क्षणमिव सुकृती जीवितं जीवितस्य।।[१०९]

पञ्चदश सर्ग– पञ्चदश सर्ग का आरम्भ 'उपजाति' छन्द के निम्नलिखित श्लोक के साथ हुआ है–

जटाः पिशङ्गीः परिलम्बि कूर्चं स्थूलं कषायाम्बरमादधानः।
शिखीव भस्मान्तरितात्मवृत्तिर्भावस्थिरोऽभादधिपः प्रजानाम्।।[११०]

इस सर्ग के प्रायः सभी श्लोक 'उपजाति' छन्द में हैं। इस सर्ग का अन्तिम श्लोक 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द में है। यह निम्नलिखित है–

दम्भोद्योगमपास्य कौशलबलान्नक्रस्य दिल्लीपते-
र्दृष्टा निस्त्रपडुण्डुभांश्च नृपतीन् दिल्लीदयाजीवितान्।
मार्गे गूढमवेक्ष्य सैन्यरचनां देशान् स्वभावं स्थितिं
भूयोऽवाप्य निरापदं जनिभुवं सूनुञ्च रेजे नृपः।।[१११]

षोडश सर्ग– इस सर्ग का आरम्भ 'रथोद्धता' नामक छन्द के साथ हुआ है–

देहलीशमवधूय लीलया साहिसूनुरथसूनुविक्रमः।
वर्धयन् बलमरातिसूदनं निश्चलोऽप्यरिमनांस्यचालयत्।।[११२]

रथोद्धता छन्द का लक्षण

रात् परैर्नरलगै रथोद्धता।[११३]

अर्थात् जिस छन्द के एक पाद में क्रमशः रगण से परे नगण, रगण, एक लघु और एक गुरु होते हैं, वह 'रथोद्धता' नामक छन्द है।

प्रस्तुत लक्षण उपर्युक्त श्लोक में घटित होता है। स्पष्ट है उपर्युक्त श्लोक में 'रथोद्धता' छन्द हैं। इस सर्ग के प्रायः सभी श्लोक 'रथोद्धता'छन्द में है। सर्ग का अन्तिम श्लोक 'मन्दाक्रान्ता' छन्द में है–

मात्रे राजा प्रथितमहसे कोण्डनां तां समर्प्य
जन्मावन्यै हृदयमिव तं सिंहमित्रञ्च दत्वा।
आर्तो गत्वा प्रियसखिगृहं तज्जनांश्चानुतोष्य
वत्सोद्वाहे जनकपरमोऽरञ्जयत्तत्कुटुम्बम्।।[११४]

मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण

मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।[११५]

अर्थात् यदि मगण, भगण, नगण, दो तगण और अन्त में दो गुरु हों, तो उसे 'मन्दाक्रान्ता' वृत्त कहते हैं। इसमें चार, छः और सात वर्णों पर यति होती है।

उपर्युक्त श्लोक में इस छन्द के सभी लक्षण घटित होते है। स्पष्ट है उपर्युक्त श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द है।

सप्तदश सर्ग– इस सर्ग का आरम्भ 'अनुष्टुप' छन्द के निम्नलिखित श्लोक के साथ हुआ है–

जाजियाधुर्विपन्नानां लोकानां भिन्नचेतसाम्।
मर्माक्रन्दमिदं पत्रं भिक्षते त्वामनुग्रहम्।।[११६]

इस सर्ग का द्वितीय श्लोक 'वंशस्थ' छन्द में है। देखें–

यया विनिश्चित्य तमोऽम्बुधावपि सदर्थमुक्तैव धियावचीयते।
त्रिलोकभर्तुः परलक्ष्मधीरसौ शिवाय लोकस्य महीयतां सदा।।[११७]

इस सर्ग के प्रायः अन्य श्लोक भी 'वंशस्थ' छन्द में है। इस सर्ग का अन्तिम श्लोक 'स्रग्धरा' छन्द में है। देखें–

आद्योद्घोषैर्द्विजानाममृतफलवतां मन्दवातप्रवाहै-
र्व्योम्नाऽन्तर्गर्भधाम्ना यमनियमवतां ब्राह्मपद्यावधानैः।
भूयो भूयोऽपयातुं तिमिरमुपदिशंश्चापि बद्धाग्रहं तद्
यः प्रातर्हन्ति देवः खरशरकिरणैस्तं शिवार्कं नतोऽस्मि।।[११८]

अष्टादश सर्ग– अष्टादश सर्ग का आरम्भ 'उपजाति' छन्द के निम्नलिखित श्लोक के साथ हुआ है–

अथ प्रतीक्षोत्सुकचित्तमर्मा स्वराज्यसङ्कल्पवतां शुष्भाशा।
शिवेऽमरद्रौ द्विजलोकजुष्टे ननन्द लब्धुं द्रुतमिष्टदोहम्।।[११९]

इस सर्ग के प्रायः सभी श्लोक इसी छन्द में है। सर्गान्त में 'स्रग्धरा' छन्द का निम्नलिखित श्लोक आया है–

इत्थं सङ्कल्पमार्गः सततमनुसरन् धैर्यगर्भां श्रियं सः
स्वात्मोत्साहद्वितीयो दधदनुगबलं हृद्यपाथेयमेव।
उत्तीर्याऽऽपद्घनान्तं घनतिमिरमुखान् दैवगर्ताश्च घोरान्
शत्रूच्छ्रायं पदाङ्कैः सहठमपहरन्नारुरोहाद्रिमौलिम्।।[१२०]

एकोनविंश सर्ग– अन्तिम सर्ग का प्रारम्भिक श्लोक 'अनुष्टुप' छन्द में है। देखें–

नित्यसेवाव्रतस्थस्य लोकानिव वनस्पतीन्।
विभ्रतो भूभृतस्तस्य गुरुतामाप लाघवम्।।[१२१]

सर्ग के १-८८ तक के श्लोक प्रायः 'अनुष्टुप' छन्द में पाये जाते हैं। श्लोक ८९ 'मालिनी' छन्द में है। देखें–

जयतु जयतु राजाऽऽसेचनं लोकदृष्टे-
र्जयतु सततसेव्या देवगीर्लोकधात्री।
जयतु जयतु नित्ये मुक्तदास्यः स्वदेशो
जयतु जयतु चेतः सर्वलोकात्मभावम्।।[१२२]

मालिनी छन्द का लक्षण

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।[१२३]

अर्थात् यदि दो नगण, एक मगण, पुनः दो यगण हों तो वह 'मालिनी' छन्द कहलाता है।

उपर्युक्त श्लोक में प्रस्तुत लक्षण घटित हो रहा है। स्पष्ट है कि प्रस्तुत श्लोक 'मालिनी' छन्द में है। १९वें सर्ग के ९० एवं ९१ श्लोक 'स्रग्धरा' छन्द में है, देखें–

१. **यद्गूढ़ं कल्पनाभिर्नवनवविधिना संस्कृतं सम्परीक्ष्य**
शङ्काबाधाभयानामकलितविपदां हेतुमुन्मूल्य यत्नात्।
कृच्छ्रात् सन्देहदोलाविचलितमनसाऽऽरभ्य निर्माणमार्गे
वाग्देवीमन्दिरं तत् कथमपि पुरतो भाति मन्दस्य मेऽपि।।[१२४]

२. **यस्योद्योगा ..... शिवोस्तु।।**[१२५]

समीक्षा– क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य की रचना कवि ने विविध छन्दों में की है। सर्ग के प्रारम्भ से मध्य तक एवं मध्य से अन्त तक के छन्दों को देखा जाय तो स्पष्ट है कि इस महाकाव्य में 'अनुष्टुप' छन्द में १, १२वें सर्ग की रचना हुई है, १७वें सर्ग का पहला श्लोक भी इसी छन्द में है एवं १९वें सर्ग के १ से ८८ संख्या के श्लोक भी इसी छन्द में हैं। 'उपजाति' छन्द में २, ४, ७, १५, १८वें सर्ग की रचना हुई है। 'वंशस्थ' छन्द में ३, ८, ११, १४, १७वें सर्ग की रचना हुई है। 'पुष्पिताग्रा' छन्द में ५वाँ सर्ग निबद्ध है।

'द्रुतविलम्बित' छन्द में छठें सर्ग की रचना हुई है। १२वाँ सर्ग 'वसन्ततिलका' छन्द में है एवं छठे सर्ग का ८५ संख्या का श्लोक, ९वें सर्ग का ७८ संख्या का श्लोक भी 'वसन्ततिलका' छन्द में है। दशम सर्ग में 'मालभारणी' छन्द है। १६वाँ सर्ग 'रथोद्धता' छन्द में है। १९वें सर्ग का ८९ संख्या का श्लोक 'मालिनी' छन्द में है। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोकों को देखा जाय तो महाकाव्य का नियम पालन (अन्तिम श्लोक के छन्द बदल जाते हैं) करते हुए कवि ने छन्दों को बदल दिया है। इसे क्रमशः देखा जा सकता है– १, २, ३, ५, ९, १३, १४, १७, १८, १९ सर्गों का अन्तिम श्लोक 'स्रग्धरा' छन्द में है। ४, ७, १०, ११, १२वें सर्ग का अन्त 'वसन्ततिलका' छन्द के साथ हुआ है। ६, १५वाँ सर्ग 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द के श्लोकों के साथ समाप्त हुआ है। 'त्रिपाठी' जी छन्दों में सिद्धहस्त हैं। महाकाव्य में कवि ने उच्चकोटि के छन्दों के श्लोकों का निर्माण किया है। कवि ने कालिदास का अनुगमन किया है।

(ग) अलङ्कार

मम्मट ने अलङ्कार को परिभाषित करते हुए पूर्णतया व्यावहारिक विवेचन किया है–

उपकुर्वन्ति ते सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।[१२६]

अर्थात् ये अलङ्कार रस के रहने पर ही कदाचित् अर्थात् अनियत रूप से अङ्गद्वारेण अङ्गी का उत्कर्ष करते हैं। अतः तीन स्थितियाँ हो सकती है–

१. रसजन्य चारुता हो; किन्तु अलङ्कार अस्फुट रूप में हों।
२. अलङ्कार अङ्गद्वारेण रसोत्कर्षक हों।
३. अलङ्कार अङ्गद्वारेण रसापकर्षक हों।

जिस प्रकार दण्डी ने काव्यशोभाकारक अलङ्कारों के अनन्त भेद माने हैं (ते चाद्यापि विकल्प्यन्तं कस्तान् कात्स्न्र्येन वक्ष्यति।'[१२७] उसी प्रकार आनन्दवर्धन भी अलङ्कारों को कथन भङ्गिमा के अनन्त विकल्प के रूप में परिगणित करते हैं। (किञ्च वाग्विकल्पानामानन्त्यान्)[१२८] वस्तुतः स्वरूप की दृष्टि से कथन भङ्गिमा के फलस्वरूप ही तो काव्य– काव्य है। मात्र भाव एवं विचार तो मनोविज्ञान एवं विज्ञान के विश्लेषण के क्षेत्र होंगे– काव्य के नहीं। इसीलिए तो काव्य

को शब्दार्थोभय प्रधान माना जाता है– न तो शब्द की प्रधानता चारुता ला सकती है और न अर्थ की प्रधानता सौन्दर्य निष्पादक अपितु उभय का इतरेतर योग। इसीलिए तो शब्दप्रधान वेद एवं अर्थ प्रधान पुराणादि से विलक्षण कान्तासम्मित उपदेश के तुल्य काव्य को रमणीय माना गया है। अलङ्कार तो काव्य का स्वरूप है फिर उसे काव्य से पृथक् कैसे देखा जा सकता है। अलङ्कारों के यदि सौन्दर्ययुक्त स्वरूप को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो 'काव्यशास्त्र'' को 'अलङ्कारशास्त्र' के नाम से अभिहित करना अनुपयुक्त न होगा।

वस्तुतः अलङ्कारों के सम्बन्ध में यह कदापि नहीं सोचना चाहिए कि ये काव्य में बाहर से थोपे या लादे जाते हैं। यह बात ठीक है कि कटक कुण्डलादि से उनकी उपमा दी जाती है; किन्तु वहाँ अलङ्करणत्व रूप साधारण धर्म ही इष्ट होता है। जिस प्रकार शरीर में आभूषणों को धारण किया जाता है और पुनः उतार भी दिया जाता है वैसी संगति काव्य में अलङ्कारों के साथ घटित नहीं हो सकती है। यदि किसी काव्य खण्ड को उसके अलङ्कारों से पृथक् करके देखा जाय तो उसका काव्यत्व बाधित हो जायेगा। यह उपमा तो मात्र इसलिए दी जाती है कि जिस प्रकार सुन्दर शरीर अलङ्कारों से शोभित हो उठता है उसी प्रकार काव्य में उपयुक्त अलङ्कार योजना कथन को सशक्त बना देता है और अनुपयुक्त अलङ्कार-योजना उसी प्रकार खटकती है जिस प्रकार वृद्धा के शरीर पर अतिशय आभरण।[१२९] स्वयं आनन्दवर्धन ने इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में कहा है कि रसाभिव्यक्ति के अनुकूल अलङ्कारों को बहिरङ्ग नहीं माना जा सकता है– **''यतो रसा वाच्यविशेषैरेवाक्षेप्तव्याः। यत्पतिपादकैश्च शब्दैस्तत्प्रकाशिनो वाच्यविशेषा एव रूपकादयोऽलङ्काराः तस्मान्न तेषां बहिरङ्गत्वं रसाभिव्यक्तौ।''**[१३०]

कुन्तक ने भी तो कहा है कि – **''अलंकृतस्य काव्यत्वमिति स्थितिः, न पुनः काव्यस्यालंकारयोग इति।''**[१३१] यह निर्विवाद सत्य है कि विवेचन विश्लेषण की दृष्टि से ही यह भेद सम्भव है। उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि काव्य में कोई न कोई अलङ्कार रहता अवश्य है चाहे वह अस्फुट रूप से ही क्यों न रहे?

श्री 'उमाशङ्कर शर्मा' द्वारा रचित **क्षत्रपतिचरितम्** महाकाव्य में अलङ्कारों का यथास्थान उपयुक्त प्रयोग नैसर्गिक चारुता का सञ्चार

करता है। उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं का तो बड़ा ही सुन्दर एवं समुचित प्रयोग हुआ है। 'त्रिपाठी' जी की उपमाओं का तो कहना ही क्या वे कालिदास की उपमाओं की अनुगामिनी हैं। महाकाव्य से कुछ अलङ्कारों का उदाहरण देखें–

शब्दालङ्कार

(१) यमक अलङ्कार

''अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः।''[१३२] अर्थ होने पर (नियमेन) भिन्नार्थक वर्णों की उसी क्रम से पुनः श्रवण 'यमक' है। **क्षत्रपतिचरितम्** महाकाव्य के इस श्लोक में 'यमक' का सौन्दर्य देखें–

चलरसालरसालसमञ्जरीरुचिरता चिरतापहराऽधुना।
सककुभाः ककुभा रुचिरेजिताः ससरले सरले कुसुमाकरे।।[१३३]

अर्थात् पवन लहरियों से झूमते हुए आमों की सरस मादकता से आलस्यपूर्ण प्रभाव डालने वाली बौरों की शोभा ने दीर्घकालीन विकलता को दूर कर दिया है। अर्जुन वृक्षों के समूह से भरी दिशाएं मनोहर लगने लगीं, आर्जव-प्रकृति वसन्त में कनेर के पीछे पुष्पों का सौन्दर्य सर्वत्र व्याप्त हो गया।

उपर्युक्त श्लोक में भिन्नार्थक वर्ण 'रसाल' की उसी क्रम में आवृत्ति हुई है एवं 'चिरता', ककुभा, सरले की भी आवृत्ति हुई है; किन्तु इनके अर्थ अलग-अलग हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक यमक अलङ्कार का उदाहरण है।

वृत्यानुप्रास

''एकस्याप्यसकृत्परः''[१३४] अर्थात् एक वर्ण का भी और अनेक वर्णों का भी अनेक बार का आवृत्तिसाम्य होने पर (दूसरा अर्थात्) 'वृत्यनुप्रास' होता है। इसे और स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है अर्थात् एक वर्ण का और अपि शब्द के प्रयोग से अनेक व्यञ्जनों का एक बार या बहुत बार का सादृश्य (अर्थात् आवृत्ति) 'वृत्यनुप्रास' (होता) है। **क्षत्रपतिचरितम्** महाकाव्य से इसका उदाहरण देखें–

जाह्नवी जाह्नवी येयं हिन्दवो हिन्दवोऽथवा।
भारतं भारतं वाऽद्य तत्र हेतुः शिवोदयः।।[१३५]

प्रस्तुत उदाहरण में 'जाह्नवी' वर्ण की 'हिन्दवो' तथा 'भारतं' वर्ण की आवृत्ति हुई है। यहाँ आवृत्ति साम्य होने से 'वृत्यनुप्रास' अलङ्कार है।

(३) उपमा अलङ्कार

'साधर्म्यमुपमा भेदे'[१३६] अर्थात् उपमान और उपमेय का भेद होने पर उनके साधर्म्य का वर्णन उपमा कहलाता है। महाकाव्य से इसके उदाहरण देखें–

शैलपुत्री विजयते कल्पनेव मनोहरा।
यदपाङ्गक्षतस्यापि स्थाणोः शिरसि पल्व्वम्।।[१३७]

प्रस्तुत उदाहरण में पार्वती की उपमा कल्पना से की गयी है। पार्थिव की अपार्थिव से उपमा भी सौष्ठव की नवीन पृष्ठभूमि उपस्थित कर रही है।

महाकाव्य में कवि ने उपमा अलङ्कारयुक्त अनेक श्लोकों की रचना की है। महाकाव्य से कुछ और श्लोक 'उपमा' अलङ्कार के उदाहरणस्वरूप देखे जा सकते हैं। देखें–

१. **वाग्विशेषे कविन्द्रामाकृतिर्मुकुरे यथा।**
संस्तुतिर्देशकालादेः स्वयंव्यक्तेव भासते।।[१३८]

प्रस्तुत उदाहरण में 'दर्पण' की उपमा 'कवि रचना' से दी गयी है। कवि 'त्रिपाठी' जी कालिदास की तरह 'उपमा' अलङ्कार के वर्णन में सिद्धहस्त हैं। महाकाव्य में एक से बढ़कर एक उपमाएं दिखायी पड़ती हैं। यह भी देखें–

२. **पात्र-काल-वयो-देश-बाधमुल्लङ्घ्य सस्मितम्।**
यौवनश्रीः स्वतन्त्रेव कालिदास सरस्वती।।[१३९]

प्रस्तुत उदाहरण में 'स्वच्छन्दयौवना' की उपमा 'महाकविकालिदास की सरस्वती' से की गयी है।

और भी–

३. **प्रकृतेः परभुक्तायाः वारवध्वा इव ध्रुवम्।**
कुलशीलार्जवोत्साहो हतदैव- विडम्बना।।[१४०]

प्रस्तुत उदाहरण में 'वेश्या' की उपमा 'दासता शृङ्खलायुक्त प्रजा' से की गयी है।

(४) उत्प्रेक्षा अलङ्कार

''सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्''[१४१] अर्थात् प्रकृत अर्थात् वर्ण्य उपमेय की सम अर्थात् उपमान के साथ सम्भावना 'उत्प्रेक्षा' कहलाती है। महाकाव्य से इसका उदाहरण देखें–

१. **स्वयम्भुवादर्श इव प्रकल्पितस्तुरङ्गःसृष्टौ जनलोचनोत्सवः।**
स मन्द्रहेषाभिमतात्मसत्क्रियो वहन्नृपं वाहनतामिवाहत्।।[१४२]

अर्थात् महाराज शिवाजी का वह निजी अश्व बेजोड़ था। ऐसा प्रतीत होता था मानों ब्रह्माजी ने घोड़ों के निर्माण करने में उसी को आदर्श माना था। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रस्तुत श्लोक में प्रकृत अर्थात् वर्ण्य उपमेय की सम अर्थात् उपमान के साथ सम्भावना 'उत्प्रेक्षा' को व्यक्त करती है। यह भी देखें–

२. **क्षणेन गाढारूणदारुणाम्बरं तनुच्छटैः पुष्करलक्षितैरपि।**
तमोऽङ्कुरैराप्रसरद्भिरावृतम् महीरुहश्रेणिघनैर्वनैरिव।।[१४३]

थोड़ी देर में गाढ़ी लालिमा से भरा हुआ पश्चिमी आकाश, अत्यन्त विरल, कहीं-कहीं लक्षित होने वाले अन्धकार के अङ्कुरों से जो तीव्रता से फैल रहे थे, भर गया मानो वृक्ष लताओं से परिपूर्ण काले वनों से ही भर गया हो। प्रस्तुत उदाहरण में 'उत्प्रेक्षा' स्पष्ट रूप में दृष्टिगत हो रही है।

५. विरोधाभास अलङ्कार

''विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः''[१४४] अर्थात् वास्तव में विरोध न होने पर भी विरोध की प्रतीति करानेवाले विरुद्ध रूप से जो वर्णन करना यह 'विरोधाभास' अलङ्कार होता है। 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य से इसका उदाहरण देखें–

मेघनादोत्कटस्फारा सूर्यांशु-धवलाम्बरा।
ससुरा पूतचारित्र्या सखरा कोमलद्युतिः।।[१४५]

यहाँ विरोधाभास द्वारा रामायण के बारे में बताया जा रहा है– यह रामकथा रामाऽवमान के कारण ललित, मैथिलीश के रण द्वारा उज्ज्वल है। मर्यादा की प्रतिष्ठा है, किन्तु मर्यादा की मूर्ति समुद्र को लाँघनेवाली है। यह मेघनाद से पूर्ण है; किन्तु सूर्यप्रभा से प्रकाशित

है। पवित्र चारित्र्य ही इसका वर्ण्य है, फिर भी सुरान्वित है। कोमल द्युतिवाली है; किन्तु तीक्ष्ण है।

(६) श्लेष अलङ्कार

''श्लेषः स वाक्ये एकस्मिन यत्रानेकार्थता भवेत्''[१४६] अर्थात् जहाँ एक ही वाक्य में अनेक अर्थ हों, वह श्लेष होता है। महाकाव्य से प्रस्तुत अलङ्कार का उदाहरण देखें–

तं तदेषोऽनभ्यस्ताध्वा भूभृतं चपलस्थितिः।
स्वपरिमाणबन्धेषु नियन्तुं यतते जनः।।[१४७]

प्रस्तुत उदाहरण में शिवाजी को श्लिष्ट 'भूभृत' (धैर्य की सीमा) शब्द से सम्बोधित किया गया है अतः तथा पर्वत दो अर्थ निकलते हैं–

राजापक्ष में– उस पृथ्वीपति को चञ्चलप्रकृतिवाला, साहित्य मार्ग की दुरुहता के अभ्यास से रहित यह व्यक्ति (कवि) अपने पद, वाक्य, छन्द आदि के सीमित बन्धनों में बांधने की चेष्टा कर रहा है (धृष्टता कर रहा है)

पर्वत पक्ष में– उस उत्तुंग शैलराज को पर्वतीय मार्ग के अभ्यास से रहित चञ्चल स्वभाव वाला यह व्यक्ति (कवि) अपने छोटे पैरों की तुच्छ गति में सीमित करने की चेष्टा कर रहा है। प्रस्तुत उदाहरण में एक वाक्य के दो अर्थ होना श्लेष को दर्शाता है।

(७) दीपकालङ्कार

सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।
सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम्।।[१४८]

अर्थात् प्रकृत (उपमेय) तथा अप्रकृत (उपमान) के धर्मों का एक ही बार ग्रहण किया जाय एवं बहुत-सी क्रियाओं में एक कारक का ग्रहण (एक ही बार ग्रहण) यह दीपक अलङ्कार होता है। महाकाव्य से बहुत सी क्रियाओं में एक ही कारक का ग्रहण होने पर इस उदाहरण को (दीपक अलङ्कार के उदाहरण स्वरूप) देखें–

समुद्गिरत्फेनमुखो जलाञ्चितस्तनूरुहोल्लासित-रोमहर्षणः।
श्रमस्नुतप्रान्तयुगस्तुरङ्गमो मुदा स्फुरत्प्रोथमपश्यदाश्रमम्।।[१४९]

मुंह से फेन उगलता हुआ श्रमजल रञ्जित शरीर की रोमराशि द्वारा रोमाञ्चित करता हुआ, पसीने से भींगे बगलों वाला, वह अश्वराज

नथुनों को फड़फड़ाकर स्नेह व्यक्त करता हुआ आश्रम के पास पहुँचा। प्रस्तुत श्लोक एक ही कारक के होने पर अनेक क्रियाओं के होने से दीपकालङ्कार का उदाहरण है।

(८) अनुप्रास

''वर्णसाम्यमनुप्रासः''[१५०] अर्थात् वर्णों की समानता (आवृत्ति का नाम) अनुप्रास है। महाकाव्य से इसका उदाहरण देखें–

चतुर्वर्ण- सदाचारा- चतुराश्रम- वर्तिनी।
चतुर्वर्ग-फला सृष्टि-र्व्यासाद्वा चतुराननात्।।[१५१]

प्रस्तुत उदाहरण में चतुर वर्ण (समानरूप से) चार बार आया है। यहाँ 'चतुर' वर्ण की आवृत्ति है अतः यहाँ अनुप्रास अलङ्कार है।

(९) रूपक

'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः'[१५२] अर्थात् उपमान् और उपमेय का अभेद होने पर निम्नलिखित श्लोकों को रूपक अलङ्कार के उदाहरणस्वरूप महाकाव्य से देखा जा सकता है–

१. **विविक्तभूः सिद्धिपथेऽनुगच्छतामशङ्कितारातिसमीरणार्गलः।**
प्रजाद्विजानां शरणं गतिः सतां प्रसन्नतोयोल्लसितापगाजनिः।।

२. **अनर्थसार्थोन्मथनाय भैरवो ध्रुवप्रतिष्ठाऽभ्युदयप्रभावताम्।**
कुलद्रुमाराधनसम्भृतच्छविर्निसर्गगोप्ता जनमङ्गलश्रियः।।

३. **समाधिरव्याहतधामविभ्रतां पदं त्रिवर्गस्य महीभृतां गुरुः।**
उदाहृतिः शस्त्रभृतां भुवो मणिर्दिवानिशं मानहंससेवितः।।

४. **वपुर्धरः पौरूषमेव साहसी मनोरथस्तापितदेशसंस्कृतेः।**
अवातरन्नूनमसौ जगन्मुदे शिवः क्षमावान् हिमवानिवापरः।।[१५३]

अर्थात् पृथ्वी पर क्षत्रपति का अवतार उत्कृष्टतर दूसरे हिमवान् के रूप में हुआ है। वे सिद्धिमार्ग के साधकों के लिए, पथिकों के लिए पवित्र पीठ के समान, निर्द्वन्द्व शत्रुरूपी आंधी के लिए अमोघ अवरोध, प्रजाकुल के शरण, सज्जनों की गति, प्रसन्नलीला नदियों के उद्गम स्थल, अनर्थमूलक प्रपञ्च के लिए विनाशार्थक भैरव, अभ्युदयवालों की प्रतिष्ठा, स्वजनों के स्नेह एवं निष्ठा से सुशोभित, लोककल्याण के अनन्य रक्षक, उत्कृष्ट तेजस्वी जनों के लिए समाधि, त्रिवर्ग के पोषक, राजाओं के राजा, शस्त्रधारियों में प्रमाण, पृथिवी के मणि,

मानस के विवेक की प्रतिष्ठा, पुरुषार्थ के मूर्तिमान स्वरूप और पराधीन भारतीय संस्कृति के मनोरथ थे। देश को स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता प्रदान करने के लिए वे अपर तेजस्वी हिमवान् के रूप में अवतीर्ण हुए।

प्रस्तुत उदाहरणों में उपमेय और उपमान का अभेद दृष्टिगत होने से रूपक अलङ्कार है।

(१०) अर्थान्तरन्यास अलङ्कार

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।[१५४]

सामान्य में विशेष के कथन द्वारा प्रस्तुत उदाहरण में कोई वेश्या के प्रति अपनी निष्ठा बता रहा है–

वेशोऽयमत्र बहुशो जितरुपदर्पाः
शुल्कोरसो रसकथाकृतकानुरागाः।
जाने तथापि भवतीं पलमप्यदृष्ट्वा
चेतः कथं किमपि नेच्छति नैव जाने।।[१५५]

(११) दृष्टान्त

''दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बिनम्''[१५६]

अर्थात् उपमान, उपमेय, उनके विशेषण और साधारण धर्म आदि सबका बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव होने पर दृष्टान्तालङ्कार होता है। महाकाव्य से प्रस्तुत अलङ्कार का उदाहरण देखें–

लघुरपि नवलोऽवरङ्गःजीवादधिकतरं विषमो भविष्णुरेषः।
मृदुलमपहतोऽपि मुस्तकल्पः पुनरुदितुं समये यतिष्यते यत्।।[१५७]

(१२) स्वभावोक्ति

''स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्''[१५८] अर्थात् बालक आदि की अपनी स्वाभाविक क्रिया अथवा रूप (अर्थात् वर्ण एवं अवयवसंस्थान) का वर्णन स्वभावोक्ति अलङ्कार है। प्रस्तुत अलङ्कार का उदाहरण महाकाव्य से देखें–

नयनशोणरुचौ भटसैरिभे श्रयति पङ्कनिमज्जितविग्रहे।
समयमेति तृषाऽपि न पल्लवं मृगवलं गवलं परिचिन्तयत्।।[१५९]

अप्रस्तुत प्रशंसा

''अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया।''[१६०]

अर्थात् प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति करानेवाली (प्रस्तुताश्रया) जो अप्रस्तुत (अर्थ) की प्रशंसा (वर्णन है वह) ही अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है। महाकाव्य से प्रस्तुत अलङ्कार का उदाहरण देखें–

कृतगृहवसतेः सहस्रदीपाः प्रतिदिशमिष्टमवेक्षितुं भवन्तु।
घनतिमिरपथे परं बहिष्कः प्रभवतिं वस्तुविधौ बिना स्वनेत्रम्।।[१६१]

(१४) प्रतिवस्तूपमा

''प्रतिवस्तूपमा तु सा।। सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः''[१६२] अर्थात् जहाँ एक ही साधारण धर्म को दो वाक्यों में दो बार (भिन्न शब्दों से) कहा जाय वह प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार होता है। महाकाव्य से प्रस्तुत श्लोक प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार के उदाहरणस्वरूप देखें–

आवर्तरौद्रेतरिकश्मलेऽब्धावर्हा किमेषोडुपसन्तितीर्षा।
झञ्झाऽऽशुगाऽऽश्लिष्टतमस्विनी किं क्षमेत दीपोत्सुकमुग्धणदृष्टिम्।।[१६३]

(१५) निदर्शना

''निदर्शना। अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः।''[१६४]

अर्थात् जहाँ वस्तु का असम्भव या अनुपद्यमान सम्बन्ध उपमा का परिकल्पक होता है वह निदर्शना नामक अलङ्कार होता है। निदर्शना अलङ्कार के उदाहरणस्वरूप महाकाव्य से निम्न श्लोक को देखें–

कथं प्रभावस्थितिवेदनीयं मतिर्ध्रुवापायविधौ रमेत।
दृष्ट्वा फणाटोपकरालकालं प्रसूनमालोपममावहेत् कः।।[१६५]

(१६) समासोक्ति

''परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः''[१६६]

अर्थात् श्लेषयुक्त विशेषणों द्वारा अप्रकृत का कथन समासोक्ति है। महाकाव्य से इसका उदाहरण देखें–

अभिसृतामपि वीक्ष्य रुषारुणां सितसितैर्हसितैर्हरितो भरन्।
व्यपनयन् रजनीतिमिराञ्चलं, समुदितो मुदितो मृगलाञ्छनः।।[१६७]

(१७) व्यतिरेक

''उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः''[१६८]

अर्थात् उपमान से अन्य (अर्थात् उपमेय) का जो आधिक्य (का वर्णन) वह व्यतिरेक्त अलङ्कार होता है। क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य से इसका उदाहरण देखें–

व्रीडाविशीर्णविभवोऽपि निशि प्रलीनः
प्रातस्तनोत्यनुदिनं नवरागलक्ष्मीम्।
मोघाग्रहः सुमुखि पाटलपुष्पबन्धः
त्वद्विन्द्रुमौष्ठपदमाप्तुमपि क्षमः किम्।।[१६९]

(१८) भाविक

''प्रत्यक्षा इव यद्भावाः क्रियन्ते भूतभाविनः तद्भाविकम्।''[१७०]

अर्थात् अतीत और अनागत पदार्थ भावनावश कवि के द्वारा जो प्रत्यक्ष कराये जाते है उसे भाविक नामक अलङ्कार कहते हैं। क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य से प्रस्तुत अलङ्कार का उदाहरण देखें–

प्रतिफलन्ति मनःफलके प्रियाः प्रवसतां हिमदुस्सहरात्रिषु।
सहजनिर्वचनाभिहिताशयाः रहसि ताः हसिताकुलदृष्टयः।।[१७१]

(१९) अतिशयोक्ति

''निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत्
प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्।
कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः।
विज्ञेयातिशयोक्तिः सा।।''[१७२]

अर्थात्– १. उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण (अन्तर्भाव, पृथक् कथन न करना) करके जो (आहार्य अभेद निश्चय कल्पित अभेद कथन रूप) 'अध्यवसान' करना है वह (प्रथम प्रकार की, २. प्रस्तुत अर्थ का अन्य रूप से वर्णन (द्वितीय प्रकार की), ३. 'यदि' के समानार्थक शब्द लगाकर जो कल्पना करना (वह तृतीय प्रकार की) और ४. कार्य-कारण के पौर्वापर्य का जो विपर्यय है वह (चतुर्थ प्रकार की अतिशयोक्ति समझनी चाहिए। इस प्रकार का लक्षण मम्मट ने किया है। महाकाव्य से अतिशयोक्ति का यह उदाहरण देखें–

विद्या गुणा वसुमती प्रमदोत्तमेव
निन्दन्ति वेधसमनिर्मितयोग्यपात्रम्।
तत्तानसेनगुरुबन्धुमिमं दुरापं
कोणीकुरुष्व विधये ककुभायिताङ्गि।।[१७३]

(२०) परिसंख्या

किञ्चित्पृष्टमपृष्टं वा कथितं यत्प्रकल्पते।
तादृगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा स्मृता।।[१७४]

अर्थात् कोई पूछी गयी या बिना पूछी हुई कही गयी बात जो उसी प्रकार की अन्य वस्तु से निषेध में पर्यवसित होती है वह परिसंख्या कहलाती है। महाकाव्य से प्रस्तुत अलङ्कार का उदाहरण देखें–

एकं वयो लसति यौवनमेव यस्मि-
न्नेकव्रतं मदिरवारवधूविलासः।
एकं फलं विषमपुष्पशरानुतोषो
वेशस्तथामरधरा द्वयमेव सर्गे।।[१७५]

(२१) समाधि

'समाधिः सुकरं कार्यं कारणान्तरयोगतः'१७६

अर्थात् जहाँ अन्य कारण के आ जाने पर कार्य सुकर हो जाता है वहाँ समाधि अलङ्कार होता है। महाकाव्य से इस अलङ्कार का उदाहरण निम्न है–

गृहं विदूरं वसतिर्द्विषत्पुरे व्यपेतरक्षा स्थितिरत्रपो रिपुः।
असत्फलाऽसौ जयसिंहवागपि हठाददृष्टव्यसनेऽपतन् नृपः।।[१७७]

समीक्षा– क्षपतिचरितम् महाकाव्य के विविध श्लोक विविध अलङ्कारों से अलंकृत हैं। कवि ने महाकाव्य में प्रायः सभी अलङ्कारों से युक्त श्लोकों की रचना की है; किन्तु उनमें से कवि को उपमा, श्लेष, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास इत्यादि से विशेष लगाव-सा प्रतीत होता है। कवि के उपमा अलङ्कारयुक्त श्लोक सहृदयों का हृदय बलात् अपनी ओर आकर्षित कर लेते है। साहित्यिक परिशीलन की दृष्टि से (श्लोकों में) अलङ्कार का विवेचन विस्तृत रूप से यमक, वृत्यनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, श्लेष, दीपक, अनुप्रास, रूपक अलङ्कार का किया गया है एवं अन्य अलङ्कार दृष्टान्त, स्वभावोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा,

प्रतिवस्तूमा, निदर्शना, समासोक्ति, व्यतिरेक, भाविक, अतिशयोक्ति, परिसंख्या, समाधि लक्षण के आधार पर स्वतः स्पष्ट हो गये हैं, अतः इनका विस्तृत विवेचन नहीं किया गया है। प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत दिये गये अलङ्कार के उदाहरणस्वरूप श्लोकों में कवि की अद्भुत क्षमता को देखा जा सकता है।

(घ) प्राकृतिक-चित्रण

कवि की सूक्ष्म दृष्टि बाह्य जगत् एवम् अन्तर्जगत् की तात्त्विक विधाओं का साक्षात्कार करती हुई मनोरम पदावली में उनको अनुस्यूत करती है। उनकी कलात्मक तूलिका नीरसता में सरसता, कर्कशता में कोमलता, कठोरता में सुकुमारता, सामान्य में विलक्षणता, दुर्बोध में सुबोधता के माध्यम से काव्य में रसात्मकता का सञ्चार करती है। कवि ने क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में बाह्य प्रकृति का चारु चित्रण कर अपने मनोभावों को मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति उनके काव्य गौरव को अधिक समुन्नत बनाती है। क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य अत्यन्त सजीव प्राकृतिक दृश्यों से संवलित है। कवि 'काश्मीर' सुषमा का वर्णन कर रहे है–

यत्राम्बु लीलामुकुरो जगच्छ्रियः पृथ्वीतलं दुर्लभपार्थिवासनम्।
पुष्पोत्करामोदसखः समीरणो न स्मर्तुमत्युत्सहतेऽमरद्रुमम्।।[१७८]

काश्मीर के स्वच्छ जल वाले जलाशय सौन्दर्यलक्ष्मी का लीलादर्पण प्रतीत हो रहे हैं, हरियाली की मखमली से परिपूर्ण पृथ्वी दुर्लभ राजसिंहासन है एवम् उस काश्मीर में फूलों की सुगन्ध में डूबा पवन कल्पवृक्ष को भी स्मरण नहीं करता।

कवि अपनी कल्पना की उड़ान को इसी प्रकार श्लोकबद्ध कर देते हैं। कवि विविध विषयों के वर्णन में सिद्धहस्त हैं उनके प्रकृति वर्णन के अन्दर 'मनोभाव' वर्णन का जो संयोग है वह सहृदयों के लिए ही निर्मित किया गया है तभी तो कवि काश्मीर का 'प्राकृतिक' वर्णन करते-करते जनमानस को एक सन्देश दे जाते हैं–

अभ्रंलिहश्रेणिनिभाच्छकुन्तकै रक्षाव्रतैर्निश्चलभूधरैरियम्।
संसेविता नित्यमुपत्यकाजिरे काश्मीरलक्ष्मी रमते शरीरिणी।।[१७९]

अर्थात् (काश्मीर की घाटी (श्रीनगर आदि) चारों ओर ऊँचे उठे हुए पहाड़ों से घिरी है, ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसी क्रीड़ाभूमि

को रक्षकों ने घेर लिया है) काश्मीर घाटीरूपी क्रीड़ाभूमि के चारों ओर गगनचुम्बी पर्वतशृङ्ग नुकीले उठे भाले हैं, पर्वत ही दायित्वपूर्ण रक्षक हैं, वे काश्मीररूपी क्रीडाभूमि को चारों ओर से घेरकर रक्षा कर रहे हैं तथा उसी क्रीडाभूमि में मूर्तिमती सौन्दर्य की देवी ही मानो खेल रही हैं।

यह श्लोक मात्र हृदय को प्रफुल्लित करने के लिए ही नहीं है अपितु यह दो सन्देश भी दे रहा है। प्रथम– यह कि काश्मीर असुरक्षित नहीं है इसके चारों ओर नुकीले पर्वत अहर्निश इसकी रक्षा कर रहे हैं। द्वितीय– यह कि भारतवासियों को भी उन नुकीले पर्वतों की भांति उठकर अपने देश के मान की रक्षा करनी चाहिए।

अपने मनोगत विचारों को सुन्दर भाषा में अभिव्यक्त करने वाले व्यक्ति ही सभ्यतम होते हैं। उनमें भी विशेष दक्ष व्यक्ति ही गम्भीर भावों को सरल रूप में अभिव्यक्त करने में समर्थ होते है, ऐसे ही है हमारे कवि। कवि ने प्राकृतिक-चित्रण करते समय सबकी मन पसन्द बातें कह देने में कोई भी कठिनाई महसूस नहीं की है, उन्होंने कहीं-कहीं सामान्य वर्णनों में भी शास्त्रीय पाण्डित्य प्रदर्शन करके उसे गम्भीर बना दिया है। कवि राजस्थान की प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं–

स्वातन्त्र्यरक्षाक्रतुकीर्तितच्छटा या राजपुत्रैः प्रथिता प्रजावती।
सेयं मरौ शर्करिलेऽपि सोत्सुकं सूते सदा केवलमुज्वलं यशः।।[१८०]

स्वतन्त्रता की रक्षा में आयोजित यज्ञ में जिसकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त है, जो राजपुरुषों से सन्तान वाली है (राजपुत्र ही जहाँ निवास करते है), वही यह राजस्थान की वसुमती बालूभरे मरुस्थल में भी उज्ज्वल यश ही उत्पन्न करती है (मरुभूमि में प्रायः कुछ उत्पन्न नहीं होता है केवल बालूकण ही होते हैं; किन्तु इस भूमि की विशेषता यह है कि यहाँ केवल उत्कृष्ट यश ही पैदा होते है) ये सभी तर्क यह सिद्ध कर देते हैं कि प्राकृतिक-चित्रण के अन्तर्गत जहाँ राजस्थान की मरुभूमि की बालूकाराशि का वर्णन ही पर्याप्त था वहाँ कवि ने सामान्य (बालूकाराशि) वर्णन में शास्त्रीय पाण्डित्यपूर्ण प्रदर्शन करके उसे गम्भीर (उत्कृष्ट यश पैदा होते हैं) बना दिया।

महाकाव्य के प्राकृतिक दृश्यों में कवि की कल्पना एवं कवि के सूक्ष्म विचारों का सम्मिश्रण प्राप्त होता है। कवि उत्तर प्रदेश की प्राकृतिक अवस्था का वर्णन निम्नलिखित श्लोक के माध्यम से करते हैं–

सप्तच्छदाऽऽमोदवता निशात्यये किञ्चित्तुपारोदिशशैत्यवर्तिना।
शीतागमस्निग्धकथामिवावनिर्यत्राभिधातुं पवनेन सेव्यते।।[१८१]

अर्थात् जहाँ की पृथ्वी पर शरद् ऋतु के अवसान में कुछ रात शेष रहने पर ब्राह्मवेला में ओस कणों के कारण बढ़ती ठण्डक वाले सप्तपर्ण (छितवन) की मादक सुगन्ध से मिश्रित पवन आने वाले शीत ऋतु की मधुर चर्चा करता बहता रहता है। प्रस्तुत श्लोक में कवि ने जहाँ अपने सूक्ष्म अनुभूत विचारों को प्राकृतिक-चित्रण के साथ ही व्यक्त किया है वही अपनी कल्पना के सहारे एक अद्भुत दृश्य उपस्थित कर दिया है। हम किसी भी ऋतु में इस श्लोक का अध्ययन करें तो कवि की कल्पना के सहारे अत्यन्त सहजतापूर्वक उस शरद् ऋतु में मादक सुगन्ध मिश्रित पवन की कल्पना कर सकते हैं यही तो कवि की विशेषता है कि वे अत्यन्त सजीव प्राकृतिक-चित्रण उपस्थित कर देते हैं।

कवि के प्रकृति वर्णनों में जहाँ मनोभावों का विशद वर्णन है वहीं वे प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति भी उपस्थित कर देते हैं। कवि के प्राकृतिक वर्णनों में सजीवता एवं स्वाभाविकता का पुट होता है। कवि प्रकृति वर्णन करते समय सरल भाषा में भावों की अभिव्यक्ति करते हैं।

दोपहरी में सूर्य एवं बादलों का वर्णन कितना मनोरम दृश्य उपस्थित करता है–

पाथोदखण्डैः क्षणनिर्मितच्छदैर्जुष्टा रसालालससौरभावनिः।
शीर्षं समारोहति रश्मिमालिनी सुप्तां स्मृति जीवयतीव निस्स्वनं।।[१८२]

मध्याह्नकाल में सूर्य शिर के ऊपर आसमान में छिपने लगते है। जब आसमान में भ्रमण करते हुए बादल के खण्ड क्षण भर के लिए छाया उत्पन्न कर धूप छाया की 'लुका छिपी' खेलने लगते हैं तब आम्रकुञ्जों के सुगन्ध से भरी पृथ्वी निश्शब्द, पुरानी स्मृतियों को कुरेद कर जीवित कर देती है।

कवि जिस प्रकार प्राकृतिक चित्रण करते समय मनोभावों, काल्पनिक दृश्यों, सन्देशों इत्यादि की बातें करते हैं ठीक उसी प्रकार वे षड्ऋतुवर्णन के समय नवीन विचारों का परिपाक सहृदयों के समक्ष

उपस्थित कर देते हैं। क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में षड्ऋतुवर्णन है, उसमें ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतुओं का यथाक्रम वर्णन है। महाकाव्यों तथा नाटकों में यथास्थान ऋतुओं का वर्णन आया है पर संस्कृत साहित्य में क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य का ऋतुवर्णन बरबस कालिदास की स्मृति करा देता है।

एक के बाद दूसरी ऋतु के आगमन से जहाँ प्रकृति के बाह्य रूप में नवीनता या विचित्रता आती है, वहाँ युवक-युवतियों में भी विविध प्रणय-क्रीड़ाओं तथा शृङ्गारिक चेष्टाओं का उदय होता है। क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के 'षष्ठ सर्ग' में प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य और मानवीय प्रणय का कान्त संयोग है। प्रत्येक ऋतु अपनी विशेषताओं से प्रेमियों के हृदय को नानाप्रकार से आन्दोलित करती है।

रसपूर्ण वसन्त ऋतु का आगमन होने पर प्रकृति का मनोहर चित्रण कवि ने निम्न श्लोक में उपस्थित किया है–

द्विजकुलालिकलस्वनगीतिभिः किसलयाभिनवच्छविसम्पदः।
प्रवयसस्तरबोऽपि समुत्सुकाः समुदिते मुदिते कुसुमाकरे।।[१८३]

वसन्त ऋतु आगमन से केवल नवीन वय वालों को ही प्रसन्नता नहीं होती अपितु वृद्ध भी प्रसन्न हो जाते हैं। इसी बात को कवि उपर्युक्त श्लोक में प्रकृति-चित्रण के माध्यम से बताना चाहते हैं। पुराने जीर्ण पेड़ों में भी प्रसन्नता का सञ्चार हो गया है, पक्षियों का कोलाहल, भौरों की गुनगुनाहट ही उन पेड़ों का गीत है, नये कोपलों की शोभा ही उनकी सम्पत्ति है, प्रसन्न आचरण वाले वसन्त के उदित होने पर इस तरह पुराने वृद्ध पेड़ भी उत्कण्ठा-विह्वल हो गये हैं। प्रकृति में नियमपूर्वक सभी कार्य होते हैं वसन्तागमन होने पर ही नयी कोपलों का निकलना कोयल आदि का कूंकना इस बात का प्रमाण है कि प्रकृति में नियमपूर्वक सभी कार्य होते हैं।

महाकाव्य के प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी श्लोकों में प्रकृति के प्रत्येक स्तर का वैभव दृष्टिगोचर होता है। निम्नलिखित श्लोक को देखें तो प्राकृतिक-चित्रण कितना वास्तविक प्रतीत होता है, भीषण गर्मी पड़ रही है, ग्रीष्म ऋतु के प्रचण्ड ताप से पथिक बेहाल है–

प्रविरलद्रुमवर्त्मनि कातरः कुपितभानुसखे पथिको व्रजन्।
श्रमजलाक्ततनुः श्वसिति स्थिरं तरूतलेरुतलेशनिषेविते।।[१८४]

गर्मी बहुत तेज पड़ रही है दोपहर होने में कुछ ही समय शेष है, पथिक ग्रीष्म से बेहाल है फिर भी चलना आवश्यक है। मार्ग भी बीहड़ है अत्यन्त कठिनाई से ही कहीं राजमार्ग के किनारे वृक्ष मिल पाते हैं सूर्य है कि प्रज्वलित अग्नि का गोला दृष्टिगोचर हो रहा है। अब दोपहर हो चुकी है, सौभाग्य से वृक्षों की छाया भी राजमार्ग पर सुलभ है, और कहीं-कहीं पक्षियों की थोड़ी-थोड़ी चीं चीं भी सुनायी पड़ जाती है। स्वेद की बूँदों से पथिक नहा उठा है अब छाया में बैठकर अपनी तेजी से आने वाली सांसों से थकान दूर कर रहा है।

ग्रीष्म ऋतु में पक्षियों एवं भ्रमरों का समूह भी कष्ट का अनुभव कर रहा है। निम्नलिखित श्लोक में वर्णित है कि

कमलिनीमधुगन्धमदालसाः द्रुमकुले च निदाघखलीकृताः।
अनुभवन्त्यलयोऽपि सहाण्डजैर्यमवतामवतारमिवात्मनि।।[१८५]

विहग एवं भ्रमर झुण्ड भी ताप की भयावहता से शान्त हो चुके हैं। भ्रमरों ने कमलों के वन में छककर मधुपान किया है वे मद जनित प्रभाव से तन्द्रिल हो रहे हैं। जब वे वहाँ से हटकर तटवर्ती तरु कुञ्जों में आते हैं तो ताप की भीषणता उन्हें बेचैन कर देती है और वृक्ष शाखाओं पर बैठे पक्षियों के साथ वे भी चुपचाप हो जाते हैं, ऐसा दृष्टिगोचर होता है मानों उनके भीतर मौन व्रती महात्माओं ने अवतार ले लिया हो।

ग्रीष्मकाल वास्तव में कितना कष्टदायक होता है इसका सहज अनुभव कवि के मन में विद्यमान था, इसे ही उन्होंने अपने श्लोकों में दिखाया है। महाकाव्य के प्राकृतिक-चित्रण के अन्तर्गत ग्रीष्म ऋतु का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन कवि ने किया है।

ग्रीष्मकाल में पृथ्वी झुलस गयी थी, घासपात जल गये थे, नदी-नाले सूख गये थे; किन्तु वर्षा ऋतु ने सब कुछ परिवर्तित कर दिया। प्रकृति वर्णन क्रम में वर्षा ऋतु वर्णन का स्वाभाविक चित्रण निम्न श्लोक में दृष्टिगत होता है। किसी प्रोषितभर्तृका का मेघ के प्रति उपालम्भ है–

फलवती जगती नवयौवनं हतवनं सरितां भरितः क्रमः।
भवतु नाम विधौ सविधे परं भुवनजीवन! जीवनहाऽसि मे।।[१८६]

वर्षा ऋतु में वर्षा के अचानक प्रकट हो जाने से प्रायः ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति कहीं पर समय से पहुँच पाने में असमर्थ हो जाता है। प्रतीत होता है कि प्रोषितभर्तृका नायिका के प्रियतम वर्षा के कारण घर नहीं पहुँच सके। नायिका मेघ को उलाहने देते हुए कहती है– हे संसार के जीवन मेघ! तुमने अपनी कृपा से सबका हित किया है। उजड़ी पृथ्वी हरे वस्त्र पहन चुकी है, जला हुआ वन मनोहर नवीन वन हो चुका है। नदियाँ भर गयी हैं। तुमने सबका कल्याण कर दिया है; किन्तु तुमने मेरा जीवन नष्ट कर दिया है। तुम्हारे शीघ्र आगमन से मेरा परदेशी प्रियतम घर न आ सका।

अब वर्षा बीत चली है; किन्तु प्रकृति के रूप अनेक हैं कभी वह वसन्त के रूप धारण कर हमारे सामने प्रकट होती है तो कभी ग्रीष्म के। अब प्रकृति का शरद् ऋतुरूपी परिदृश्य उपस्थिति हो गया है। प्रकृति के अन्य रूपों की ही भाँति यह भी अत्यन्त आह्लादक लगता है तब तो और जबकि शरद ऋतु में चन्द्रोदय अत्यन्त ही आह्लादपूर्ण दृश्य उपस्थित कर रहा हो यथा निम्नलिखित श्लोक में–

धवलयन्नचिरं ककुभाङ्कुलं कुमुदिनीदयिताविरहाक्षमः।
सितविसारिवितानन्भस्तलादयमुदेति मुदे तिमिरान्तकः।।[१८७]

शरत्कालीन चन्द्रोदय अत्यन्त ही हृदय को प्रसन्न करने वाला दृश्य उपस्थित करता है। अब दिशाओं को तीव्र गति से प्रकाशित करते हुए प्रियतमा कुमुदिनी के वियोग को सहने में असमर्थ ये अन्धकार को नष्ट करने वाले सुधाकर संसार को प्रसन्न करने के लिए, चारों ओर प्रसृत स्वच्छ तम्बूवाले आकाश से उदित हो रहे हैं। शरत् का प्राकृतिक वैभव बड़ा विस्मयकारी है। संसार में कहीं धूल का पता भी नहीं है आकाश अत्यन्त निर्मल हो गया है। सरोवर की शोभा अपने पराकाष्ठा को पहुँच चुकी है।

कवि का प्रकृति-चित्रण मानवों को ही नहीं पशु-पक्षियों और जड़ पदार्थों को भी उत्कण्ठित कर देता है।प्रकृति के विविध दृश्य मानव हृदय को भिन्न-भिन्न प्रकार की उत्कण्ठाओं एवं प्रेरणाओं से आन्दोलित करते हैं। अन्तःप्रकृति और बाह्यप्रकृति का यह घनिष्ट सम्बन्ध महाकाव्य के ऋतुवर्णन में दिखायी देता है। नवयुवती कामिनियों ने अनेक पुराने कार्यों से अवकाश ग्रहण कर लिया है–

अजकेलिमनाः पवनासहो नभसि निर्जलदे ग्लपिते विधौ।
तदपि वासररूद्धवधूजनो न सहते स हतेनमपीर्ष्यया।।[१८८]

जाड़े का समय भी एक विडम्बना है, कामिनियों ने अधिक से अधिक समय की बचत की है। जलक्रीड़ा भी अब नहीं करनी पड़ रही है, हवा खाना भी असह्य हो रहा है, हिमपवन भी अत्यधिक शीतल प्रतीत हो रहा है। आकाश में वर्षाकालीन मेघमाला भी नहीं है, आकाश स्वच्छ है क्या इसे देखा जाय? चन्द्रमा भी कुछ गला हुआ सा दिखायी दे रहा है। फिर भी एक कष्ट है, आखिर इतना बड़ा दिन क्यों होता है? सुबह से सायंकाल तक सूर्य आकाश में टंगा रहता है (उगने और डूबने की) दिन की आवश्यकता ही क्या थी? इसलिए बेचारे मृतप्राय सूर्य को भी नवयुवती कामिनियाँ अपना शत्रु मानती हैं- उचित ही है यदि दिन न होता तो इस संसार की जाड़े में कौन-सी हानि हो जाती।

कवि अब शिशिर की दीर्घ रात्रियों का वर्णन निम्नलिखित श्लोक में कर रहे हैं–

प्रतिफलन्ति मनःफलके प्रियाः प्रवसतां हिमदुस्सहरात्रिषु।
सहजनिर्वचनाभिहिताशयाः रहसि ताः हसिताकुलदृष्टयः।।[१८९]

शिशिर ऋतु की रात अत्यन्त बड़ी होती है। गृह से दूर, प्रियतमा विहीन, परदेश में परदेशियों, प्रवासियों के लिए शिशिर की ये ठण्ड भरी रातें शीघ्र व्यतीत नहीं होती हैं। उन्हें बार-बार प्रिया की मूर्ति अपने हृदय पटल में महसूस होने लगती है। अनेक बीती स्मृतियाँ आँखों में उभरने लगती हैं। वे एकान्त में कभी हँसते हैं तो कभी अश्रुपात करने लगते हैं, बिना बोले ही मनोगत आशय को व्यक्त कर देना आदि सैकड़ों बातें, घटनाएँ प्रवासियों के हृदय पर निर्मम प्रहार करती हैं, उलाहने देती हैं और बेचारा प्रवासी कुछ भी न कर पाने में असमर्थ जगते हुए रातों को व्यतीत कर देता है। उपर्युक्त श्लोक में कवि ने अन्तःप्रकृति एवं बाह्यप्रकृति दोनों का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है।

समीक्षा– क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में कवि उमाशङ्कर शर्मा त्रिपाठी जी ने बाह्य एवम् अन्तःप्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। कवि के प्रकृति-चित्रण पर कालिदास के प्रकृति-चित्रण का प्रभाव दृष्टिगत होता है। महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में प्रकृति का सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर

होता है। जिस प्रकार कवि कालिदास ने 'ऋतुसंहार' नामक गीतिकाव्य में षड्ऋतुओं के माध्यम से प्रकृति सुषमा को जनमानस के समक्ष उपस्थित किया है उसी प्रकार कवि ने षष्ठ सर्ग में गीतिरूपक के माध्यम से षड्ऋतुओं का वर्णन किया है। प्रकृति का इतना सजीव एवं वास्तविक वर्णन आधुनिक युग के महाकाव्य में पाया जाना अत्यन्त आश्चर्यचकित कर देने वाली बात है। क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य का प्रकृति-चित्रण अत्यन्त सुन्दर एवं सुखद है। यह सहृदयों को प्रकृति के अत्यन्त नैकट्य में पहुँचा देता है

सन्दर्भ

१. काव्य प्रकाश, पृ० ६.
२. काव्य प्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृ० १२१.
३. क्षत्रपतिचरितम्, ६.८३.
४. काव्यप्रकाश, पृ० १४४.
५. काव्यप्रकाश, पृ० १४४.
६. वही.
७. क्षत्रपतिचरितम्, ६.४९.
८. वही, ६.४९.
९. काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृ० १४५.
१०. साहित्य दर्पण, ३.१८७.
११. काव्यानुशासन, २.३०.
१२. क्षत्रपतिचरितम्, ६.४६.
१३. क्षत्रपतिचरितम्, ६.४७.
१४. वही, ६.४८.
१५. वही, ६.५०.
१६. वही, ६.४४.
१७. वही, ६.५१.
१८. क्षत्रपतिचरितम्, १३.८९.
१९. साहित्य दर्पण, तृतीय परि., पृ० २५४-२५५
२०. साहित्यदर्पण, तृतीय परि०, पृ० २५४-२५५.
२१. काव्य प्रकाश, पृ० १४९.

२२. क्षत्रपतिचरितम्, १०.६५.
२३. वही, १०.६६.
२४. वही, १०.६७.
२५. क्षत्रपतिचरितम्, १३.२८.
२६. वही, १३. ६०.
२७. वही, १३.७३.
२८. वही, १३.७२.
२९. क्षत्रपतिचरितम्, १३.९.
३०. साहित्य दर्पण, तृ० परिच्छेद, पृ० २२२.
३१. क्षत्रपतिचरितम्, १६.८५.
३२. क्षत्रपतिचरितम्, १६.८४.
३३. वही, १६.८६.
३४. साहित्यदर्पण, ३.२२७.
३५. क्षत्रपतिचरितम्, १४.१९.
३६. वही, १४.२०.
३७. वही, १४.२१.
३८. क्षत्रपतिचरितम्, १४.२२.
३९. वही, १४.२३.
४०. वही, १४.२४.
४१. वही, १४.२५.
४२. वही, १४.२६.
४३. काव्यप्रकाश, पृ० १५१.
४४. क्षत्रपतिचरितम्, ३.४९.
४५. वही, १३.५०.
४६. क्षत्रियचरितम्, ९.५२.
४७. साहित्य दर्पण, तृ०परि०, पृ० २३५-२३६.
४८. क्षत्रपतिचरितम्, ३.३८.
४९. क्षत्रपतिचरितम्, ३.४१.
५०. वही, ३.४२.
५१. वही, ३.४३.
५२. साहित्य दर्पण, तृ०परि०, पृ० २३९-२४०.
५३. क्षत्रपतिचरितम्, ९.३०.

५४. क्षत्रपतिचरितम्, ९.५७.
५५. साहित्य दर्पण, तृ०परि०, पृ० २४२-२४४.
५६. क्षत्रपतिचरितम्, १३.१५.
५७. वही, ६.६४.
५८. वही, १४.७.
५९. क्षत्रपतिचरितम्, ११.९७.
६०. वही, ११.१०५.
६१. क्षत्रपतिचरितम्, ११.१०७.
६२. काव्य प्रकाश, पृ० १५७.
६३. साहित्य दर्पण, तृ०परि०, २४५-२४८.
६४. क्षत्रपतिचरितम्, ३.३२.
६५. वही, ३.३३.
६६. क्षत्रपतिचरितम्, ३.३४.
६७. काव्यप्रकाश, ७.६४.
६८. साहित्य दर्पण, ६.३०-३१.
६९. क्षत्रपतिचरितम्, १.१.
*. प्रस्तुत छन्द गङ्गादास की छन्दोमञ्जरी में द्वितीय स्तवक के पृ० २१ पर है। किन्तु लक्षण पञ्चमं ..... मतः नहीं दिया गया है, यह लक्षण यहाँ डॉ० उमेश चन्द्र पाण्डेय की पुस्तक से प्रस्तुत किया गया है.
७०. अलंकार एवं छन्द, डॉ० उमेश चन्द्र पाण्डेय, पृ० ८२।
७१. क्षत्रपतिचरितम्, १.९२.
७२. छन्दोमञ्जरी, द्वितीय स्तबक, पृ० ११९.
७३. क्षत्रपतिचरितम्, २.१.
७४. छन्दोमञ्जरी, द्वितीय स्तबक, पृ० ३४.
७५. क्षत्रपतिचरितम्, २.१८५.
७६. वही, २.१८६.
७७. वही, ३.१.
७८. छन्दोमञ्जरी, द्वितीय स्तबक, पृ० ४८.
७९. क्षत्रपतिचरितम्, ३.१३७.
८०. वही, ४.१.
८१. वही, ४.१७५.
८२. छन्दोमञ्जरी, द्वितीय स्तबक, पृ० ७२.

८३. क्षत्रपतिचरितम्, ५.१.
८४. छन्दोमञ्जरी, तृतीय स्तबक, पृ० १४१.
८५. क्षत्रपतिचरितम्, ५.९०.
८६. वही, ६.१.
८७. छन्दोमञ्जरी, द्वितीय स्तबक, पृ० ५३.
८८. क्षत्रपतिचरितम्, ६.८५.
८९. क्षत्रपतिचरितम्, ६.८६.
९०. छन्दोमञ्जरी, द्वितीय स्तबक, पृ० १११.
९१. क्षत्रपतिचरितम्, ७.१.
९२. वही, ७.९२.
९३. क्षत्रपतिचरितम्, ८.१.
९४. वही, ९.२०.
९५. छन्दोमञ्जरी, द्वितीय स्तबक, पृ० २३.
९६. क्षत्रपतिचरितम्, ९.७८.
९७. क्षत्रपतिचरितम्, ९.७९.
९८. अभिज्ञानशाकुन्तल, पृ० ३२७.
९९. क्षत्रपतिचरितम्, १०.१.
१००. छन्दोमञ्जरी, तृतीय स्तबक, पृ० १४४.
१०१. क्षत्रपतिचरितम्, १०.१०५.
१०२. वही, ११.१.
१०३. वही, ११.१११.
१०४. वही, १२.१.
१०५. क्षत्रपतिचरितम्, १२.१९८.
१०६. वही, १३.१.
१०७. वही, १३.१७८.
१०८. क्षत्रपतिचरितम्, १४.१.
१०९. वही, १४.१६१.
११०. वही, १५.१.
१११. वही, १५.१०३.
११२. क्षत्रपतिचरितम्, १६.१.
११३. छन्दोमञ्जरी, द्वितीय स्तबक, पृ० ४१.
११४. क्षत्रपतिचरितम्, १६.८९.

११५. गङ्गादास, छन्दोमञ्जरी, पृ० ९६.
११६. क्षत्रपतिचरितम्, १७.१.
११७. वही, १७.२।
११८. वही, १७.११२.
११९. वही, १८.१.
१२०. क्षत्रपतिचरितम्, १८.१२१.
१२१. वही, १९.१.
१२२. वही, १९.८९.
१२३. छन्दोमञ्जरी, द्वितीय स्तबक, पृ० ७९.
१२४. क्षत्रपतिचरितम्, १९.९०.
१२५. वही, १९.९१.
१२६. काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास, सूत्र ८७.
१२७. काव्यादर्श, २.१.
१२८. ध्वन्यालोक, पृ० ६.
१२९. भारतीय काव्य समीक्षा में अलङ्कार सिद्धान्त, रेवाप्रसाद द्विवेदी, पृ० २५ (काव्य का उपमादि के साथ समवाय या समवाय जैसा ही सम्बन्ध है। फलतः उपमादि भी काव्य के अविभाज्य अंग वैसे ही सिद्ध होते है, जैसे रस धर्म माने जाने वाले गुण आदि। भारतीय काव्य समीक्षा में अलङ्कार और काव्य के सम्बन्ध को लेकर जो यह विचार मंथन हुआ इसमें ध्वनिवादी मम्मट की अपेक्षा उनके द्वारा पूर्व पक्ष के रूप में उपस्थापित प्राचीन आचार्यों का समवाय पक्ष ही अधिक संगत और वैज्ञानिक सिद्ध होता है।).
१३०. ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत, पृ० १०७.
१३१. वक्रोक्तिजीवित, १.६ की वृत्ति, पृ० १६.
१३२. काव्यप्रकाश, नवम उल्लास, सू० ११६.
१३३. क्षत्रपतिचरितम्, ६.२२.
१३४. काव्यप्रकाश, नवम उल्लास, सू० १०६.
१३५. क्षत्रपतिचरितम्, १९.५२.
१३६. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सू० १२४.
१३७. क्षत्रपतिचरितम्, १.३०.
१३८. वही, १.४९.
१३९. क्षत्रपतिचरितम्, १.७५.
१४०. वही, १७९.

१४१. काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, सू० १३६, पृ० ४६०.
१४२. क्षत्रपतिचरितम्, ११.१०.
१४३. क्षत्रपतिचरितम्, ११.१६.
१४४. काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, सूत्र १६५.
१४५. क्षत्रपतिचरितम्, १.६०.
१४६. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सू० १४६.
१४८. क्षत्रपतिचरितम्, १.८२.
१४८. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सू० १५५.
१४९. क्षत्रपतिचरितम्, ११.१९.
१५०. काव्य प्रकाश, नवम उल्लास, सू० १०३.
१५१. क्षत्रपतिचरितम्, १.६६.
१५२. काव्य प्रकाश, सू० १३८.
१५३. क्षत्रपतिचरितम्, ३.१-४.
१५४. काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, सू० १६४.
१५५. क्षत्रपतिचरितम्, १३.३४.
१५६. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सू० १५४.
१५७. क्षत्रपतिचरितम्, ५.५८.
१५८. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सू० १६७.
१५९. क्षत्रपतिचरितम्, ६.४०.
१६०. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सू० १५०.
१६१. क्षत्रपतिचरितम्, ५.४२.
१६२. काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, सू० १५३.
१६३. क्षत्रपतिचरितम्, ७.८.
१६४. काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, सू० १४८.
१६५. क्षत्रपतिचरितम्, ७.१०.
१६६. काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, सू० १४७.
१६७. क्षत्रपतिचरितम्, ६.६१.
१६८. काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, सू० १५८.
१६९. क्षत्रपतिचरितम्, १३.५१.
१७०. काव्य प्रकाश, पृ० ५०९.
१७१. क्षत्रपतिचरितम्, ६.८१.

१७२. काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, सू० १५२.
१७३. क्षत्रपतिचरितम्, १३.१०९.
१७४. काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, सू० १९१.
१७५. क्षत्रपतिचरितम्, १३.२५.
१७६. काव्य प्रकाश, दशम उल्लास, सू० १९१.
१७७. क्षत्रपतिचरितम्, १४.१८.
१७८. क्षत्रपतिचरितम्, २.२५.
१७९. वही, २.२३.
१८०. क्षत्रपतिचरितम्, २.५२.
१८१. क्षत्रपतिचरितम्, २.९०.
१८२. वही, २.१०६.
१८३. क्षत्रपतिचरितम्, ६.२१.
१८४. क्षत्रपतिचरितम्, ६.३९.
१८५. वही, ६.४१.
१८६. क्षत्रपतिचरितम्, ६.४६.
१८७. क्षत्रपतिचरितम्, ६.६०.
१८८. क्षत्रपतिचरितम्, ६.७७.
१८९. क्षत्रपतिचरितम्, ६.८१।

******

षष्ठम अध्याय

समकालीन सामाजिक व्यवस्थाएँ

६

समकालीन सामाजिक व्यवस्थाएँ

मराठा राज्यतन्त्र एवं तत्कालीन समाज की व्यवस्थाओं का वर्णन अत्यन्त गहन विषय है। मुगल साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया आरम्भ होने के साथ ही देश में स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना का जो क्रम प्रारम्भ हुआ, उनमें राजनीतिक दृष्टि से सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य मराठों द्वारा स्थापित किया गया था। मराठों की प्रकृति आक्रामक थी और यही वस्तुतः उनकी उन्नति का कारण बनी। मराठों ने मुगल साम्राज्य के उत्पादन अधिशेष में अपने हिस्से का दावा किया और मुगल साम्राज्य के बहुत से क्षेत्रों पर ''चौथ'' व ''सरदेशमुखी'' उपकरों की विधिपूर्वक व नियमित वसूली का सूत्रपात किया। मात्र एक ही शताब्दी (१६२७-१७०१) में मराठों ने मुगल साम्राज्य की जड़ों को झकझोर कर रख दिया।

मराठों के राजनीतिक शक्ति के रूप में उद्‌भव के अनेक कारक थे। यह ऐसा विषय है जिस पर विभिन्न इतिहासकारों के भिन्न-भिन्न मत हैं। जदुनाथ सरकार के अनुसार मराठों के उत्कर्ष में औरङ्गजेब की सम्प्रदायवादी नीति के प्रति हिन्दुओं की प्रतिक्रिया का विशेष योगदान था। एम०जी० रानाडे (M.G. Randade) सहित कुछ अन्य इतिहासकारों का मत है कि मराठों का उत्कर्ष ''विदेशी शासन से मुक्ति के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन था।''[१] वस्तुतः मराठों का राजनीतिक शक्ति के रूप में उत्कर्ष मुगल साम्राज्य के शोषण की निष्ठुर प्रक्रिया के विरूद्ध क्षेत्रीय (मावलों) लोगों की प्रतिक्रिया मात्र थी जबकि इरफान हबीब के अनुसार यह मूलतः मनसबदार

तथा जागीरदार आदि मुगल अधिकारी वर्ग के प्रति जमींदारों का विद्रोह था। मराठा राज्य की स्थापना दकनी राज्यों के विघटन के पश्चात् उत्पन्न हुई शून्य की स्थिति को समाप्त करने तथा सामाजिक राजनीतिक रिक्तता की पूर्ति के लिए हुई थी। मराठा राज्य की स्थापना की एक विशेषता थी कि इसमें पूरे समाज का सहयोग एवं समर्थन प्राप्त था।

ऐतिहासिक प्रमाणों एवं साक्ष्यों के अनुसार कहा जा सकता है कि शिवाजी ने राज्याभिषेक के समय जो 'हैंदव' धर्मोद्धारक पदवीं धारण की थी, ऐसा उन्होंने किसी विशिष्ट लक्ष्य की सिद्धि अर्थात् हिन्दू धर्म की रक्षा का बीड़ा उठाने के लिए नहीं किया था अपितु यह पदवीं राज्याभिषेक के अवसर पर सामान्यतया सभी राजा धारण करते थे। गो, ब्राह्मण की रक्षा की बात भी नयी नहीं थी, इस कर्त्तव्य का निर्वाह पूर्व राजाओं ने भी किया था। यदि मराठों की शक्ति के उद्‌भव के काल को देखा जाय तो यही कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज में व्याप्त विक्षोभ व आन्तरिक हलचल की स्थिति ही मराठों के उद्‌भव के पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण थी। मराठों ने भूमि पर आधिपत्य करने के लिए सङ्घर्ष किया और साथ ही वे समाज की पदस्थिति तथा राजनीतिक सत्ता के प्रश्न के साथ भी जुड़ गये। स्पष्ट प्रतीत होता है कि उपर्युक्त कारणों से शिवाजी के काल में समाज में स्पर्द्धा व तनाव की स्थिति में वृद्धि हुई।

तत्कालीन समाज में सन्त तुकाराम तथा समर्थ गुरु बाबा रामदास द्वारा महाराष्ट्र धर्म का प्रचार हुआ, इसका तत्कालीन सामाजिक विचारधारा पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। यद्यपि 'महाराष्ट्र धर्म' का प्रचार-प्रसार 'जाति और वर्णव्यवस्था' पर कुठाराघात करने में सफल नहीं रहा; किन्तु हम यह भी अस्वीकार नहीं कर सकते कि ''समानता के सिद्धान्त के प्रतिपादन द्वारा इसके प्रणेता वर्णव्यवस्था को लचीला बनाने में अवश्य सफल हुए।''[२] वस्तुतः यह तत्कालीन स्थिति की मांग भी थी। इस काल में व्यक्ति विशेष के साथ-साथ समुदाय विशेष भी तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाने के लिए प्रयत्नशील थे और 'महाराष्ट्र धर्म' का समानता का सिद्धान्त तथा वर्णव्यवस्था के नियमों को लचीला बनाने का प्रयास उनकी उद्देश्य सिद्धि में सहायक था। शिवाजी ने तत्कालीन समाज में उच्चवर्ग के

मराठा व्यक्तियों तथा 'कुन्भियों' को एक करने के लिए महाराष्ट्र धर्म के समानता के सिद्धान्त का सहारा लिया। शिवाजी योग्य थे, उन्होंने बड़ी ही कुशलता के साथ तत्कालीन समाज में मराठों के विभिन्न वर्गों को एकसूत्र में बांधने का कार्य किया तथा उनको कायस्थ, कुन्भी, कोली आदि अधिकारहीन व दलित समुदायों से समन्वित किया। यह प्रेरणा उन्हें इस 'महाराष्ट्र धर्म' नामक आन्दोलन के समानता के सिद्धान्त से मिली। तत्कालीन समाज में व्यक्ति अपनी योग्यता के बल पर ऊँचा उठ सकता था जैसा कि ''स्वयं सिन्धिया के दृष्टान्त से अनुमान लगाया जा सकता है, उसका जन्म एक दलित कुल में हुआ था; किन्तु अपनी योग्यता के बल पर उसको समाज में सर्वोच्च पदस्थिति व प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।''[३]

शिवाजी ने तत्कालीन मराठा समाज के मध्य अपनी वर्णगत स्थिति को उन्नत बनाया। शिवाजी ने ''राजनीतिक सत्ता विषयक अधिकारों को वैधता प्रदान करने के लिए स्वयं को कुलीन 'क्षत्रिय' कुल से सम्बद्ध किया।''[४] शिवाजी एक कुलीन क्षत्रिय थे इस बात को वाराणसी के सुप्रसिद्ध ब्राह्मण गजभट्ट (गागाभट्ट) द्वारा विधिपूर्वक मान्यता प्रदान की गयी। उन्होंने ही शिवाजी का राज्याभिषेक किया था। शिवाजी ने अपने वंश को प्राचीन सिद्ध करने के लिए अपनी 'वंशावली' का निर्माण कराया जिसमें उन्हें सूर्यवंशी क्षत्रिय कुल से सम्बद्ध किया गया था। शिवाजी ने 'क्षत्रिय कुलालवंश' अर्थात् क्षत्रिय कुल का विभूषण इसी पदवीं को धारण करके अपने इस दावे को कि वे क्षत्रिय हैं और भी सशक्त बना दिया।

इतिहास में विस्तृत वर्णन उपलब्ध है; किन्तु क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में काव्यात्मक पुट प्रदान करने हेतु ऐतिहासिक तथ्यों को यथावत् नहीं दृष्टिगत कराया गया है। अतः इतिहास के समकालीन सामाजिक व्यवस्थाओं के वर्णन से महाकाव्य के समकालीन सामाजिक व्यवस्थाओं के सांकेतिक वर्णन से बहुत सी बातों का अध्याहार करना पड़ता है; जिनकी पूर्ति का प्रयास प्रस्तुत अध्याय के आरम्भ में परिचयात्मक शैली में किया गया है। शिवकालीन सामाजिक-व्यवस्था इतिहास तथा महाकाव्य के अध्ययनोपरान्त जिस रूप में स्पष्ट हुई है उसी का वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत देखा जा सकता है–

वर्णव्यवस्था

यजुर्वेद के पुरुषसूक्त में लिखा है–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहू राजन्यः कृतः।
उरुतदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।।[५]

भारतीय साहित्य में वर्णव्यवस्था का वर्णन पाया जाता है। वर्णव्यवस्था प्राचीन काल से ही विद्यमान थी। प्राचीनकाल में समाज चार वर्ग में विभक्त था; किन्तु जब इसकी व्यवस्था कर्म पर आश्रित थी। ब्राह्मण का कर्म शिक्षा-दीक्षा देना था। क्षत्रियों का कर्म लोगों की रक्षा करना, युद्ध लड़ना, देश रक्षा करना था। वैश्यों का कर्म समाज में व्यापार करना था एवं शूद्रों का कर्म सेवा करना था। इस प्रकार अनेक जातियां थी।

मनुस्मृति[६] में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के कर्मों का उल्लेख है इसे क्रमशः देखा जा सकता है–

ब्राह्मण के कर्म

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।

अर्थात् पढ़ाना, पढ़ना, यज्ञ कराना, करना, दान देना और लेना, इन कर्मों को ब्राह्मणों के लिए (ब्रह्मा ने) बनाया।

क्षत्रियों के कर्म

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियश्च समासतः।।

अर्थात् प्रजा (तथा आर्त आदि) की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, (वेद) पढ़ना, विषय (गीत-नाच आदि उपभोग्य कर्म व वस्तुओं) में आसक्ति नहीं रखना; संक्षेप में इन कर्मों को क्षत्रियों के लिए बनाया।

वैश्यों के कर्म

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।

अर्थात् पशुओं की रक्षा (पालन-पोषण, क्रय-विक्रयादि) करना, दान देना, यज्ञ करना, (वेद) पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज लेना और खेती करना, इन कर्मों को वैश्यों के लिए बनाया।

शूद्र के कर्म

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।।

अर्थात् ब्रह्मा ने इन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों) वर्णों की अनिन्दक रहते हुए सेवा करना ही शूद्रों के लिए प्रधान कर्म बनाया।

तत्कालीन समाज में अनेक जातियाँ विद्यमान थीं। यथा– ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, कुम्भी, कोली। अली इब्राहिम खाँ इतिवृत्तकार के अनुसार शिवाजी की सेना में पशुपालक, बढ़ई, दुकानदारों आदि का बाहुल्य था। इस प्रकार तत्कालीन समाज में सामाजिक-व्यवस्था किसी की उन्नति में बाधक नहीं थी, व्यक्ति समाज में अपनी योग्यता के बल पर समाज में उच्च पद को प्राप्त कर सकता था।

शिवाजी के काल में भारत के उत्तरी भाग में औरङ्गजेब का निरङ्कुश शासन था तथा दक्षिण भारत में बीजापुर नरेश 'आदिलशाह' का अत्याचारपूर्ण शासन था। उस समय भारतीय अपने स्वदेश धर्म (प्रेम, सौहार्द्र, एकता) को भूलकर प्रायः कलह करते रहते थे–

सुपृष्टगात्राऽनवयौवनश्रियो महासिहस्तानपि देशवासिनः।
अनेकधाभिन्नबलानतोऽवलान् निकारकारोन्मथितान् ददर्श सः।।[७]

शिवाजी ने देखा वे स्वस्थ थे, पुष्ट शरीर वाले थे, युवावस्था के कारण तेजस्वी शरीर दृष्टिगत होता था, वे शस्त्र चलाने में निपुण थे; किन्तु पारस्परिक विरोध के कारण वीर होते हुए भी कमजोर थे। इस कलह का कारण तत्कालीन जातिगत निष्ठा का लोप था।[८] यद्यपि भारतीय रजवाड़े युद्धभूमि में पीठ दिखाना नहीं जानते थे; किन्तु परस्पर विरोध के कारण वे युद्ध में अल्प शक्ति हो जाते थे। परस्पर किये जाने वाले कलह को देख यवनों ने भारतीयों पर आक्रमण करके उन पर अधिकार कर लिया। वे सभी हिन्दुओं को 'म्लेच्छ' बनाकर 'इस्लाम धर्म' के प्रचार के लिए कटिबद्ध थे, किन्तु महाराष्ट्र में उस समय एक धार्मिक क्रान्ति हुई, जिसके फलस्वरूप लोगों में एकता की

भावना का विकास हुआ।

मराठा जाति के भोंसले कुल में अनेक परिवार थे, जो पश्चिमी भारत में विभिन्न स्थानों पर बसे हुए थे। ये अपने आपको चित्तौड़ के 'राणा' का वंशज मानते थे।[९] भोसला शब्द की व्युत्पत्ति प्रायः हिन्दी शब्द घोसला से मानी जाती है, जिसका अर्थ है बहुत छोटी तङ्ग जगह। शिवाजी के पूर्वज ऐसे ही स्थान में बड़े हुए थे, इसलिए वे भोसला कहलाने लगा।[१०] ये लोग केवल एक ही उपनाम या वंशनाम धारण करते थे तथा अन्य मराठा परिवारों में विवाह करते थे।[११] शाहजी भोंसले 'मालोजी' के ज्येष्ठ पुत्र थे उनका विवाह जीजाबाई के साथ हुआ था। शिवाजी ब्राह्मण जाति को अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखते थे इसके पीछे ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है कि शिवाजी की माँ जीजाबाई ने अपने पुत्र को "हिन्दुओं की तीन परम पवित्र वस्तुओं 'ब्राह्मण, गौ और जाति' की रक्षा के लिए प्रेरित किया था।"[१२]

शिवाजी न केवल ब्राह्मणों का सम्मान करते थे अपितु वे मुसलमानों का भी सम्मान करते थे। "शिवाजी को धार्मिक उपदेश और कीर्तन सुनने का भी बड़ा चाव था। वे जहाँ कहीं भी जाते थे, हिन्दू और मुसलमान सन्तों का सत्संग करते थे।"[१३] इस प्रकार स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में ब्राह्मण सन्तों के साथ मुसलमान सन्तों का भी सम्मान था।

महाकाव्य के अध्ययनोपरान्त विदित होता है कि महाराष्ट्र के लोग केवल 'मराठे' ही थे। वहाँ ऐसी कोई विशेष जाति व्यवस्था नहीं दिखायी पड़ती है। कवि ने महाराष्ट्र के जंगली लोगों को 'मावले' लोग कहा है। 'मावल' इस शब्द का तात्पर्य ऐतिहासिकों के अनुसार एक प्रदेश है। यह प्रदेश कृषि प्रधान है। पश्चिमी घाटों के किनारे-किनारे स्थित ९० मील लम्बी तथा १२ से १४ मील तक चौड़ी पूना जिले की पश्चिमी पट्टी मावल या 'सूर्यास्त भूमि' कहलाती है। इस उबड़-खाबड़ घाटी पर झाड़ियों तथा वृक्षों वाली पर्वत श्रृङ्खलाएँ स्थित हैं। वहाँ की उत्तरी घाटियों में कोली तथा दक्षिण में मराठों का निवास था। उन मराठों के शरीर में पहाड़ी खून था, वे श्याम वर्ण के, सुगठित शरीर वाले होते थे। वहाँ की जलवायु शुष्क तथा शक्तिप्रद थी। वहाँ हल्की

हवा चलती थी तथा वहाँ गर्मी कम कष्टप्रद प्रतीत होती थी। कवि ने उस स्थान पर निवास करने वालों के लिए 'मावले' शब्द का प्रयोग किया है। 'मावल' प्रदेश में कोई नगर नहीं था एवं व्यापार भी नाममात्र का था, यही कारण था वे परिश्रमी थे। 'मावले' लोगों का "सामाजिक संगठन दकन के प्राचीन ग्रामीण समाज की भाँति था; जिसमें प्रत्येक गाँव विविध जातियों एवं व्यवसायों के स्वयं पूर्ण गणतन्त्र का लघुरूप होता था।"[१४] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि 'मावले लोग' विविध जातियों के व्यक्ति थे। 'मावले' शौर्य के धनी थे–

स मावलान विक्रममौलिमण्डनान् सगन्धशत्रुद्विपकुम्भभेदिनः।
गुणादरात् केसरिणो यथाऽभयान् विधेयविस्रम्भपदे न्यवेशयत्।।[१५]

ये मावले बड़े निर्भीक थे। प्रस्तुत प्रसङ्ग का वर्ण्यविषय शिवाजी का 'राज्याभिषेक' है। तत्कालीन समाज के विवेकशील व्यक्तियों ने वाराणसी के विद्वानों के समक्ष प्रश्न रखा कि महाराज शिवाजी का शास्त्रीय विधि से राज्याभिषेक हो सकता है या नहीं अर्थात् क्षत्रपति 'क्षत्रिय' हैं या नहीं, यदि 'क्षत्रिय' हैं तो 'राज्याभिषेक' पर उनका सहज अधिकार हो जायेगा। तब विश्वेश्वर आचार्य 'गागाभट्ट' ने कहा– परम्परा का बन्धन क्षत्रपति के लिए नहीं है।[१६] पराक्रमी शत्रुओं को क्षण में परास्त कर देने वाला क्षत्रपति 'क्षत्रिय' नहीं तो क्या है?[१७] इस प्रकार दो बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम यह कि शिवाजी को तत्कालीन आचार्य 'क्षत्रिय' मानते थे तभी उनका राज्याभिषेक होना सम्भव हो पाया। द्वितीय यह कि समाज में ब्राह्मण के उपरान्त क्षत्रिय का महत्त्व भी कम नहीं था। राज्य के उच्च पद पर क्षत्रिय का ही अधिकार होता था।

शिवाजी के राज्य में वर्ण-व्यवस्था में 'ब्राह्मण' का अत्यन्त सम्मानजनक स्थान था। शिवाजी के राज्य में 'पेशवा' जैसे उच्च पद पर 'ब्राह्मण' का अधिकार था। शिवाजी ब्राह्मणों का सम्मान करते थे–

सुखं समाराधितशर्मशय्यं राजा निशीथेऽनुमतप्रवेशः।
लक्ष्मीवरेणोरसि सेव्यमानं तदङ्घ्रियुग्मं शिरसा ववन्दे।।[१८]

प्रसङ्ग तब का है जब पं० 'कृष्णाजी' अफजल खान के दूत बनकर शिवाजी के पास आये थे। शिवाजी ने राजा के प्रदर्शन के लिए नहीं अपितु विनम्रता के वशीभूत होकर विप्रचरणों की वन्दना

की, परन्तु एक बात पूर्णतया स्पष्ट है कि शिवाजी विप्रों का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान मानते थे। अतः चाहे वह शत्रु (अफजल खान) पक्ष का दूत 'विप्र' ही क्यों न हो। वर्ण-व्यवस्था का उपर्युक्त वर्णन शिवाजी के तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्र है।

परिवार

भारत में 'संयुक्त परिवार' की व्यवस्था प्राचीन काल से थी, एवं 'एकल परिवार' का महत्त्व भी उसी प्रकार था। शिवाजी के शासन काल में 'पितृप्रधान' परिवार ही पाये जाते थे; किन्तु 'माता' का महत्त्व कम नहीं था। माता जीजाबाई के ही संरक्षण में शिवाजी का मानसिक एवं शारीरिक विकास हुआ। शिवाजी के पिता शाहजी भोसले बीजापुर राज्य में पतिष्ठित पद पर थे, किन्तु शिवाजी एवं जीजाबाई के साथ कम समय व्यतीत करते थे, अतः शिवाजी को अपने पिता का संरक्षण प्राप्त न हो सका, परन्तु यह कहना सम्भवतः उचित नहीं होगा कि शाहजी ने अपने पुत्र का बिल्कुल ध्यान नहीं रखा। 'शाहजी' ने अपने योग्य एवं वफादार सेवक 'दादाजी कोंणदेव' को शिवाजी की देखभाल एवं रक्षा के लिए नियुक्त किया था।

१२ वर्ष की आयु में शिवाजी को अपने पिता से पूना की जागीर प्राप्त हुई थी।[१९] शिवाजी को अपने पिता के द्वारा यह सब प्राप्त होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण देता है कि उस काल में परिवार में पुत्र का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि पुत्र अपने वाले वंशजों का निर्माता होता है। परिवार में स्त्रियों का स्थान भी महत्त्वपूर्ण था। श्री रानाडे के मतानुसार "यदि किसी भी महापुरुष की उन्नति का श्रेय उसकी माता की शिक्षा को दिया जा सकता है तो जीजाबाई का शिवाजी के जीवन पर सर्वोपरि प्रभाव था, वे शिवाजी की शक्ति का मुख्य स्रोत थीं।"[२०]

तत्कालीन समाज में द्यूतक्रीड़ा का भी प्रचलन था। साथ ही पुत्र माँ के प्रति अत्यन्त निष्ठावान् भी हुआ करते थे। क्षत्रपतिचरितम् में महाकाव्य के निम्नलिखित श्लोक में तत्कालीन समाज में द्यूतक्रीड़ा का होना तथा पुत्र का माता के प्रति निष्ठावान् होना परिलक्षित होता है–

मानसव्यसनमेकनिश्चया शोधितुं व्यसनवर्त्मनैव सा।
अक्षदेवनविधौ मनस्विनी पुत्रमादिशदनल्पविस्मयम्।।[२१]

अर्थात् (कोण्डना दुर्ग को शत्रु के वश में देखकर विकल) उस माता ने अपनी मानसिक व्यथा को (व्यसन को) व्यसन के ही मार्ग से समाप्त करने के लिए पुत्र को अपने साथ जुआ खेलने का आदेश दिया। स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में परिवार में द्यूतक्रीड़ा का प्रचलन था एवं साथ ही निम्नलिखित श्लोक परिवार में माता के प्रति पुत्र की निष्ठा को परिलक्षित कर रहा है–

कृत्स्नमेव गजवाजिराजितं त्वत्पदाब्जकरूणार्णवायति।
किं न राज्यमिदमम्ब तावकं ब्रूहि वा कमिह दुर्गमीहसे।।[२२]

शिवाजी माता जीजाबाई से कह रहे हैं कि माँ हाथी, घोड़ों से परिपूर्ण यह सम्पूर्ण राज्य आपकी कृपा से सम्भृत, अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ आपका ही है अथवा आप आज्ञा दें कि आपको किस दुर्ग की इच्छा है? इस प्रकार स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में परिवार में पुत्र माँ के प्रति निष्ठावान् होते थे।

राजनीतिक नारी

नारी से ही सम्पूर्ण समाज के व्यक्तियों की उत्पत्ति हुई है। प्राचीन काल से ही स्त्रियों का समाज में प्रभाव रहा है। आधुनिक युग में भी राजनीति में महिलाओं की सशक्त भूमिका है। शिवाजी के काल में भी स्त्रियां राजनीति में विशेष भूमिका निभाती थीं। प्रस्तुत महाकाव्य में दो स्त्री पात्र ऐसी आयी हैं जिनकी राजनीति में अच्छी पकड़ थी। प्रथम तो शिवाजी की माँ स्वयं जीजाबाई थीं इस बात का प्रमाण महाकाव्य के इस प्रसङ्ग में मिलता है कि जब शिवाजी आगरा जा रहे थे (औरङ्गजेब से मिलने) उस समय शिवाजी के दरबार में बहुत लोग शिवाजी के गन्तव्य स्थान में मिलने वाले व्यक्ति औरंगजेब के प्रति सशङ्कित थे तब माता जीजाबाई ने एक राजनीतिज्ञा की भाँति कहा–

भवद्भिः सन्धि सम्बद्धैः सपत्नवशगैरपि।
कथं सन्दिह्यते दिल्लीपतिर्निहेतुशङ्किभिः।।[२३]

यद्यपि शिवाजी जीजाबाई के एकमात्र पुत्र थे; किन्तु आगरा जाने में क्षत्रपति के जीवन के संशय को उखाड़ फेकने के लिए वे बोलीं– आपलोगों ने सन्धि की है, नियमों से सम्बद्ध है और प्रबल शत्रु के वशवर्ती हैं, फिर अकारण दिल्लीपति पर सन्देह क्यों कर रहे हैं?

जीजाबाई का विवाह बाल्यकाल में ही हो गया था जब उनका विवाह हुआ था उस समय उनके पति की आयु ८ वर्ष थी।[२४] भारतीय समाज में पति पत्नी से अधिक आयु का होता है अतः जीजाबाई अवश्यमेव ८ वर्ष से कम अवस्था की रही होंगी, ऐसे में उन्होंने किसी संस्था से राजनीतिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, स्पष्ट हो जाता है एवं विवाहोपरान्त वे सदैव आध्यात्म में रमी रही; किन्तु राजनीति में इस प्रकार की पकड़ होना यह बताता है कि जीजाबाई में अनुभवजन्य राजनीतिक ज्ञान था और यह अनुभवजन्य ज्ञान सम्भवतः रामायण एवं महाभारत का अध्ययन करने से उनमें प्रस्फुटित हुआ हो। इस प्रकार स्पष्ट है कि जीजाबाई एक राजनीतिज्ञ नारी थीं।

प्रस्तुत महाकाव्य में द्वितीय स्त्री-पात्र बीजापुर की राजमाता हैं,[२५] जिन्होंने राजनीतिज्ञ नारी इस शब्द को चरितार्थ किया है। राजमाता विधवा थी। उस विधवा रानी का आदेश था कि मित्रता का व्यवहार दिखलाकर और आदिलशाह से क्षमा दिलवाने का वचन देकर उसे (शिवाजी को) पकड़ा जाय या मार डाला जाय।''[२६] प्रस्तुत प्रसङ्ग तब का है जब अफजल खान ने शिवाजी का नाश करने का बीड़ा उठाया था। राजमाता ने अफजल खान को उपर्युक्त आदेश दिया था। स्पष्ट है तत्कालीन समाज में राजनीति में स्त्रियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती थी।

वेश्यावृत्ति

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में 'त्रिपाठी' जी ने वेश्याओं का भी वर्णन किया है। शिवाजी के आगरा गमन के समय कवि ने नगर वर्णन प्रस्तुत किया है। नगर की साज-सज्जा के साथ कवि ने तत्कालीन वेश्याओं का भी सम्यक् चित्रण किया है। कवि ने वेश्या बाजार के सम्बन्ध में लिखा है–

एकं वयो लसति यौवनमेव यस्मिन्नेकव्रतं मदिरवारवधूविलासः।
एकं फलं विषमपुष्पशरानुतोपो वेशस्तथामरधरा द्वयमेव सर्गे।।[२७]

वेश्या बाजार में अवस्थाओं में किसी अन्य अवस्था (बाल्यावस्था अथवा वृद्धावस्था) को श्रेष्ठ नहीं माना जाता अपितु वहाँ केवल युवावस्था ही श्रेष्ठ माना जाता है। वे वेश्याएँ केलि विलास करती हैं वहाँ केवल कामदेव की ही पूजा होती है। कवि ने प्रस्तुत श्लोक में स्वर्ग तथा वेशभूमि (वेश्याबाजार) को समकक्ष रख दिया है।

वेश्याएँ धन लेकर वेश्यावृत्ति करती थीं। कवि ने स्पष्ट रूप से निम्न श्लोक में लिख दिया है कि जिन युवतियों का मन धन सम्पत्ति की चर्चा में बहुत लगता है वे वास्तव में गणिकाएँ ही हैं। देखें–

चर्चासु तन्वि, वसुदेवपरासु यासां चेतः
प्रसीदति भृशं गणिकाः ध्रुवन्ताः।
हृद्यानुरागगुणमात्ररता त्वमत्र मन्ये
स्वजातिदुरितोपशमाय सृष्टा।।[२८]

प्रायः संस्कृत महाकाव्यों में महाकाव्य के लक्षण को सार्थक करने के लिए जलकेलि, शृङ्गार आदि का वर्णन किया गया है। काव्य चतुर्वर्गफल प्राप्ति का साधन माना जाता है, विनोद परिहास का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है इसी को ध्यान में रखकर कवि ने आगरा वर्णन के समय 'वेश्याओं' का भी वर्णन कर दिया है। यह वेश्या वर्णन तत्कालीनसमाज का सुस्पष्ट एवं सम्यक् चित्र खींचता है। समाज में मिथ्याचरण करने वाले प्रत्येक युग में रहते हैं, मुगल काल भी इसका अपवाद नहीं है।

बहुविवाह

शिवाजी के काल में समाज में 'बहुविवाह' का प्रचलन था। शिवाजी के पिता 'शाहजी भोंसले' की प्रथम पत्नी जीजाबाई थीं। मुगलों के साथ युद्ध में लगे रहने के कारण शाहजी को विभिन्न मोर्चों पर घूमना पड़ता था अतः उन्होंने अपनी प्रथम पत्नी एवं शिशु शिवाजी को शिवनेरी दुर्ग में छोड़ रखा था एवं स्वयम् उन्होंने 'तुकाबाई मोहिते' को पत्नी बना लिया था। इतिहासकार लिखते हैं 'सम्भवतः ये दोनों (जीजाबाई एवं शिवाजी) शाहजी की उपेक्षा के पात्र थे।''[२९] शिवाजी

के पिता के अतिरिक्त स्वयं शिवाजी ने कई विवाह किया था। राज्याभिषेक के समय ८ जून (१६७४) को उन्होंने अपनी जीवित पत्नियों के साथ क्षत्रिय विधि से पुनः विवाह किया।''[३०] यह वचन इस बात को प्रमाणित करता है कि शिवाजी ने कई विवाह किये थे।

शिवाजी के बाल्यकाल के विषय में ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम मिलते हैं। जब शिवाजी १२ वर्ष के हुए तब फलटण के निंबालकर घराने की 'साईबाई' के साथ बंगलौर में उनका विवाह हुआ था।[३१] यह तो शिवाजी के प्रथम विवाह की बात है; किन्तु विश्वेश्वर भट्ट के 'शिवराजाभिप्रयोग' नामक पुस्तक में वर्णित है कि शिवाजी का राज्याभिषेक के पूर्व सभी पत्नियों के साथ राज्याभिषेक उत्सव के पूर्व वैदिक विधि से पुनर्विवाह संस्कार हुआ। इस प्रकार स्पष्ट है कि शिवाजी के भी कई विवाह हुए थे। शाहजी एवं शिवाजी का बहुविवाह तत्कालीन समाज की बहुविवाह प्रथा की ओर सङ्केत करता है।

विवाह संस्काए

शिवाजी के काल में हिन्दू धर्म सम्बन्धी संस्कारों का प्रचलन था। कवि उमाशङ्कर शर्मा जी ने महाकाव्य में अन्य सभी संस्कारों की अपेक्षा विवाह संस्कार का वर्णन किया है। एक बार जीजाबाई के विवाह की संक्षिप्त चर्चा हुई है,[३२] उसके बाद शिवाजी के मित्र तानाजी मालसुरे के पुत्र के विवाह की भी संक्षिप्त चर्चा महाकाव्य में की गयी है। तानाजी मालसुरे के पुत्र के विवाह के सम्बन्ध में महाकाव्य में वर्णन है कि शिवाजी ने अपने मित्र तानाजी मालसुरे को विशेष दूत भेजकर बुलवाया तब वे अपने पुत्र के विवाह यज्ञ की तैयारी में संलग्न थे।[३३] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में विवाह संस्कार का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था।

मनोरञ्जन

किसी भी समाज में मनोरञ्जन एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वीर शिवाजी अफजल खान की यथार्थ स्थिति जानने के लिए नटों एवं नटिनियों के वेश में अपनी सेना के साथ सहज ही प्रविष्ट हो जाते हैं और अपने कौशल से अफजल खान के सैनिकों का अच्छी तरह मनोरञ्जन करते हैं।''[३४] शिवाजी के गुप्तचर नट-नटिनियों

के वेश में अफजल खान के आदेश पर 'ऋतुपरिवर्तन' का गीतिरूपक उपस्थित करते हैं। लोकरूपकों का सङ्केत भी इससे मिल रहा है। इससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में लोकरूपक मनोरञ्जन का सशक्त साधन था।

स्वप्नमान्यता

प्रस्तुत स्वप्नमान्यता का दृष्टान्त एक किंवदन्ती है, तत्कालीन समाज में स्वप्न की भी मान्यता थी। एक बार शिवाजी को स्वप्न में उनकी कुलदेवी 'तुलजा भवानी' ने आदेश दिया कि शिवाजी तुम मेरा मन्दिर बनवाकर उसमें मेरी स्थापना कराओ–

अरातिराज्यायतने गतस्पृहा महानुभावा तुलजा पुरेश्वरी।
शिवं निजादेशरमं समादिशत् पुनः प्रतिष्ठातुममर्त्यविग्रहम्।।[३५]

शिवाजी ने स्वप्न में आदेश का पालन किया अर्थात् मन्दिर बनवाकर उसमें शिवाजी ने 'तुलजा भवानी' कुलदेवी की स्थापना करायी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तत्कालीन समाज में स्वप्न में भी दिये गये आदेश को पूरा करने की परम्परा थी।

अतिथि-सत्कार

यद्यपि 'औरङ्गजेब' ने शिवाजी का आतिथ्य-सत्कार नहीं किया था; किन्तु महाकाव्य में ऐसे अनेक अवसर आये हैं जब कवि ने तत्कालीन अतिथि-सत्कार का वर्णन किया है। शिवाजी स्वयम् एक श्रेष्ठ अतिथि सेवक थे। उन्होंने शत्रु पक्ष (अफजल खाँ) से आये दूत कृष्णाजी भास्कर का भी भली-भाँति सत्कार किया। आर्यचरित शिवाजी ने पं० कृष्णाजी भास्कर से प्रार्थना की–

निरुक्तसन्देशममुं ततोऽसावातिथ्यधर्मा स्वयमार्यनाथः।
धराऽमृताऽन्धोऽङ्घ्रिरजोविवित्तमयाचतावासगृहं विधातुम्।।[३६]

कि वे अपने चरण धूलि से उनके निवासस्थान को पवित्र करने की कृपा करें। अर्थात् उन्हीं की अतिथिशाला में निवास कर उन्हें आतिथ्य का अवसर दें।

आतिथ्य-सत्कार का एक प्रसङ्ग तब का है जब शिवाजी को आगरा आमन्त्रित किया गया था। मिर्जा राजा जयसिंह ने पत्र द्वारा अपने पुत्र रामसिंह को क्षत्रपति के यथोचित आतिथ्य के लिए नियुक्त

कर रखा था। युवक रामसिंह ने विधिपूर्वक आगरा से दो कोस आगे बढ़कर शिवाजी की आगवानी की तथा उनको लेकर उनके ठहरने के स्थान पर आये। उनके विनय-सत्कार आदि ने शिवाजी की थकान को मिटा दिया यह श्लोक इस सम्बन्ध में दर्शनीय है–

जयसिंहसुतस्निग्ध- विनयाचारनन्दिनः।
ग्रीष्मतापोऽपि शैथिल्यमतिथेरन्वभूदिव।।[३७]

राजा जयसिंह के पुत्र के प्रेमपूर्ण, विनयशील व्यवहार ने क्षत्रपति को इतना प्रसन्न कर दिया कि उनके आतिथ्य से अतिथि के ग्रीष्मताप ने अत्यन्त शिथिलता का अनुभव किया अर्थात् उनकी थकान दूर हो गयी।

ये प्रसङ्ग इस बात को दृष्टिगत कराते हैं कि तत्कालीन समाज में अतिथि का स्थान अत्यन्त सम्माननीय होता था। शिवाजी का तो आतिथ्य विश्वप्रसिद्ध था–

आतिथ्यमातिथेयस्य निगडार्हानरीनपि।
वृतसन्धानिव प्राणैरकरोत्तं निषेवितुम्।।[३८]

बन्धन में डालने योग्य शत्रुजनों का भी वे इतना ध्यान देते थे कि वे भी उनकी उदारता के वशीभूत होकर प्राणों को देकर भी उनकी सेवा करने के लिए कमर कस लेते थे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिवकालीन समाज में अतिथि सेवा का अलग ही महत्त्व था।

वेद का महत्त्व

शिवाजी के शासन काल में समाज में वेद का महत्त्व व्याप्त हो गया था। वेदपाठी ब्राह्मण ही नहीं उनके घर के निकट रहने वाले अन्य सामाजिकजन भी वेद में रुचि रखते थे, एवं वेद प्रतिदिन सुनने के कारण वेद-पाठ में प्रवीण हो गये थे–

विमुक्ताजीवचिन्तानां ब्रह्मणामभितो गृहम्।
अपि मन्दाः श्रुतज्ञेषु तेनुरभ्यासविस्मयम्।।[३९]

वृत्ति, आजीविका की चिन्ता से सर्वथा मुक्त ब्राह्मणों के घर के आस-पास रहने वाले सामान्य बुद्धि मनुष्यों ने वैदिक विद्वानों को भी अभ्यास का चमत्कार दिखाकर विस्मय में डाल दिया था। इस

प्रकार हम कह सकते हैं कि तत्कालीन समाज में वेद का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था।

धर्म

तत्कालीन समाज में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान था। शिवाजी को अपना धर्म प्रिय था; किन्तु वे अन्य धर्मों के प्रति भी उदार रहते थे–

वर्तमानः स्वधर्मेषु साधुचेताः परेष्वपि।
अनेकपथनिर्दिष्टं तमेकमविदन्नृपः।।[४०]

शिवाजी विभिन्न मत-मतान्तरों द्वारा ज्ञेय उस एक, अनन्त, अप्रमेय ईश्वर को जानते थे। शिवाजी जानते थे कि प्रार्थना की पद्धति में भेद होने से उस प्रार्थ्यमान में भेदाग्रह उचित नहीं। जिस समाज में राजा ऐसी बात सोचता है उस राज्य की प्रजा आखिर उसी का ही अनुकरण करेगी। इस बात में कोई सन्देह नहीं है। एक बार शिवाजी ने औरङ्गजेब से 'जजिया' कर न लेने के लिए पत्र के माध्यम से निवेदन भी किया था, यह भी धार्मिक विश्वास को व्यक्त करता है। दिल्लीपति औरङ्गजेब ने हिन्दुओं को विवश कर परिणामस्वरूप इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए उन पर एक धार्मिक कर लगाया जिसे 'जजिया' कहते हैं। यह कर मुसलमानों पर नहीं लगता था। बहुसंख्यक प्रजा हिन्दू थी इसलिए यह धर्मप्रचार एवं आय का मुख्य माध्यम था। इस प्रकार शिवाजी धर्म के सम्बन्ध में हस्तक्षेप को गलत मानते थे। इस प्रकार तत्कालीन समाज में ईश्वर का महत्त्व धार्मिक दृष्टि से दिखायी पड़ता है।

सैनिक अनुशासन

तत्कालीन समाज में सैनिक अनुशासन का महत्त्वपूर्ण स्थान था। शिवाजी के सैनिकों को कड़े अनुशासन में रहना पड़ता था–

निषिद्धाचारवर्त्मानः सैन्यादर्शमलीमसाः।
मन्तुशुल्कैरिव प्राणैरात्मशोधं व्यधुर्भटाः।।[४१]

जो सैनिक अनुशासन भङ्ग करते थे उन्हें आत्म-शुद्धि के लिए प्राणों का बलिदान करना पड़ता था। अनुशासन-भङ्ग का अपराधी

सैनिक भयङ्कर दण्ड का भागी होता था। जैसे, मराठे सिपाही अपने साथ स्त्रियां नहीं रख सकते थे। यदि सेनापति भी इस नियम का पालन न करते तो वे प्राणदण्ड के भागी होते। इस प्रकार हम कह सकते है कि शिवाजी के काल में सैन्य शक्ति पर कड़ा नियन्त्रण रहता था।

वर्ग संघर्ष का अभाव

शिवाजी के शासन काल में समाज में वर्ग संघर्ष का अभाव हो गया था। शिवाजी ने राजा एवं प्रजा के बीच की दीवार को नष्ट कर दिया था। शिवाजी के शासन काल में प्रजावर्ग परस्पर सद्भव रखता था–

न जातु हसितं हेम्ना भैक्ष्यं तद्राज्यमण्डले।
भैक्ष्येनापि न तद्धेम साभ्यसूयमवेक्षितम्।।[४२]

धनी और गरीब दोनों थे; किन्तु वर्ग संघर्ष को महत्व नहीं देते थे। सुवर्णकार ने कभी भिखारियों की हंसी नहीं उड़ायी एवं भिखारी ने भी कभी सुवर्ण के प्रति ईर्ष्या प्रकट नहीं की। इस प्रकार तत्कालीन समाज में वर्ग संघर्ष का अभाव दिखायी पड़ता है।

समीक्षा– क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य एवम् ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर शिवाजी के काल की सामाजिक-व्यवस्था ज्ञात होती है। उस काल में वर्ण-व्यवस्था कैसी थी? परिवार कैसे थे? यह सब जानने का अवसर प्राप्त होता है। तत्कालीन समाज में नारी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। कभी वह एक आदर्श नारी, तो कभी एक ममतामयी माँ एवं कभी वह एक राजनीतिक नारी के रूप में दिखायी पड़ती है। नारी एक वेश्या के रूप में दिखायी पड़ती है। नारी ही स्वतन्त्रता देवी के रूप में भी दिखायी पड़ती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि तत्कालीन समाज में नारी प्रत्येक क्षेत्र में महत्त्वूपर्ण भूमिका निभाती थी।

तत्कालीन समाज में विवाहोत्सव का भी अतीव महत्त्व था। द्यूतक्रीड़ा[४३] भी दिखायी पड़ती है। स्वयं शिवाजी की माँ अपने पुत्र शिवाजी के साथ द्यूतक्रीड़ा खेलती है इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में द्यूतक्रीड़ा होती थी। 'षड्ऋतु वर्णन' से स्पष्ट होता है कि

तत्कालीन समाज 'मनोरञ्जन' को महत्त्व देता था। स्वयं अफजल खान 'नट-नटिनियों' के वेश धारण किये हुए शिवाजी को षड्ऋतुवर्णन करने का आदेश देता है।

तत्कालीन समाज में अतिथि-सत्कार का विशेष महत्त्व था। सैनिक कड़े अनुशासन में रहते थे। शिक्षा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था; किन्तु व्यावहारिक शिक्षा ही अतीव महत्त्वपूर्ण थी। स्वयं शिवाजी व्यावहारिक शिक्षा को महत्त्व देते थे।

समाज में वर्ग-संघर्ष का अभाव था, अमीर-गरीब समान भाव से रहते थे। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था दिखायी पड़ती है।

सन्दर्भ

१. मध्यकालीन भारत, खण्ड २, हरिश्चन्द्र वर्मा, पृष्ठ २७३.
२. वही, २७६.
३. वही, २७७.
४. वही.
५. यजुर्वेद, पुरुषसूक्त.
६. मनुस्मृति, १.८८-९१.
७. क्षत्रपतिचरितम्, ३.३७.
८. वही, ३.४४.
९. खाफी खाँ, मुत्तखब उल लुब्राब, खण्ड २, पृष्ठ ११०.
१०. इलियट और डाउसन, भारत का इतिहास, खण्ड ६, पृष्ठ १८२.
११. मुगलकालीन भारत, डॉ० श्रीकृष्ण ओझा, पृष्ठ १२७.
१२. वही, १२९.
१३. वही, पृष्ठ १२९.
१४. मुगलकालीन भारत, १६५६-१७६१ ए०डी०, डॉ० श्रीकृष्ण ओझा, पृ० १३०.
१५. क्षत्रपतिचरितम्, ३.४७.
१६. वही, १८.१४.
१७. वही, १८.१५.
१८. वही, ७.५०.

१९. मध्यकालीन भारत, एल०पी० शर्मा, पृष्ठ ४१०.
२०. Ranade, Rise of the Maratha Power. p. 75.
२१. क्षत्रपतिचरितम्, १६.१७.
२२. वही, १६.२१.
२३. वही, १२.१७३.
२४. वही, २.१७४.
२५. वही, ५.२३.
२६. मुगलकालीन भारत, १६५६, १७६१, पृष्ठ १३५, डॉ० श्रीकृष्ण ओझा.
२७. क्षत्रपतिचरितम्, १३.२५.
२८. वही, १३.३३.
२९. मुगलकालीन भारत, १६५६-१७६१, डॉ० श्रीकृष्ण ओझा, पृष्ठ १२८.
३०. भारत का इतिहास, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृष्ठ ६९२.
३१. मुगलकालीन भारत, १६५६-१७३१, डॉ० श्रीकृष्ण ओझा, पृष्ठ १२९.
३२. क्षत्रपतिचरितम्, २.१७४-१७७.
३३. वही, १६.२८.
३४. वही, १-८६.
३५. वही, ३.९०.
३६. वही, ७.४९.
३७. वही, १२.१९५.
३८. वही, १९.२१.
३९. वही, १९.१५.
४०. वही, १९.२२.
४१. वही, १९.३१.
४२. वही, १९.३५.
४३. वही, १६.१७.

*****

परिशिष्ट

क

प्रमुख स्थलों के नाम

ख

प्रमुख व्यक्तियों और महाकाव्य के पात्रों के नाम

ग

शिक्षाप्रद श्लोक

क

प्रमुख स्थलों के नाम

प्रथम सर्ग– श्लोक– १३- मरूद्यान (नखलिस्तान), २६-२९, ३९- हिमालय, ३४- विभिन्न द्वीप-द्वीपान्तर (टुण्ड्रा, विषुवत क्षेत्र), ३८- अमरावती, ३९- कन्याकुमारी, ६४- भारत, ७८- महाराष्ट्र।

द्वितीय सर्ग– श्लोक– १, ११, ३३, ७५- भारत, ६- हिमालय, २१, २२, २३, २९, ३२- काश्मीर, ३४- सप्तसिन्धु, ३८, ४४- पाञ्चालभूमि, ४७, ५१, ८१, ८२, १६१, १६२, १८४- दिल्ली, ५८- पुष्कर, ६२- हल्दीघाटी, ६३- सौराष्ट्र, मथुरा, ७५- विन्ध्य, ८२- बुन्देल, ११४- मिथिला, ११७, ११९- वंग, १२२- वेलूर, १२६- शान्ति-निकेतन, १३७- कोणार्क, १५४- सहयाचल, १५५, १५९, १६३, १६९- महाराष्ट्र।

तृतीय सर्ग– श्लोक- १२- भारत, ४०, ९२, १०६, १०८, १०९, १२१- दिल्ली, ५८, १०८- महाराष्ट्, ७९- सहयाचल, ८३, ९९, १०६, १०८- बीजापुर, ८७- सहयाद्रि, महावलेश्वर।

चतुर्थ सर्ग– श्लोक– १८, २७, ३५, ३७, ५९, ६०- भारत, २४- सप्तसिन्धू, ३६- कुरुक्षेत्र, ४७- सुराष्ट्र (सौराष्ट्र), ५८- विन्ध्य, ६७, ११९- वाहलीक (वलख), ६७- कम्बोज, तुर्किस्तान, ६८- काश्मीर, १३६, १३९, १४०- दिल्ली।

पञ्चम सर्ग– श्लोक– ९, ६३- दिल्ली।

षष्ठ सर्ग– इस सर्ग के श्लोकों में प्रसिद्ध स्थलों के नाम उपलब्ध नहीं हैं।

सप्तम सर्ग– श्लोक– ७, ३७, ४६- बीजापुर।

अष्टम सर्ग– श्लोक– १३, १७, १९- महाराष्ट्र, १५, ५१- बीजापुर, ४०- देहली।

नवम सर्ग– श्लोक– ४५, ५४- हिमालय।

दशम सर्ग– श्लोक– ४, ८३, ८५, ८७, ८८, ९३, १०४- दिल्ली, ४- बीजापुर, १५, १६- कोङ्कण, १७- पल्लीवन सङ्गमेश्वर, ४६- पुण्यपुरी (पूना), ८४, ८५- गान्धार, ८४, ८५, ८६, १०३, १०४- सूरत।

एकादश सर्ग– श्लोक– १, ३५- भारत।

द्वादश सर्ग– श्लोक– १,२, ५, १८, २७, ५०, ५८, ६३, ६८, ७४, ७६, ७८, १३२, १४०, १४१, १४२, १४४, १४५, १४६, १४७, १५२, १५७, १६१, १६३, १६८, १६९, १७०, १७३, १७६, १८५, १९४- दिल्ली, १- दक्षिण राज्य, १२- गान्धार, १६- पोर्तुकाल (पुर्तगाल), १८- कोङ्कण, २३, ६३, १७१, १८३- महाराष्ट्र, ४९- वाहलीक, ५७, ९०, १५४- भारत, १३२, १४५, १६३- बीजापुर।

त्रयोदश सर्ग– श्लोक– १४- दिल्ली।

चतुर्दश सर्ग– श्लोक– ३२, ५४, ७०, १०६, १२९, १४१, १५९- महाराष्ट्र, ३२, ४७, ५१, ९०, १०३, १११, ११३, १५७- दिल्ली।

पञ्चदश सर्ग– श्लोक– ३, ९५- महाराष्ट्र, २६, ६०- हिमालय, ४२- भारतवर्ष, ५३, ५७- विन्ध्य, १००- मथुरा, १०३- दिल्ली।

षोडशः सर्ग– श्लोक– १,१२- दिल्ली।

सप्तदश सर्ग– श्लोक– ४०, ६१, १०५- देहली (दिल्ली), ६०- बीजापुर।

अष्टादश सर्ग– श्लोक– १०- वाराणसी, २१, २४, ८०- महाराष्ट्र, ११७- दिल्ली।

एकोनविंश सर्ग– श्लोक– ११- महाराष्ट्र, १२, १३, २४, २६, ६३, ७२, ७३- दिल्ली, ५२, ५५- भारत, ५५- राजस्थान।

समीक्षा– 'त्रिपाठी' महोदय ने क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में भारत का सांस्कृतिक भूगोल प्रस्तुत कर दिया है। महाकाव्य में जिन स्थानों के नाम आये हैं उन स्थानों का सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक अनेक दृष्टियों से महत्त्व है। महाराष्ट्र तो शिवाजी की कर्मस्थली ही रही है। बीजापुर, दिल्ली, आगरा इत्यादि का राजनीतिक दृष्टि से एवं शासन की दृष्टि से महत्त्व है। विन्ध्य, मथुरा इत्यादि का धार्मिक दृष्टि से महत्त्व है। काश्मीर, वाराणसी, हिमालय इत्यादि का सांस्कृतिक दृष्टि से ही नहीं अपितु धार्मिक एवं पारम्परिक रूप से भी महत्त्व सदियों से है। इस प्रकार उपर्युक्त स्थानों का उल्लेख श्लोक संख्या एवम् अध्याय संख्या के आधार पर किया गया है। उन श्लोकों को काव्यगत चारुता की दृष्टि से एवं भारत के भूगोल को जानने की दृष्टि से भी पढ़ा जा सकता है। कवि ने भारत के यथासम्भव सभी स्थानों के महत्त्वपूर्ण अंशों को महाकाव्य में प्रस्तुत किया है।

*****

ख

प्रमुख व्यक्तियों और महाकाव्य के पात्रों के नाम

प्रथम सर्ग– श्लोक– १, ५६, ६१, ७५- सरस्वती, २८, ७७, ८६, ८८, ९२- शिव, ३०- शैलपुत्री, ४४- सुरलक्ष्मी, ५५, ५७, ५८, ६५- बाल्मीकि, ५६- सूर्यसूति (सूर्यपुत्री यमुना), ५९- मैथिलीशरण, ६०- मेघनाद, ६५, ६६, ६७, ७०- व्यास, ७२, ७३, ७५- कालिदास, ७३- शकुन्तला, ७७- महेश्वर।

द्वितीय सर्ग– श्लोक– ३५- सरस्वती, ४२- लक्ष्मी, ४४- दुःशासन, गुरुगोविन्द सिंह, ६०- खिलजी (अलाउद्दीन), ६३- विष्णु, ६८- दयानन्द (स्वामी दयानन्द सरस्वती), ७१- गान्धी (महात्मा गान्धी), ७५, १४१- कुम्भोद्भव, घटयोनि क्रमशः (अगस्त्य), ८१- दुर्गावती, ८२- छत्रसाल, ८७- तात्या (तात्या टोपे), ९२- तुलसी, ९२- रत्नावली, १०१- जवाहर, १०४- मालवीय (पं० मदनमोहन मालवीय), ११४- विद्यापति, ११५- राजेन्द्र बाबू (डॉ० राजेन्द्र प्रसाद), १२०- जयदेव, १२२- रामकृष्ण, १२४- गौराङ्गप्रभु, १२५- शान्तिनिकेतनगुरु (रविन्द्रनाथ टैगोर), १५८- श्रीतुकाराम, १६०- श्रीराम (शास्त्री), १६८- बालगङ्गाधर तिलक।

तृतीय सर्ग– श्लोक– ८, २३, ५६, ६४, ७१, ७७, ८३, ८६, ९०, ९५, ९८, ९९, ११२- शिव, १४- कौण्डदेव, ३३, ६३- विष्णु, ११८- राम।

चतुर्थ सर्ग– श्लोक– १५, ७५, १६८, १७४- शिव, २२-

सावित्री, ३५- धृतराष्ट्र, दुःशासन, युधिष्ठिर, भीम, ३६- कृष्ण, ४०- भीष्म, ४२- कालिदास, ६१- शङ्कर, ७१- गौतमी, शातकर्णि, १०१, १०२- दुर्गा, १०८- जयचन्द्र, ११५- कर्ण, १२८- लक्ष्मी।

पञ्चम सर्ग– श्लोक– १०, ११, १६- शिवाजी, १४, १५, २०, २५, २८, ३४, ३६, ५१, ६२, ८८, ८९- शिव, १९- लक्ष्मी।

षष्ठ सर्ग– श्लोक– १, ८५- शिव।

सप्तम सर्ग– श्लोक– २६- कृष्णाजी (कृष्णाजीभास्कर- महाराष्ट्र पण्डित जो बीजापुर की सेवा के लिये नियुक्त थे), २७- अफ़जल, ६२- वशिष्ठ, गाधेय (विश्वामित्र) भगीरथ, ६५- सरस्वती, शिव।

अष्टम सर्ग– श्लोक– १, ५०- शिव, ५- पन्ताजी, ६१- शिवाजी।

नवम सर्ग– श्लोक– ९, १७, ६८- शिव, ७४- भीष्म, ७६- दधीची।

दशम सर्ग– श्लोक– ७, ५२- शायिस्ता (खान), ८, २२, २५, ३०, ३१, ४०, ४१, ५५, ५७, ६९, ७४, ८०, ९८- शिव, १४- समर्थशिष्य (शिवाजी), १५- पालकर।

एकादश सर्ग– श्लोक– १, ७३, ९२- शिव।

द्वादश सर्ग– श्लोक– ४, ७, १५, १६, १७, ५१, १५७, १५९, १७०, १७८, १९८- शिव, ७- शायिस्ताश्व (शायिस्ताखान), ६, ८, १३, ४९, ५७, १५७, १६४, १७६, १९५- जय सिंह, ३०, ३२, ९५- मुरार, ९७- पन्तप्रधान, १०३- बृहस्पति, शिवनन्दन, १५८- नरेन्द्र (शिवाजी)।

त्रयोदश सर्ग– श्लोक– ८- रामसिंह, ४६- परीक्षित, ७६- गाधिसुत (विश्वामित्र), ११७- धन्वन्तरि, १२०- वात्स्यायन, १७७- शिव।

चतुर्दश सर्ग– श्लोक– ५- अफ़जल खान, शायिस्ता खान, १६, १७, ३६, ३७, ३९, ६६, ९१, ९४, १३४, १४४, १४८, १५५, १५८, १६०- शिव, १८, १४५- जय सिंह, २९- पाण्डव, सुयोधन, ४१- रामसिंह।

पञ्चदश सर्ग– श्लोक– २८- विष्णु, लक्ष्मी, ३०- कृष्ण, ३३- सरस्वती, ५५- वनान्तलक्ष्मी, ६९, ९७, १००, १०२- शिव।

षोडश सर्ग– श्लोक– ३- जयसिंह, ४, ६, १३, २४, ५२, ७८, ८१, ८२, ८८- शिव, २३, ३०- जीजावती (जीजाबाई), ३१- देवकी।

सप्तदश सर्ग– श्लोक– २, ५१- शिव, २३- कौशिक (विश्वामित्र), ९९- राजसिंह (मेवाड़नृप), ११२- शिवार्क (सूर्य)।

अष्टादश सर्ग– श्लोक– १, २, ५, ६, ११४, १२०- शिव, ५, ९९- लक्ष्मी, ११- विश्वेश्वर, २९- सत्यकाम, ६१- जमदग्नि, ६९- शिवेन्द्र, १०९- परीक्षित, ११३- क्षत्रपति।

एकोनविंश सर्ग– श्लोक– २०, २३, २९, ३३, ३६, ३९, ४३, ४६, ४७, ४८, ५२, ५३, ६९, ७३, ७७, ७९, ८५, ८८- शिव, ५३- मैथिलीशरण, ५४- मेघनाद, रावण, ५६- हिरण्याक्ष।

समीक्षा– क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य के प्रमुख पात्र तो शिवाजी, जीजाबाई, अफ़जल खान, शाइस्ता खान, औरङ्गजेब, जयसिंह, मुरार, बाजीप्रभु देशपाण्डेय, समर्थगुरु बाबा रामदास, कोण्डदेव जी हैं; किन्तु कुछ अन्य भी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं, जिनका उल्लेख महाकाव्य में कवि ने किञ्चित् श्लोकों के माध्यम से किया है। कवि ने वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक के धार्मिक, राजनैतिक, साहित्यिक, महत्त्व की दृष्टि से प्रसिद्ध व्यक्तियों का वर्णन महाकाव्य में किया है, इसके उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित व्यक्तियों का नाम आया है– सरस्वती, लक्ष्मी, मेघनाद, रावण, दयानन्द सरस्वती, गान्धी, मदनमोहन मालवीय, टैगोर, कालिदास आदि* इस प्रकार त्रिपाठी जी ने भारतवर्ष के जहाँ सांस्कृतिक भूगोल को प्रस्तुत किया है वहीं भारतवर्ष के इतिहास को भी महाकाव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। त्रिपाठी जी का ऐतिहासिक ज्ञान तथ्याधारित है, यह श्लोकों को पढ़ने के पश्चात् पता चलता है।

******

ग

शिक्षाप्रद श्लोक

क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य में डॉ० उमाशङ्कर शर्मा ने बहुत ही मनमोहक, शिक्षाप्रद श्लोक लिखे हैं। महाकाव्य से कुछ श्लोकों को यहाँ दिया जा रहा है।

१. **परूषोऽपि पिको नाम लभतां कलसत्क्रियाम्।**
लक्ष्मीवन्तो न के लोके पूर्वजाराधितश्रियः।।[१]

अर्थात् कोयल की कूक यदि रूखी हो, अप्रिय हो तो भी प्रशंसित होती है, लोकसम्मान को प्राप्त करती है, क्योंकि वह कोयल की ध्वनि है, क्योंकि कोयल अपने मादक स्वर के लिए विख्यात है। सचमुच बाप-दादों की कमायी पर निठल्ला भी अनायास करोड़पति कहलाने लगता है।

२. **वाग्विशेषे कवीन्द्राणामाकृतिर्मुकुरे यथा।**
संस्तुतिर्देशकालादेः स्वयंव्यक्तेव भासते।।[२]

जिस तरह स्वच्छ तल वाले दर्पण में समग्र आकृति प्रतिफलित हो उठती है, उसी तरह महाकवियों की रचना में देश कालादि का परिचय सहज ही आत्मस्थिति को स्वयं व्यक्त-सा करने लगता है।

३. **यात्र-काल-वयो-देश-बाधमुल्लङ्घ्य सम्मितम्।**
यौवनश्रीः स्वतन्त्रेव कालिदास-सरस्वती।।[३]

जिस प्रकार स्वच्छन्द यौवना या स्वतन्त्र स्वभावा लक्ष्मी, पात्र, काल, वय, स्थान आदि बाधाओं की उपेक्षा कर निर्भय विलास करती

है, उसी प्रकार परम्परामूलक एवं शास्त्र समर्थित मर्यादाओं को तोड़कर महाकवि कालिदास की सरस्वती विहार करती हैं।

४. **प्रकृतेः परभुक्तायाः वारवध्वा इव ध्रुवम्।**
कुलशीलार्जवोत्साहो हतदैव-विडम्बना।।[४]

जिस प्रकार चाँदी के कुछ ठींकरों पर अपना शरीर बेचने वाली वेश्या का अपने उच्चकुल, लज्जा, शील एवं सदाचार आदि का ढिंढोरा पीटना दुर्देवकृत विडम्बना है, उसी प्रकार दासता-शृङ्खलाओं में जकड़ी उद्धत विजेता द्वारा भुक्त प्रजा का भी कुल, शील, सम्मान आदि का गर्व करना निष्फल है।

५. **परिस्खलत्पदन्यासा तदेषा मुग्धविभ्रमा।**
भारतीस्निग्धवात्सल्यमाधुर्य स्वदतां कृतिः।।[५]

जिस प्रकार डगमग चलता हुआ बालक अपनी शैशवोचित चेष्टा द्वारा माँ को मोहित कर लेता है तथा स्नेहपरिपूर्ण वात्सल्य रस का पान करता है, वैसे ही यह काव्य रचना अपने सदोष पदों एवं विवेकहीन अनुभावों से पूरित होकर भी, माँ सरस्वती के उदार वात्सल्य का आस्वाद करे।

६. **काव्यं मधुस्यन्दि वियोगनिर्भरं कीनाशदन्तागतबन्धुसङ्गतिः।**
सञ्जीवतैवात्मयशो रहश्श्रुतं काश्मीरपुण्यावनिदर्शनं यथा।।[६]

विप्रलम्भनिर्भर मधुवर्षी काव्य का अनुशीलन, यमराज की दन्तपंक्ति के बीच से बच कर आये आत्मीयजन से भेंट, अपने ही कान से सर्वथा अपरिचित रहकर, दूसरों के मुख से आत्मयश का श्रवण, ये जिस प्रकार चित्त को आनन्द-विभोर कर देते है, उसी प्रकार काश्मीर की सुषमामयी पृथ्वी का दर्शन भी मन को हर्ष निर्भर कर देता है।

७. **विस्मापयन् कोऽपि धियं सुमेधसां**
छिन्नोत्तमाङ्गोऽपि सुखेन जीवतु।
स्वप्नेऽपि किं प्राणितुभार्यभूरियं
काश्मीरवर्जं क्षमते मनस्विनी।।[७]

सिर कटाकर भी बुद्धिमानों के विवेक को विस्मित करता हुआ

कोई सुखपूर्वक भले ही जीवित रहे; किन्तु काश्मीरविहीन होकर स्वप्न में भी यह आर्यभूमि किस प्रकार जीवित रह सकती है।

८. **भोगै रमा रागिमनोभिरङ्गनाः**
स्वर्णैर्धरित्री नियतिः सदाग्रहैः।
सम्प्रीणयन्ति स्वयमुत्सुकोरसो
दैनन्दिनं पञ्चनदस्य पौरुषम्।।[८]

लक्ष्मी विविध भोगों से, सुन्दरियाँ गाढ़ अनुराग से, धरती सोने से तथा अदृष्ट अभिमत विधान से, उत्सुक हृदय द्वारा सर्वदा पञ्चनद के पुरुषार्थ की संवर्धना किया करते हैं।

९. **हित्वा वयस्यान् यमुनां वनावनिं**
विस्मृत्य पुण्यां मथुरामपि क्षणात्।
रेमे क्व सौराष्ट्रतटादृते मनो
देवस्य विष्णोरपि बन्धनच्छिदः।।[९]

मित्रों को, यमुना को, वृन्दावन को, पवित्र मथुरा को भी क्षणभर में छोड़ अशेष बन्धनों को काटने वाले भगवान् श्रीकृष्ण का भी मन सौराष्ट्र-तट के अतिरिक्त और कहाँ बँध सका?

१०. वेणुर्यथाराधितवाद्यसङ्गतौ चेतस्समाधिं तनुते मधुस्वनः।
श्यामेव सौन्दर्यविभूतिदर्शने वङ्गावनिः किन्न तथैति गौरवम्।।[१०]

जिस प्रकार अनेक वाद्य-यन्त्रों के समूह में वेणु अपनी स्वरमाधुरी से चित्त को समाधि-निमग्न कर देता है वैसे ही सौन्दर्यविभूत के दर्शन में क्या यह वंग भूमि श्यामा (किशोरी) के समान उसी चेतस्समाधि उत्पन्न करने वाले यश का गौरव नहीं प्राप्त करती?

११. वंशप्रकर्षेण परम्पराभृता श्रेयांसि विन्दन्ति न के शरीरिणः।
लोके परं सा जनिरुच्यतेजनिर्वंशो ययाविष्कुरुते स्थिरं यशः।।[११]

परम्परा का पोषण करने वाले सम्भ्रान्त कुल में जन्मग्रहण मात्र से श्रेय को कौन नहीं प्राप्त करता! किन्तु संसार में उसी जन्म को उत्कृष्ट जन्म कहा जाता है जिससे कुल की कीर्ति बढ़ती है।

११. जनानरातिव्यसनान्निवारितुं विचारयन्नात्मनिलीनविग्रहः।

अकारणाराधितलोकमङ्गलो जितान्तरायः स वभौ मुनिर्यथा।।[१२]

मुनिजन स्वभावतः आध्यात्मिक कल्याण के उपासक होते हैं, फिर भी उन्हें लोकमङ्गल अभीष्ट होता है, वे समाज में सुव्यवस्था की प्रतिष्ठा चाहते हैं। प्रजाजनों को शत्रु के उत्पीड़न से बचाने के लिए, अपने आप में लीन, विघ्नों को कुचल डालने वाले वीरवर शिवाजी मुनि के समान सुशोभित हो रहे थे।

१३. सखा वयस्यः प्रवया गुरुः प्रभुः स एक एवापि विधिप्रथः क्रमात्।
हिते प्रियं बोधममोघशासनं दिशन् भटानां हृदयाधिपोऽभवत्।।[१३]

अपने सैनिकों के लिए वीर शिवराज सब कुछ थे। वे उनके मित्र थे अर्थात् मित्र के समान उनकी हितचिन्ता करते थे, समान अवस्था के कारण साथी थे, उनका प्रिय करते थे, वृद्ध के समान उनको मङ्गलमय सीख देते थे, आदरणीय गुरुजन तथा स्वामी थे और उन्हें अनुशासन में रखते थे। इस प्रकार वे अपने सैनिकों के एकच्छत्र हृदयसम्राट् थे।

१४. विभाव्यतां सानुजुषा महीस्थितो जनो लघीयान् वपुषापिसम्भृतः।
शिवेन मुक्तोपधिदृष्टिना परं स्वरूपसिद्धं निखिलं समैक्ष्यत।।[१४]

वीर शिवाजी में मनुष्य को परखने की अद्भुत क्षमता थी। प्रायः पर्वत की चोटी पर बैठे मनुष्य को तलहटी में खड़ा उन्नत, पुष्ट देहवाला व्यक्ति भी अत्यन्त छोटा प्रतीत होता है; किन्तु भ्रमहीन दृष्टि वाले शिवराज के साथ ऐसी बात न थी प्रत्येक वस्तु का यथातथ्य सही आकलन करते थे।

१५. अनार्जवाचारजुषोऽपि जन्तवो भजन्ति नैवात्महितेषु विक्रियाम्।
तथापि राज्ञा विहितं तदद्भुतं किमस्त्यकृत्यं भुवनेऽत्रपावताम्।।[१५]

क्रूर आचरणवाले दुश्शील अधम प्राणी भी उपकारी के विरूद्ध द्रोह बुद्धि नहीं रखते। फिर भी बीजापुर के शासक ने वैसा किया (अपने राजभक्त कर्मचारी शाहजी को भी जेल यन्त्रणा का शिकार बनाया) सच है निर्लज्ज कुछ भी कर सकता है।

१६. तनोति यो वारवधूजने स्पृहाम् व्यपेतशीले कलुषोत्सुकोद्यमः।

विषह्यते किं कुलमानिनीजनैश्चरित्रपूतैरपि तन्मनागपि।।[१६]

जिन पापपूर्ण प्रलोभनों एवं गर्हित प्रयत्नों से शीलभ्रष्ट वारवधुएँ अनायास आकृष्ट हो जाती हैं उन्हीं दुष्प्रयत्नों की आंशिक छाया को भी पवित्र आचरण वाली कुलकामिनी क्या कभी सह सकती हैं? अर्थात् नहीं सह सकती।

१७. परस्वभेदव्यवहारविक्रिया क्व धर्मवृत्तिः क्व च तुल्यदर्शिनी।
निसर्गरक्ष्येष्ववलाजनेष्वपि प्रशस्यते किं व्यसनोद्यमाग्रहः।।[१७]

भला 'तेरा मेरा' भेदमूलक व्यवहार की विक्रिया तथा सबको एक समान माननेवाली धर्मभावना में कहाँ समन्वय है। सर्वथा रक्षणीय अवलाजनों पर भी विपत्ति की वृष्टि का आयोजन करना कहाँ तक उचित है। धार्मिकता अपने-पराये के भेद से कलुषित नहीं होती, वह सबके प्रति साधुबुद्धि रहती है।

१८. असंस्तुतामप्यनवद्यभावामवन्दतामर्त्यकलां हठात् सः।
नदीव सिन्धौ वहते ह्यजस्रं महत्ववैशिष्ट्यजने प्रतिष्ठा।।[१८]

उस अपरिचिता किन्तु स्वभावतः उत्तम भावपूर्ण दिव्यालोक सम्पन्न (स्वतन्त्रता) देवी को वीर शिव ने प्रणाम किया। विशिष्ट वस्तु की ओर प्रतिष्ठा स्वयं दौड़ पड़ती है। जिस प्रकार नदी समुद्र की ओर ही बहती है वैसे ही प्रतिष्ठा भी विशेष महत्त्वशाली व्यक्तियों की ओर आकृष्ट होती है।

१९. निसर्गविद्योतितकान्तिमासा ज्योत्स्नेव रम्याऽपि निकारमृष्टा।
अपात्रचित्ताश्रयखिद्यमाना विद्येव का त्वम् व्यसनावरूद्धा।।[१९]

शिवाजी स्वतन्त्रता देवी से कहते हैं– अपनी स्वाभाविक कान्ति की प्रभा से चाँदनी के समान रमणीय होती हुई भी आपको दुःख ने मसल डाला है। कुपात्र के हृदय में दुर्भाग्यवश आश्रय ग्रहण करने के कारण विद्या के समान खेद करती हुई व्यसन-आक्रान्त आप कौन हैं? (सरस्वती, दम्भी के आश्रय में दुःखी रहती हैं)

२०. याम संस्मरन् काञ्चनपिञ्जरेऽपि मनोज्ञभोगाद्विरश्शकुन्तः।
रटन्नजस्रं विपिने स्ववासं जीवादपीष्टाम्मृतिमाजुहोति।।[२०]

सोने के पिञ्जरे में अनेक प्रकार के सुस्वादु दुर्लभ भोगों को त्यागकर, जङ्गल में अवस्थित अपने घोसले के लिए दिन-रात टाँ-टाँ करता हुआ शुक जिस स्थिति का स्मरण कर मृत्यु को ही जीवन से अधिक श्रेयस्कर मानता है, (जङ्गल में पक्षी अनेक बाधाओं के बीच में भी स्वच्छन्दता की अनुभूति करता है। पिञ्जरों में सब कुछ रहते हुए भी उसे स्वच्छन्द बाहर उड़ने का अधिकार नहीं है)।

२१. आद्ये प्रबोधोपचयं यदायुः श्लाघ्यप्रयोगं तदनु द्वितीये।
अहं निरासं कलयत् तृतीये प्रवर्ततेऽन्ते विरजाः स पन्था।।[२१]

मनुष्य की आयु जिस पद्धति (मानव जीवन की आदर्श पद्धति) के लिए आरम्भ में विद्या-बुद्धि का अर्जन करती है, उसके बाद दूसरे आश्रम (गार्हस्थ) में उचित प्रयोग करती है, तीसरे में 'अहं' भावना की व्यक्ति-स्वार्थ मूलक अहम्मन्यता को दूर करने में सचेष्ट रहती है तथा अन्त में उन्मुक्त हो प्रवर्तमान होती है वह निष्कलङ्क पथ ही भारतीय पथ है। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास ये चार आश्रम भारतीय जीवन को पूर्णत्व देने के लिए विनिर्मित हैं, उपयुक्त बोधसंग्रह, कामनाओं का उत्तम परितोष, निवृत्ति का अभ्यास तथा सब कुछ छोड़कर निर्मुक्त लोकसेवा, यही मानवीय जीवन पद्धति है।

२२. मृत्स्नाऽम्बुदारुपलसन्निधाने देवालये नश्यति शत्रुदर्पात्।
माऽसौ शिवः सीदतु निर्विकारस्तदेकरक्षा तु हतैव जातिः।।[२२]

मिट्टी, पानी, लकड़ी, पत्थर आदि इन्हीं उपकरणों से निर्मित देवालय जब शत्रु के कोप से ध्वस्त हो जाते हैं, तोड़ दिये जाते हैं, तो द्वन्द्व से रहित, हर्ष शोक से शून्य, निर्विकार शिव को भले ही दुःख न हो, उनको अपना रक्षक मानने वाली जाति तो टूट ही जाती है, उसका उत्साह भग्न हो जाता है।

२३. अलीकचाटूक्तिनिपीतसारा अशीलितात्मस्थितयोऽवमोहात्।
घनान्धनेत्रैरपि मन्वते ते नृपामिधा दृष्टमशेषदृश्यम्।।[२३]

झूठमूठ की चाटुकारिता के मोहक शब्दजाल में अपनी सुध-बुध खोये, मोह के कारण अपनी दुरवस्थापूर्ण स्थिति से तनिक भी दुःखी न होते हुए सर्वथा अन्धी आँखों से भी ये नृपनामधारी जीव ऐसा समझते मानों उन्होंने सबकुछ देख लिया।

२४. जनेषु शास्त्रोदितवर्त्मसिद्धा रहस्यधिक्षिप्य हठात्तदेव।
अश्नत्ति विश्वास्य विरूढदम्भा इमे बुधम्मन्यवृकाः स्वदेशम्।।[२४]

समाज में तो शास्त्रसम्मत मार्ग पर चलनेवाले कहलाते हैं; किन्तु एकान्त में हठपूर्वक उसी शास्त्र को स्वार्थसिद्धि के लिए लात मार देते हैं। ये विकराल दम्भी, अपने आपको पण्डित समझनेवाले विश्वासी बनकर देश को ही चबा रहे हैं।

२५. कामाङ्कुशक्षुब्धमनोरथानां व्यपत्रपोद्दीपितयौवनाग्निः।
भस्मीकरोत्येव जगत्प्रतिष्ठां चारित्र्यनाशात् प्रलयोऽपरः कः।।[२५]

राजविप्लव के कारण अस्त-व्यस्त समाज में अनैतिकता की कोई रोकथाम नहीं है। कामभावना से क्षुब्ध मनोरथ वालों की निर्लज्जता के कारण भभकती हुई यौवनाग्नि प्रतिष्ठित सामाजिक-परम्पराओं को भस्म कर रही है। भला चरित्रनाश से बढ़कर और किसे प्रलय कहते हैं?

२६. न भागधेयं सुखदुःखायोस्तन्मिलत्स्वभावं निखिलस्य जन्तोः।
प्रायेण दैवो हतभाग्यमेव रुषा निबध्नाति दुरन्तबन्धे।।[२६]

यों तो साधारणतया जीवन में सुख-दुःख दोनों घुले-मिले हैं। कभी सुख, तो कभी दुःख। यह चक्र सदैव ऊपर-नीचे चलता रहता है; किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के लिए इतना भी निश्चित नहीं। अनेक भाग्यहीन व्यक्ति होते हैं जिनके जीवन में सुख का क्षण दुर्लभ हो जाता है। दैव भी प्रायः हतभाग्यों को ही अपने क्रोध का शिकार बनाता है, मरे हुए को मारता है, अभिप्राय यह है कि कुछ लोगों का जीवन दुःखानुभूति के लिए ही है उसमें सुख का लेश भी नहीं है।

२७. द्वाराद्विनिस्सार्य मन्दान्धदृष्टिः प्रतीक्षमाणावसरं समाजः।
सहस्रकृत्वोऽपि कदाचिदेव भ्रमप्रतीकारयशोऽभ्युवैति।।[२७]

प्रतीक्षा करते हुए अवसर को, मद से अन्धी दृष्टि वाला समाज, अपने दरवाजे पर से अपमानपूर्वक बाहर निकालकर, बाद में हजार बार कोशिश करने पर भी शायद ही कभी भ्रममार्जन का सुयश पाता है। आशय यह है कि अवसर आकर भी यदि हाँथ से निकल जाता है तो फिर लाख उपाय करने पर भी हाथ नहीं आता है। (आशय

है हम अवसर का लाभ उठाना नहीं जानते, निरुद्यम होकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं।)

२८. भयमिति कलयन् सतामुपेक्षामुपगिरि वीरपदावलेपदिग्धः।
शुनक इव पलायनप्रतिष्ठो हरिमपि लङ्घितुमीहते स सुप्तम्।।[२८]

भद्र सज्जनों का यह स्वभाव ही है वे प्रत्येक अशोभन बात पर अपना विरोध प्रकट न करके बहुधा उपेक्षा कर दिया करते हैं। उनकी दृढ़ धारणा रहती है कि अन्यायी स्वयं अपने अन्याय से विरत हो सन्मार्ग पर आ जायेगा; किन्तु इस उच्छृङ्खल शिवाजी (अफ़जल खान शिवाजी को कह रहा है) ने सज्जनों की उस उपेक्षा को दूसरे भाव से ग्रहण किया। पहाड़ी के अगल-बगल में छिट-पुट उपद्रवों के द्वारा स्वयं वीरता के गर्व से मदान्ध हो वह इस भ्रम में है कि भद्र समाज उससे भयभीत हो गया है। इस प्रकार भाग जाने की कला में कुशल यह शिवाजी कुत्ते के समान सोये हुए मृगराज को भी लांघने की, अपमानित करने की धृष्टता कर रहा है।

२९. कृतगृहवसतेः सहस्रदीपाः प्रतिदिशमिष्टभवेक्षितुं भवन्तु।
घनतिमिरपथे परं बहिष्कः प्रभवति वस्तुविधौ विना स्वनेत्रम्।।[२९]

घर पर रहते हुए तो अन्धकार में भी यदि किसी रखी हुई वस्तु की इच्छा हुई तो बीसों दीपकों के प्रकाश में उसे प्राप्त किया जा सकता है; किन्तु घर से बाहर अन्धकार मार्ग पर चलते हुए तो वस्तुज्ञान के लिए अपनी ही दृष्टि पर भरोसा करना पड़ेगा।

३०. द्वयमिह भयमङ्कते न नूनं स्थिरमतिरेव जडोऽथवाऽस्तचेताः।
विषमिति परिमुक्तमाप्तबोधैर्मधुरमिवाकलितं हि सूदनप्त्रा।।[३०]

इस जगत् में केवल दो ही व्यक्ति भय निर्मुक्त होते हैं, स्थितप्रज्ञ अथवा बोधहीन मूढ़। बुद्धिमानों ने जिसे विष (शिवाजी पर आक्रमण करना) समझकर छोड़ दिया उसी को रसाइये के बेटे ने 'मधुर' मानकर स्वीकार कर लिया।

३१. स्वतनयमपि सर्वतोऽपि रक्ष्यं भुजगवधूः समयेऽत्ति निष्कृपेवे।
जननमरणसङ्कुले नृलोके प्रथमविधिर्निजजीविताऽभ्युपायः।।[३१]

अपनी सन्तान सबको प्यारी होती है तथा जीवधारी सब प्रकार से उसकी रक्षा करते हैं; किन्तु उसी सविधि रक्षणीय सन्तति को सर्पिणी समय पड़ने पर निष्करुण हो खा डालती है। यथार्थ तो यह है; किन्तु जन्म तथा मृत्यु से परिपूर्ण इस संसार में आत्म जीवन को निरापद बनाना, व्यक्ति का प्रथम कर्त्तव्य है।

३२. प्रणयकलहवर्त्मनीष्टभाजो विदधति सर्वविधोद्यमं स्वसिद्ध्यै।
प्रकटति परूषाग्रहेऽपि लोको विजयिनि कौतुकनिर्भरां प्रशंसाम्।।[३२]

प्रेम तथा विरोध के क्षेत्र में यशस्वी पुरुष सब प्रकार के उपायों से आत्मसिद्धि प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। लोकमत भी कोई सैद्धान्तिक आदर्श नहीं है। कठोर कर्म करने वाला (अनाचारी भी) जब विजयश्री का कृपापात्र हो जाता है तब वही समाज उसकी शतमुख, आश्चर्य मिश्रित प्रशंसा करने लगता है।

३३. भुवनसरसि नीरपूरकण्ठे तटभुवमाश्रयताञ्जनब्रजानाम्।
हठकृतजललोडनस्य लोको भयमनसो नहि कीर्तये तटस्थाः।।[३३]

यह संसार उस तालाब के समान है, जो पानी से खूब भरा हुआ है तथा सारा मनुष्य समाज चारों ओर किनारे पर खड़ा है; किन्तु इन खड़े रहनेवालों में से जो व्यक्ति साहसपूर्वक जल में कूद पड़ता है तथा उसे मथ डालता है उसी पर सारे समाज की दृष्टि जम जाती है। वास्तव में यह दुनिया उसी की है जिसने इसे निर्भयतापूर्वक झकझोर डाला। तटस्थ रहनेवाले (किनारे पर खड़े होने वाले या बैर विरोध से बचने वाले) भयभीत प्राणी यश के भागी नहीं हो सकते।

३४.कुटिलविधिवती मुखस्मित श्रीः कलुषमना सहजं स्वलक्ष्यदृष्टिः।
वितथवचनपण्डिता निगूढम् द्विषमुपतापयतीत्वरीव नीतिः।।[३४]

नीति विशेषतः, शत्रु संहार करनेवाली कूटनीति; सदैव विषमय हृदय तथा मधुमय वाणी से व्यापार आरम्भ करती है। कूटनीति उस कुलटा नायिका के समान है जो अभीष्ट सिद्धि के लिए बाधक तत्त्वों को मिटा डालती है। वह कपटपूर्ण आचरण करती है; किन्तु मुस्कान से मुखमण्डल अपनी निष्कपटता का विश्वास दिलाता रहता है। मन के भीतर भीषण प्रतिशोध भभकता रहता है तथा

दृष्टि लक्ष्य पर केन्द्रित रहती है। अन्ततः भाषण की कुशलता में वह अद्वितीय रहती है तथा भीतर ही भीतर शत्रु वट का भयङ्कर अपघात कर डालती है।

३५. मनसि सततमुद्यतोऽपि कृत्ये प्रभवति नैव जनः कदर्यचेताः।
जनयति विरलं हिकञ्चनाम्बा सुतमुपलब्धमनोरथं पृथिव्याम्।।[३५]

कातर स्वभाव वाला प्राणी मन में तो बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ करता है, ऊँची-नीचे उड़ाने भरता है; किन्तु किसी भी कल्पना को कार्यरूप परिणत नहीं कर सकता। यों तो सभी माताएँ पुत्र उत्पन्न करती हैं; किन्तु कोई भाग्यशालिनी माता ही ऐसे विशिष्ट पुत्र को पैदा करती है, जो अपने सङ्कल्पों को अपने जीवन में अपनी कार्यक्षमता एवं अध्यवसाय से पूरा भी करता है।

३६. प्रतिजन मुदयायतिर्विभिन्ना, तुरगवराः जवनाः गताश्च मन्दाः।
सरलसरणिकेतु कोऽपि सिद्धिं, कुटिलपथान् श्रयतेऽधिकं रमा नः।।[३६]

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए उन्नति के अलग-अलग मार्ग हैं। घोड़े तेज दौड़ते है; किन्तु हाथी मन्दगामी होता है। कोई भी व्यक्ति सरल न्यायोचित मार्ग से आत्मसिद्धि पाये तो उचित ही है; किन्तु कुटिल मार्गवालों को तो दण्डित करना ही होगा, क्योंकि राजसत्ता, प्रायः उपद्रवों के प्रति उदार होती है। राजलक्ष्मी प्रायः उद्दण्ड विद्रोहियों की ओर विशेष आकृष्ट होती हैं।

३७. जनशिरसि पदं निधाय धीमान् रविरिव लोकतमो विधूय भाति।
यदपि तमसि नन्दितान्तरात्मा नहि सहते शठकौशिको विभातम्।।[३७]

बुद्धिमान पुरुष समाज का अज्ञान दूर करते हुए समाज के सिर पर पैर रखकर अपने हितावह कार्यों के कारण सुशोभित होता है, जैसे संसार के सिर पर पैर (किरण) रखकर भी अन्धकार का नाश करने के कारण सूर्य यशस्वी ही होता है। हाँ, यह ठीक है कि अन्धकार के आवरण में आनन्द लूटनेवाले दुष्ट उल्लुओं को प्रकाश से जगमगाता हुआ प्रभात काल असहनीय ही प्रतीत होता है।

३८. अभिलषितपदे निलीनचेताः कुटिलरमा कुलटा जिगीषुनीतिः।
सघन तिमिरकण्टकं हसन्ती भजति मनोरथमुग्रसाहसाङ्कम्।।[३८]

चञ्चला लक्ष्मी, कामुकी युवती तथा विजयाभिलाषी व्यक्ति की नीति अपने अभीष्ट लक्ष्य में अपने हृदय को बाँधे रहती है। जिस प्रकार सङ्केत स्थल पर जाने वाली कुलटा कामिनी मार्ग में बाधास्वरूप आँधी, पानी, अन्धकार तथा कांटों की उपेक्षा करती हुई, उपहास करती हुई, साहस का आश्रय लेकर अपने मनोरथ को, कामदोह को सफल बनाती है वैसे ही, चञ्चला लक्ष्मी तथा विजयेच्छु की नीति भी लोकमत की उपेक्षा करके, बाधाओं को रौदती हुई आत्म मनोरथ को पूर्ण बनाती है।

षष्ठ सर्ग– इस सर्ग में षड्ऋतु वर्णन है। देखा जाय तो सभी श्लोक सुष्ठु प्रतीत होते हैं, कोई भी श्लोक छोड़ने की इच्छा नहीं होती है। यह श्लोक बहुत ही सुन्दर लगता है–

३९. कोपाविवेकौ सहजाविष द्वौ यत्कामसाफल्यसहायिवृत्ती।
परान् नयन्तावपि गर्तपूरे नूनं विभीतोऽश्रुतवर्त्मनोऽस्मात्।।[३९]

कोप और अविवेक दोनों ही मनोभाव प्रायः सहजात हैं एक दूसरे के आश्रित हैं। ये दोनों ही उसकी (अफ़जल खान) इच्छा पूर्ति में सहायक भूमिका निभाते हैं दूसरों को तो ये दोनों भले ही विनाश के गड्ढे में फेंक दें; किन्तु इस अश्रुतवर्त्मा, भ्रष्ट मार्ग वाले अफ़जल खान से निश्चय ही डरते हैं। (यही कारण है कि कोप और अविवेक से भर कर भी यह दुर्दशा में नहीं पड़ता)।

४०. आवर्तरौद्रेतरिकश्मलेऽब्धावर्हा किमेषोडुपसन्तितीर्षा।
झञ्झाऽऽशुगाऽऽश्लिष्टतमस्विनी किं क्षमेत दीपोत्सुकमुग्धदृष्टिम्।।[४०]

उत्ताल तरङ्गों के कारण भयङ्कर, अपनी प्रचण्डता से नाव की परवाह न करनेवाले इस विपत्ति सागर में डोगी से पार उतरने की इच्छा कहाँ तक उचित है? अथवा झञ्झावात से भरी हुई काली रात क्या क्षुद्र लघु दीपक की उत्सुकता पूर्ण मुग्ध दृष्टि को सहन करेगी। अर्थात् यह अफ़जल खान भयङ्कर लहरों से उद्वेलित महासमुद्र के समान है, छोटी सेना से इसका सामना करना आत्मघाती दुस्साहस है। या यह आंधी-तूफान से भरी काली रात के समान है एक छोटा दीपक इसके वेग के सामने कभी नहीं टिक सकता।

४१. शुभायतिं चिन्तयता तु नित्यं रक्ष्या स्थितिः स्वोद्यमकामधेनुः।
नूनं सुयोगेऽवसरेङ्गितज्ञं प्रयोगलुब्धा द्रुतमेति सिद्धिः।।[४१]

शुभ कल्याणमय भविष्य की कामनावाला विवेकी मनुष्य सदैव आत्मस्थिति की रक्षा करे उसे सम्पन्न बनावे, क्योंकि वही प्रयत्न को, किये जाने वाले कार्यों को सफल बनायेगा निश्चय ही, अवसर के सङ्केत को समझने वाले व्यक्ति के पास समय पर उसके प्रयोग व्यापार से आकृष्ट होकर कामिनी के समान सिद्धि दौड़ कर अपने आप पहुँच जाती है। जिस प्रकार सुयोग मिलने पर मौके का इशारा समझनेवाला पुरुष तदनुकूल आचरण द्वारा परकीया को आकृष्ट कर लेता है तथा वह स्वयं अनुरक्तमना होकर उसके पास पहुँच जाती है वैसे ही क्रियासिद्धि भी समय की गति को समझने वाली तथा अनुकूल कार्य करनेवाले चतुर व्यक्ति के पास दौड़ती चली जाती है।

४२. पृष्ठे वनाग्निः पुरतः पयोधिर्दैवो गृहीताशनिरुत्तमाङ्गे।
प्रतिष्ठिते वर्त्मनि गच्छतोऽपि पदं निगृह्णन्ति शठान्तरायाः।।[४२]

मानव जीवन भी विषम विडम्बनाओं का समवाय ही है। इच्छा रखकर सन्मार्ग पर चलता हुआ भी व्यक्ति बहुधा वरवस रोक दिया जाता है। घटनाक्रम उसे आगे बढ़ने ही नहीं देता और व्यक्ति विवश हो भग्न हृदय होकर बिखर जाता है। पीछे जाये तो दावानल मुँह खोले खड़ा रहता है, आगे समुद्र अपनी लहरों से भयभीत कर रहा है, सर पर दुर्भाग्य वज्र लेकर मँडरा रहा है; सज्जनोचित मार्ग पर चलते हुए व्यक्ति के पैरों को शठ अधम बाधाएं अपने दुस्तर जाल में फांस लेती हैं।

४३. अधिक्षिपन्ती पथि दम्भमोहात् परानभीष्टेऽपि तमोऽभिरक्तिः।
अहङ्कृतिस्वादुसुरावमत्ता पिपद्यते जातिरनुत्तमाऽपि।।[४३]

स्वयं अन्धकार में डूबकर भी जो जाति दम्भ के नशे में सुपथ चलने वाली दूसरी जातियों के बारे में निकृष्ट भाव रखती है तथा अहङ्कार की सुस्वादु सुरा का पान कर मदहोश रहती है वह जाति चाहे कितनी ही श्रेष्ठ क्यों न हो, विपत्ति के गर्त में अवश्य ही गिरती है।

४४. पैत्र्येण धम्नाऽपि धृतस्थितीनामनुद्यमो हन्ति पदं निगूढ़म्।
वधूरिव श्रीः पुरुषार्थकामा नान्यानुबन्धं प्रणयीकरोति।।[४४]

परम्परया प्राप्त पैतृक सम्पत्ति से सम्पन्नता का दम्भ करने वालों की अकर्मण्यता उद्यमहीनता उनकी स्थिति को गूढ़ रूप से नष्ट

कर देती है। दूसरे के धन से दीर्घकाल तक कोई कर्महीन व्यक्ति धनी नहीं रह सकता। लक्ष्मी तो नवोढ़ा नायिका के समान पुरुष में पौरुष चाहती है। पौरुषहीन व्यक्ति अपनी पुंसत्वहीनता के बदले विश्व का सम्पूर्ण वैभव देकर भी नवयुवती वधू का प्रेम नहीं पा सकता। उसी प्रकार लक्ष्मी भी पुरुषार्थहीन व्यक्ति से सदा ही दूर रहती है।

४५. मनोहरैर्वा मधुरस्तवैः किं प्रसाद्यतेऽसृक्प्रणयी मृगेन्द्रः।
सदार्जवं किं छलधूर्वहेषु दौरात्म्यमार्गं न परिष्करोति।।[४५]

खून का प्यासा सिंह भी भला कहीं मीठी मनोहर स्तुति से प्रसन्न होगा। सिंह खून का प्यासा होता है उसे किसी की प्रार्थना से क्या काम है? इसी प्रकार छल प्रपञ्च करने वाले दुष्ट लोगों के लिए सरलता का प्रदर्शन बेकार है इससे उनकी नीचता उत्साहित होगी, उन्हें निन्दनीय कृत्य करने की प्रेरणा ही मिलेगी। सत्य है कि विनयशीलता उत्तम गुण है, मधुर वचन बोलना चाहिए, पर प्रश्न है, किससे? पात्र का विचार तो करना ही होगा।

४६. अनुद्यमात् किं परमग्रदैवं सुदैवमारब्धविधेः परं वा।
ध्रुवं सदुद्योगकशाग्रपाणिर्जनः समारोहति दैवपृष्ठम्।।[४६]

अकर्मण्यता से बढ़कर दुर्देव कौन है? आलस्य, अकर्मण्यता ही दुर्देव है, इसी प्रकार कार्य का शुभारम्भ ही सबसे बड़ा सदैव है। सदुद्योगरूपी चाबुक को हाथ में लेकर मनुष्य दैव की पीठ पर सवारी करता है। सदुद्योग में लगा हुआ प्राणी दैव को अपने सङ्केत पर नचाता है।

४७. सदार्जवानार्जवयोरजस्रं वैरानुबन्धोऽतिनिमित्तभूमिः।
हेतून् यदृक्षाप्रभवान् प्रकल्प्य निर्यातनं वाल्छति बद्धकक्ष्यः।।[४७]

सरलता और वक्रता में तथा सज्जन और दुष्ट में सनातन वैरानुबन्ध है। उस विरोध के लिए निमित्त ढूढ़ने की आवश्यकता नहीं। यह वैर स्वेच्छापूर्वक वैर का कल्पित कारण उत्पन्न कर, कमर कसकर विरोध की समाप्ति चाहता है। वक्रता सरलता को मिटा देना चाहती है। अतः हम यही कह सकते हैं कि सज्जनता एवं दुष्टता में अनाक्रमण-सन्धि व्यर्थ है।

४८. परार्जवं छिद्रमिवावगन्तुः साध्ये परोत्सादनभाजि नूनम्।
असाधुजुष्टान्यपि साधनानि दुरोदराऽऽराध्यमुपाहरन्ति।।[४८]

विपक्षी की सरलता, शील, न्यायबुद्धि आदि को उसका दोष माननेवाला विरोधी अपना लक्ष्य मात्र उस विपक्षी को मिटा देना ही समझता है। दुष्टों से अधिष्ठित विविध साधन भी स्वयं ही उस दुश्शील अनृजु व्यक्ति की सहायता के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। समाजविरोधी आचरण वाले तत्त्व अनायास ही एकजुट होकर आत्मविरोध प्रकट करते हैं।

४९. विशीर्णपर्णोऽपि विषद्रुमः किं जहाति जीवव्यसनाऽभिचारम्।
स्वदेशगुप्त्यै प्रतिवर्त्मनां तत् समूलमुन्मूलनमेव पन्थाः।।[४९]

यदि किसी विषवृक्ष के पत्ते झड़ जाय तो, क्या वह जीवधारियों को विपन्न करने का विषमूर्च्छित करने का अपना अधिकार भी छोड़ देगा? अतः विपन्न भी शत्रु, अहित ही करेगा। अस्तु स्वदेश रक्षा के लिए शत्रुओं का समूल उन्मूलन ही एकमात्र रास्ता है।

५०. यथार्थबोधोदितसत्वसम्पदां विचूर्णिताध्वाधमकण्टकैनसाम्।
क्षमेत सङ्कल्परविं प्रबाधितुं तमोऽपि किं संशयगह्वरस्थिति।।[५०]

जिन मनस्वियों ने उचित विवेक पर निर्भर होकर आत्मस्थिति का निर्माण किया है, जिन्होंने अपने मार्ग में बिखरे अधम काँटों के समान आपत्तियों को चूर्ण कर दिया है उन मनस्वियों के सङ्कल्प सूर्य को भला संशयपूर्ण गुफाओं में रहने वाला अन्धकार किस प्रकार रोक सकता है।

५१. पुमानुपायाप्रवणः शठोद्यमं विदन्नपि छद्मपथेऽवसीदति।
पुनर्नवीकर्तुमतन्द्रिलः कथं सहेत पूर्वस्खलितं जनोऽथवा।।[५१]

प्रवञ्चना, कुटिलता तथा इनके घातक व्यवसाय को जानता हुआ भी व्यक्ति उसके प्रतीकात्मक उपाय में अकुशल होने के कारण उस छद्मजाल फँसकर विपन्न होता है; किन्तु जो कर्मठ है, आलस्यरहित हैं, वे भला एक बार धोखा खा जाने के बाद फिर क्यों दुबारा उस कुटिलता के पञ्जों में फँसेंगे। व्यावहारिक बुद्धि वाला प्राणी एक बार भले ही विश्वास करने के कारण ठगा जाये; किन्तु फिर तो जीवन भर वह तत्परतापूर्वक कुटिलता की प्रवञ्चना को व्यर्थ करता रहेगा।

५२. स्वतन्त्रता शीलवधूरिवानिशं प्रवर्धते सर्वजनानुरक्षिता।
नृपे तु दैवव्यसनायितेऽपि सा प्रजाकुटुम्बैर्म्रियतेऽस्ततन्द्रिभिः।।[५२]

स्वतन्त्रता शीलवती कुलवधू के समान है। सम्पूर्ण जनों से सतत अनुरक्षित ही वह समृद्ध होती है। दुर्देववश यदि कहीं राजा को यह संसार छोड़ना ही पड़े तब भी प्रजाजन कुटुम्बियों के समान आलस्यरहित हो, इसका भरण-पोषण करते हैं। स्वतन्त्रता राष्ट्र की निधि है, चेतना है। केवल राजा या सेना का ही नहीं राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह इसकी सुरक्षा में तत्पर रहे।

५३. ध्रुवं महत्पुण्यतमोऽपि जीवने क्षणः कदाचिद्विरलो हि पूरुषम्।
तदीयसौहार्दविभूतशालिभिः शुभातिथेयार्हफलैर्निवेशते।।[५३]

व्यक्ति के जीवन में भी वह अत्यन्त पुण्यप्रद क्षण विरला ही होता है, जो आतिथेय के रूप में (आतिथ्य सत्कार करने वाले के रूप में) अतिथि विशेष के लिए सम्पूर्ण शुभाशंसा, विनयशीलता, औदार्य आदि आतिथेय के उपर्युक्त गुणों एवं भावों से उल्लसित अतिथि सत्कार करने वाले को धन्य करता है। आतिथ्य सत्कार भले ही गृहस्थ जीवन का सामान्य धर्म हो, पर वह क्षण तो बड़ा दुर्लभ है जब व्यक्ति सम्पन्न हो, सत्कार करने की अभिलाषा भी हो तथा भाग्यवश ऐसा परम श्लाघनीय अतिथि देवता भी मिल जाय जिसका भावपूर्ण अत्यन्त उन्मुक्त हृदय से पूर्ण समर्पण भावना से आतिथ्य किया जाय। (सौभाग्य की बात है कि वीर शिवराज को वह दुर्लभ क्षण सुलभ था)।

५४. सपत्नमाकल्पितरेणुमन्दिरान् निरीक्ष्यवत्सान् गुरवोऽपि सस्मितम्।
मुदं दधत्यद्भुतवास्तुकौशले विचारवन्तोऽपिन तदुद्यमादराः।।[५४]

बड़े लोग भी, गुरुजन भी, मनोयोगपूर्वक धूल के घरौदे बनाने वाले छोटे-छोटे बच्चों को मुस्कान के साथ देखकर उनकी वस्तुकला (गृह निर्माण कौशल) पर प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। ठीक है कि वे अतिविवेकी हैं, उन घरौंदों की निस्सारता को जानते हैं तथापि बच्चों का मन रखने के लिए, उनके उत्साह को बढ़ाने के लिए प्रसन्न ही होते हैं।

५५. शताब्दसेवनाग्रहं निमेषमात्रमेव वा
तदेव जीवितं यदक्षयायुषे महीयते।

अशेषसंहरोऽपि किं कृतान्तदुर्धराशनि-
रमर्त्यसेव्यमर्त्यविक्रमे क्रमाय चेष्टते।।"[५५]

चाहे सौ वर्ष का हो या क्षणमात्र का, वही जीवन है, जो अनन्त काल तक प्रतिष्ठित रहे। ठीक है कि यमदण्ड सब कुछ नष्ट कर देता है; किन्तु देवताओं से सेवित मानवविक्रम पर उसका क्या वश चल सकता है।

५६. "जना हि देशसम्पदोऽभिनन्दिताध्वसाधवः
स्वदेशसिद्धये तमोमहागुहापतिष्णवः।
शुभाः शुभेन कर्मणा विगर्हितेन गर्हिताः
स्वयं न केवलं नियुञ्जते स्वसन्ततीरपि।।"[५६]

उन्नत मार्ग पर चलने वाली जनता ही देश की वास्तविक सम्पत्ति है। वह अपने देश के कल्याणार्थ तिमिराच्छन्न गुफा में भी गिर सकती है। अच्छे कर्मों से अच्छी तथा नीच कर्मों से नीच कही जाने वाली जनता अपने साथ ही भावी सन्तानों के भाग्य को भी बाँध लेती है।

५७. किमु लब्धपदोऽपि लुब्धकात्मा वृणुते स्वाधमवर्त्मने न रागम्।
मधुपूरमुखोऽपि किं मृगेन्द्रः क्षतजाऽऽस्वादमुपेक्षते कदापि।।[५७]

अभिलषित शिकार प्राप्त करने पर भी क्या बहेलिये का मन शिकार करने का इच्छुक नहीं होगा। यदि सिंह का मुख मधु से भर दिया जाय तब भी क्या वह रक्त पीने की इच्छा की उपेक्षा करेगा? सिंह का स्वभाव रक्त पीना है। उसे कुछभी उत्तमोत्तम पदार्थ भी क्यों न दिया जाय, रक्त के आस्वादन के लिए वह सदैव सचेष्ट रहेगा। (औरंगजेब भले ही दिल्ली का बादशाह हो गया, किन्तु फिर भी बीजापुर को हस्तगत करने का उसका उत्साह बढ़ता ही गया। असन्तुष्टाः द्विजाः नष्टाः सन्तुश्टास्तु महीभृतः इसी सत्य का उद्घोष कर रहा है।)

५८. यथार्थलोकव्यवहारपण्डिता दुरापदाराधनमात्रवर्तिनीम्।
अचक्षुषं श्रद्दधते न कल्पनामपीष्टकामां विषकन्यकामिव।।[५८]

जो व्यक्ति लोकव्यवहार में कुशल होते हैं वे कल्पना को विषकन्या के समान से ही प्रणाम कर लेते हैं, कल्पना के वशीभूत

होकर अपना विनाश नहीं करते, जिस प्रकार विषकन्या केवल भयङ्कर विपत्ति ही अपने संसर्ग द्वारा दे सकती है, अपनी सङ्गतिजन्य स्थिति को नहीं देखती तथा आकर्षण द्वारा सहज ही व्यक्ति को वशीभूत कर लेती है, उसी प्रकार कल्पना भी यथार्थ के प्रति आंख बन्द कर रखती है, उसका सङ्ग केवल विपत्ति का आवाहन करता है तथा वह मन को अच्छी भी लगती है; किन्तु उसका साहचर्य व्यक्ति के विनाश का द्वार है।

५९. असंभवं नाम हतोद्यमेऽखिलं क्रियारमाणां न किमप्यसम्भवम्।
हिनस्त्यचेष्टस्य मतिं यदेव तत् क्रियाधिरूढे तनुते नवोदयम्।।[५९]

उद्यमहीन आलसी व्यक्ति के लिए सब कुछ असम्भव ही है तथा कर्मठ व्यक्ति के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है, चेष्टारहित व्यक्ति के विचार को जो भाव नष्ट कर देता है वही कर्त्तव्यारूढ़ प्राणी के लिए अभ्युदय का नया द्वार खोल देता हैं। कर्मठता तथा अकर्मण्यता परस्पर विरोधी है। अकर्मण्यता केवल बाह्य दोष ही नहीं है। यह बुद्धि को भी कुण्ठित कर देती है। वैसे ही कर्मठता जीवन का प्रतीक है, क्योंकि कर्मठता व्यक्ति को गतिशील बनाती है तथा उस व्यक्ति के लिए ही जगत् की सृष्टि है। अस्तु, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

६०. अर्थानर्थपरिज्ञातुः स्वपरौजोविदो ध्रुवा
फलिनी विधिसम्पत्तिः सर्वदोदयमङ्कते।[६०]

अर्थ और अनर्थ का विवेक रखनेवाले, पक्ष एवं विपक्ष की शक्ति को जानने वाले, नीतिमान व्यक्ति की सुनिश्चित फलवती क्रिया-पद्धति सर्वदा अभ्युदय प्राप्त करती है।

६१. को वराको नरो नाम नेहते नित्यमङ्गलम्
अनुरागवती किन्तु पौरुषे सम्पदुत्सुका।[६१]

कौन मनुष्य संसार में सदा सर्वदा अपना मङ्गल नहीं चाहता; किन्तु यह सर्वविदित तथ्य है कि वैभवशीलता प्रायः पौरुष में ही उत्सुकतापूर्वक आत्मप्रेम प्रकट करती है। अर्थात् पुरुषार्थी के पास ही लक्ष्मी रहती है। शक्तिहीन अभ्युदय का पात्र नहीं हो सकता।

६२. न देयोऽवसरो जातु द्विपदे शोषणोन्मुखः
तृप्तोऽप्युत्क्रमते जाल्मो रक्तपायीव केसरी।[६२]

शत्रु के लिए कभी भी शोषणोन्मुख अवसर नहीं देना चाहिए। यदि शत्रु को शोषण करने का अवसर दिया गया तो एक बार तृप्त होकर भी वह चुपचाप नहीं बैठेगा अपि तु रक्तपायी सिंह के समान वह नृशंस फिर वैसी ही चेष्टा (शोषण) करेगा।

६३. आत्मश्रेयः प्रतिष्ठायै जीवनं जीवनं मतम्।
अथवा किन्न जीवन्ति वशवः पक्षिणोऽधमाः।।[६३]

जीवन तभी जीवन है जब आत्मकल्याण की प्रतिष्ठा में वह उपयोगी सिद्ध हो। यों तो अधम पशु-पक्षी भी जीते हैं।

६४. सर्वप्लोषं समालोच्य पञ्चषाणां बलिर्हठात्।
वेश्मनां ग्रामरक्षायै नाश्लाघ्यो विषमे विधौ।।[६४]

यदि गांव के जल जाने का सङ्कट उपस्थित हो गया हो तो गांव को बचाने के लिए यदि पांच-छः घरों को उजाड़ना पड़े तो उस विषम परिस्थिति को देखते हुए इस कार्य की निन्दा नहीं करनी चाहिए अर्थात् बड़े लाभ के लिए छोटे लाभ का त्याग कर देना चाहिए।

६५. लोकेषु शास्त्रवचसो विजने पिशाचा
नग्ना नवाम्बरजुषोऽपि सुवर्णमत्ताः।
जीवन्ति यादवधमाः परशीलकामाः
का सभ्यता, पशुकुलं किमतोऽपि चिन्त्यम्।।[६५]

समाज में शास्त्रज्ञानी कहलाकर अकेले में पिशाच का व्यवहार करने वाले, नये वस्त्रों के पहनने पर भी हमेशा नंगे, सुवर्ण से उन्मत्त चेतना वाले,दूसरों को शीलभ्रष्ट करने वाले, अधम मनुष्य जब तक जीवित रहेंगे तब तक इस सभ्यता का क्या अर्थ है, वह केवल नाममात्र की है। पशु आचरण भी इससे निन्द्य नहीं है। पशु तो विवेकहीन है अतः प्रवृत्ति द्वारा सञ्चालित होता है; किन्तु मनुष्य तो विवेकी है, फिर भी पशु सुलभ आचरण करता है।

६६. ध्रुवंमनःस्वास्थ्यपुरस्कृतं वपुर्विभर्ति नैरूज्यफलं शरीरिणाम्।
मनः प्रदेशाशनिगूढ़वेदनां शरीरमादर्शयतीव बिम्बिताम्।।[६६]

सत्य है कि मानसिक स्वास्थ्य से सम्पन्न होकर ही शरीर स्वास्थ्य का उपभोग करता है, शरीर के नीरोग रहने के लिए मन का नीरोग होना, अत्यन्त आवश्यक है। मन के अन्तराल में प्रविष्ट अशनि की गूढ़ वेदना को शरीर दर्पण के समान प्रतिबिम्बित कर देता है। मन का कष्ट शरीर में झलक जाता है।

६७. असङ्गबुद्धेरपि कर्मयोगिनो न लोकसन्धां समुपेक्षते विधिः। जनोऽथवा को न मदासवोन्मदो वदेत् स्वयुक्तस्थितिमुच्चकैरिह।।[६७]

अनासक्तबुद्धि, फलनिरपेक्ष, कर्मयोगी का क्रिया-कलाप भी लोकस्थिति का, समाज की भावनाओं का अनादर, तिरस्कार नहीं करता। यदि ऐसा न हो, यदि लोकमर्यादा का ध्यान रखा जाय तो कोई मदहोश शराबी भी छाती ठोंककर अपनी स्थिति की श्रेष्ठता को गला फाड़कर उद्घोषित करेगा, अतः लोकविवेक ही सामान्यतः वह आधार है जिस पर परीक्षित होकर व्यक्ति भला या बुरा कहलाता है।

६८. नूनं पराधीनवतस्तु पुंसो व्यपेतबाधः स्वपथाभिमानः। विडम्बनैवामिषलोलवृत्तेः काकस्य मेध्यव्रतसाधनेव।।[६८]

वस्तुतः देखा जाय तो पराधीन मनुष्य का नैतिक अधिकार ही नहीं है कि उन्मुक्त भाव से अपनी स्थिति पर किसी प्रकार भी गर्व, आत्मश्लाघा व्यक्त करे। यह तो वैसा ही लगेगा जैसे मांस के टुकड़े के लिए चञ्चल वृत्तिवाला कौआ पवित्र आचरण की साधना करें। जैसे पवित्रता का नाटक करना कौए के लिए विडम्बनामय है वैसे ही गुलाम व्यक्ति का अपनी कुलकीर्ति की बड़ाई करना भी गर्हित ही है।

समीक्षा– सूक्तियों का अध्ययन करने एवं उनके आदर्श को अपनाने की परम्परा का आज भी पालन किया जा रहा है। श्री उमाशङ्कर शर्मा त्रिपाठी जी ने महाकाव्य में जीवन में सफल व्यक्ति बनने हेतु, महान् कार्य करने हेतु, मार्गदर्शन करने हेतु अनेक आदर्शों को अपने शिक्षाप्रद श्लोकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं स्वतन्त्रता शीलवधू के समान है, सम्पूर्ण व्यक्तियों से सतत् अनुरक्षित ही वह समृद्ध होती है। स्वतन्त्रता राष्ट्र की निधि है, चेतना है। राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह इसकी सुरक्षा में तत्पर रहे।[६९] त्रिपाठी

जी की यह शिक्षा सार्वकालिक है वह भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में सर्वथा नवीन प्रतीत होती है। इसी तरह त्रिपाठी जी ने महाकाव्य में अनेक आदर्श प्रस्तुत किये है जो हर दृष्टि से हर काल में महत्त्वपूर्ण है। वे कहते है 'पुरुषार्थी को ही लक्ष्मी प्रप्त होती है।'[७०] इससे समाज में सभी को 'पुरुषार्थ' करने की शिक्षा प्राप्त होती है। इस प्रकार श्री उमाशङ्कर शर्मा जी ने महाकाव्य में जहाँ एक ओर सांस्कृतिक भूगोल का दर्शन कराया, प्रमुख व्यक्तियों एवं पात्रों से परिचय कराया वही जीवन दर्शन के आदर्श को भी प्रस्तुत किया है। यह महाकाव्य इन शिक्षाप्रद श्लोकों के कारण एक ऐसा रत्नभण्डार बन गया है जिसमें भाँति-भाँति के बहुमूल्य रत्न होते हैं।

सन्दर्भ

१. क्षत्रपतिचरितम्, १.१०.
२. वही, १.४९.
३. वही, १.७५.
४. वही, १.७९.
५. वही, १.९१.
६. वही, २.२९.
७. वही, २.३२.
८. वही, २.४१.
९. वही, २.६३.
१०. वही, २.११६.
११. वही, २.१७९.
१२. वही, ३.२५.
१३. वही, ३.५४.
१४. वही, ३.६४.
१५. वही, ३.९६.
१६. वही, ३.१०५.
१७. वही, ३.१२५.

१८. वही, ४.७.
१९. वही, ४.१२.
२०. वही, ४.२१.
२१. वही, ४.३१.
२२. वही, ४.७५.
२३. वही, ४.८३.
२४. वही, ४.८४.
२५. वही, ४.९४.
२६. वही, ४.१५५.
२७. वही, ४.१६५.
२८. वही, ५.३५.
२९. वही, ५.४२.
३०. वही, ५.४४.
३१. वही, ५.४६.
३२. वही, ५.४७.
३३. वही, ५.४८.
३४. वही, ५.५०.
३५. वही, ५.५४.
३६. वही, ५.५९.
३७. वही, ५.६०.
३८. वही, ५.६१.
३९. वही, ७.६.
४०. वही, ७.८.
४१. वही, ७.११.
४२. वही, ७.२०.
४३. वही, ७.७२.
४४. वही, ७.७६.
४५. वही, ७.७९.
४६. वही, ७.८६.

४७. वही, ७.८७.
४८. वही, ७.८८.
४९. वही, ७.९०.
५०. वही, ८.२.
५१. वही, ८.९.
५२. वही, ८.२३.
५३. वही, ८.३१.
५४. वही, ८.३२.
५५. वही, ९.४२.
५६. वही, ९.४३.
५७. वही, १०.५.
५८. वही, ११.६४.
५९. वही, ११.८९.
६०. वही, १२.५४.
६१. वही, १२.६४.
६२. वही, १२.६६.
६३. वही, १२.८७.
६४. वही, १२.१३६.
६५. वही, १३.२२.
६६. वही, १४.८९.
६७. वही, १७.२०.
६८. वही, १८.२६.
६९. वही, ८/२३.
७०. वही, १२/६४.

*****

उपसंहार

उपसंहार

'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य के विशद विवेचन एवं सूक्ष्म समीक्षात्मक अध्ययन के आधार पर श्री उमाशङ्कर शर्मा त्रिपाठी जी एक कुशल कवि, सिद्धहस्त छन्द ज्ञाता, मीमांसक, वैयाकरण एवं रसिक विद्वान् सिद्ध होते हैं। उनके श्लोकों में माधुर्य तथा कलात्मक सौन्दर्य के साथ ही वैदग्ध एवं पाण्डित्य का मणिकाञ्चन समन्वय दृष्टिगोचर होता है। उनके द्वारा विरचित 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य संस्कृत-साहित्य की अनुपम निधि है। उमाशङ्कर शर्मा जी ने इस महाकाव्य के माध्यम से शिवस्वरूप शिवाजी के जीवनवृत्त को सहृदय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। कवि ने 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य के निर्माण हेतु अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों का अध्ययन किया, (जिसका ज्ञान हमें 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य के अध्ययन के उपरान्त होता है) जिसके फलस्वरूप यह उच्चकोटि का ऐतिहासिक महाकाव्य सहृदय पाठकों के समक्ष उपस्थित हुआ।

श्री उमाशङ्कर शर्मा प्रणीत इस महाकाव्य का मूलस्रोत १६००-१६७४ ई० का इतिहास है। इस बात की स्पष्ट जानकारी ग्रन्थ के अध्ययन से हो जाती है। प्रस्तुत ग्रन्थ में जीजाबाई के विवाह, शिवाजी की उत्पत्ति, शिवाजी के राज्याभिषेक तक की अवधि उपर्युक्त काल में समाहित हो जाती है। अतः हम यही कह सकते हैं कि महाकाव्य का मूलस्रोत १६००-१६७४ ई० तक का इतिहास है।

'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य के अध्ययनोपरान्त विदित होता है कि कथात्मक दृष्टि से 'इतिहास' के साथ इसका पूर्णतः साम्य है; किन्तु कहीं-कहीं वस्तुगत वैचित्र्य को उत्पन्न करने के लिए कवि ने स्वकल्पित नवीन परिकल्पना का समावेश कर प्रसिद्ध 'ऐतिहासिक कथानक' को प्रस्तुत करते समय अपनी मौलिक उद्भावना का परिचय दिया है। इतिहास पर आधारित इस महाकाव्य के प्रस्तुतिकरण में कवि की दृष्टि सदैव इतिहास के संक्षिप्त प्रसङ्गों को विस्तृत, किन्तु कलात्मक ढंग से प्रतिपादित करने की ओर रही है। परिणामस्वरूप एक ओर जहाँ इतिहास और 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य में कथात्मक, भावात्मक एवं वर्णनात्मक दृष्टि से अनेक साम्य उपलब्ध हाते हैं वहीं दूसरी ओर स्वरूप तथा उद्देश्य आदि से सम्बद्ध भेद, घटनागत सूक्ष्म वैषम्य, विरुद्ध वर्णन, घटना विपर्यय, इतिहास के अवर्णित प्रसङ्गों का उल्लेख आदि अनेक प्रकार के अन्तर भी दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं कथानक को संक्षिप्त करने के सफल प्रयास में अधिकतर घटनाओं का साङ्केतिक रूप में ही उल्लेख मात्र हो पाया है तो कहीं कथानक विस्तृत करने के प्रयोजन से ऐतिहासिक घटनाओं में काल्पनिकता का पुट विस्तृत मात्रा में उपस्थित कर दिया गया है। इस महाकाव्य में कई प्रसङ्ग तो केवल आंशिक रूप से ही उल्लिखित हुए हैं– यथा जीजाबाई के विवाह का प्रसङ्ग।

भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से 'क्षत्रपतिचरितम्' एवं 'रघुवंश' महाकाव्य में जो साम्य प्राप्त होते हैं, उसे कवि का असामर्थ्य नहीं अपितु कवि का अनुकरणीय स्वभाव कहा जा सकता है। कवि व्यास एवं कालिदास को अपना आदर्श मानते हैं जैसा कि 'क्षत्रपतिचरितम्' के 'आमुख' के अध्ययनोपरान्त विदित होता है। 'रघुवंश' के भाव एवं वर्णन शैली को अपने ढंग से अपनाकर तथा उनको शैली परिवर्तन के साथ कलात्मक पद्यों में प्रस्तुत कर कवि उमाशङ्कर शर्मा जी ने अपने उदार दृष्टिकोण तथा कालिदास के प्रति आदर-भाव का परिचय दिया है। यही कारण है कि 'क्षत्रपतिचरितम्' में सर्वत्र ही उमाशङ्कर शर्मा की नवीन उद्भावनाएँ चारु एवं संयुक्त अभिव्यञ्जना प्रणाली के रूप में दृष्टिगत होती है।

'क्षत्रपतिचरितम्' में उमाशङ्कर शर्मा ने 'इतिहास' की भाँति ही उसकी अन्य प्रासङ्गिक कथाओं को भी यथासम्भव किसी न किसी रूप में निबद्ध करने का प्रयास किया है। विस्तृत कथाओं को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने के कारण 'क्षत्रपतिचरितम्' में कहीं-कहीं अर्थबोध में क्लिष्टता का अनुभव भी होता है और कवि की काव्यात्मक कला का मर्म समझने, उन कथाओं के विषय में पूर्ण विवरण ज्ञान की जिज्ञासा शान्त करने के लिए इतिहास का आश्रय लेना पड़ता है। वस्तुतः 'क्षत्रपतिचरितम्' में कथात्मक दृष्टि से कवि की प्रतिभा की परख उसके घटनागत सौन्दर्य या वैचित्र्य द्वारा नहीं अपितु 'इतिहास' के प्रमुख अंशों को पूर्ण विवरण के साथ प्रस्तुत करने से होती है।

काव्यात्मक दृष्टिकोण से उमाशङ्कर शर्मा भाववादी एवं कलावादी दोनों हैं, अतः 'क्षत्रपतिचरितम्' का भावपक्ष एवं कलापक्ष चरमोत्कृष्ट रूप में सुधीजन के समक्ष उपस्थित होता है। साधारण एवं भावात्मक प्रायः सभी प्रकार के प्रसङ्गों में कवि की अभिव्यञ्जनापूर्ण प्रणाली श्लिष्ट तथा अलङ्कृत पद्यों का प्रयोग एवं शब्दार्थ चित्रों का गुम्फन आदि दर्शनीय है।

उमाशङ्कर शर्मा की कल्पना इस काव्यात्मक कृति में आद्योपान्त विभिन्न रूप धारण कर सहृदयों को आनन्दित करती है। उनकी कल्पनाशक्ति की यह अनुपम विशिष्टता है कि विभिन्न अलङ्कारों से अलङ्कृत होकर वह शब्द सौन्दर्य के साथ ही एक अपूर्व अर्थ-सौन्दर्य का भी सर्जन करती है, जिससे मस्तिष्क एवं हृदय दोनों का युगपत् तोष होता है।

'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य में कवि की दृष्टि कथावस्तु के प्रति नहीं अपितु उसको वैचित्र्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने की ओर रही है।

उमाशङ्कर शर्मा लेखनी के इतने धनी रहे हैं कि शब्द बिना किसी प्रयास के भावों, पदों या वाक्यों में स्वतः गुम्फित हो जाते हैं।

'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य अलङ्कारों से सुसज्जित, काव्य गुणों से विभूषित एवं रसमय १९ सर्गात्मक काव्य रचना है। इसकी भाषा प्राञ्जल है जिसमें समासयुक्त पदावली का भी प्रयोग हुआ है। काव्य-योजना सरल है। शब्दविन्यास हृदयग्राही हैं तथा स्थान-स्थान पर भाषा में प्रवाह एवं सरलता का दर्शन होता है। उमाशङ्कर शर्मा ने इस प्रकार अपनी व्यञ्जनात्मक एवं मधुरतम भाषा के उपयोग से इतने सरस काव्य की रचना की कि उसका काव्यात्मक सौन्दर्य प्रखर रूप से अलौकिक हो उठा है। 'क्षत्रपतिचरितम्' में शिवाजी को आदर्श नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाकाव्य में एक ओर जहाँ जीजाबाई की सांसारिक बन्धन से विरक्ति की समस्या को प्रस्तुत किया गया है वहीं दूसरी ओर उनके पुत्र प्रेम एवं राजनीतिक भूमिका को भी प्रस्तुत किया गया है। निःसन्देह 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि' न्याय से महाकाव्य में जन्मभूमि एवं जननी दोनों के महत्त्व एवम् आदरभाव को दर्शाने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने किसी नायिकापात्र का उल्लेख नहीं किया है, प्रायः काव्य अथवा महाकाव्य में नायक-नायिका के उपन्यास के बिना सभी रस एवं भाव आधारहीन हो जाते हैं। इसी तथ्य के प्रति सतर्क रहते हुए उमाशङ्कर शर्मा ने त्रयोदश सर्ग में शिवाजी के सैनिकों तथा आगरा की वेश्याओं के मध्य विशिष्ट प्रेमपूर्ण दृश्यों को उपस्थित किया तथा एक प्रबन्धकाव्य सदृश गम्भीरता का विन्यास किया है। अभिप्राय यह है कि 'क्षत्रपतिचरितम्' वीर रस का ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में 'क्षत्रपतिचरितम्' के साहित्यिक तथ्यों को यथासाध्य विवेचित किया गया है। निष्कर्ष रूप में 'क्षत्रपतिचरितम्' में वीर रस अङ्गीरस के रूप में निरूपित हुआ है तथा अन्य सभी रस वीर रस के पोषक अङ्ग रूप में प्रयुक्त हुए हैं। रसों तथा भावों की स्वाभाविक एवं नैसर्गिक-योजना अपने में पूर्ण समर्थ तथा सुन्दर है। अलङ्कारों के सन्दर्भ में यह परिलक्षित होता है कि 'क्षत्रपतिचरितम्' में अलङ्कारों को कृत्रिम रूप से लाने की प्रवृत्ति से मुक्त रखा गया है। मुख्यतः अनुप्रास, उपमा, श्लेष, यमक, रूपक, विरोधाभास आदि

अलङ्कारों का बाहुल्य है। इसके अतिरिक्त अन्य अलङ्कार भी स्थान-स्थान पर प्रयुक्त हुए हैं, जो सहज होने के साथ-साथ काव्य-सौन्दर्य के अभिधायक भी हैं। काव्यशास्त्रीय माधुर्य, ओज, प्रसाद, प्रमुख गुणों के द्वारा 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य को प्रौढ़ एवम् उदात्त रूप प्राप्त करने में सहज सामर्थ्य मिला है। 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य का प्रमुख छन्द उपजाति एवं वंशस्थ है तथापि छन्द विशेषज्ञ कवि ने पुष्पिताग्रा, अनुष्टुप, वसन्ततिलका, मालभारणी, रथोद्धता, मालिनी जैसे लोकप्रिय छन्दों के निरुपण में अपना कौशल-प्रदर्शन किया है। इस कुशलतापूर्ण छन्द-योजना ने कई नवीन और मौलिक रूप दृष्टिगत कर सौन्दर्य के क्षेत्र में रमणीयता प्रदान की है। यद्यपि 'क्षत्रपतिचरितम्' में श्रुतिकटु आदि काव्यदोष भी देखने को मिले है तथापि कवि के ओजपूर्ण काव्य प्रवाह में भाषा-वैशिष्ट्य प्रशंसनीय तथा वर्णनानुकूल है।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध 'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य पर आधारित है। इस महाकाव्य के नायक शिवाजी का चरित्र वर्तमान सन्दर्भ में भी अत्यन्त उपादेय है। शिवाजी एक आदर्श राजा थे, उनका चरित्र अत्यन्त दृढ़ एवं सशक्त था। शिवाजी वीर थे एवं साथ ही दयालु भी थे। शिवाजी मातृभक्त, गुरुभक्त एवं देशभक्त थे। शिवाजी ऐसे राष्ट्रनायक थे, जो अपनी युवावस्था में ही देश की रक्षा एवं समृद्धि के लिए कृतसङ्कल्प थे। शिवाजी का चरित्र आज भी हमें अनेक शिक्षाएँ देता है। शिवाजी के जीवन के विविध पक्ष ऐसे हैं जिन्हें हमें अपने जीवन में आत्मसात करना चाहिए।

'क्षत्रपतिचरितम्' महाकाव्य के निकष पर की गयी परीक्षा पर अत्यन्त खरा उतरता है। कवि ने इसमें महाकाव्य के अङ्गों के वर्णन के साथ भारत के गरिमामय अतीत को भी रेखाङ्कित किया है। कवि ने राष्ट्रभक्त चरितनायक के माध्यम से सांस्कृतिक व राजनैतिक अखण्डता को अक्षुण्ण बनाये रखने का सन्देश दिया है, इसीलिए प्रकृतकाव्य के प्रणेता ने कालजयी गांधी, नेहरु, टैगोर, तिलक, महामना मालवीय आदि व्यक्तियों के व्यक्तित्वों को भी महाकाव्य में सम्यक्

रूपेण अङ्कित किया है। कवि ने इस अमर कृति में अनेक महत्त्वपूर्ण अंशों एवं समस्याओं पर विचार किया है। प्रस्तुत महाकाव्य की शिक्षाएँ सार्वकालिक हैं। शोध की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है एवम् इस ग्रन्थ के अत्यन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दुओं पर अनेक शोधकार्य की आवश्यकता है।

इस महाकाव्य से यह स्पष्ट है कि कवि उमाङ्कर शर्मा का जीवन न केवल संस्कृत-साहित्य के लिये समर्पित था अपितु संस्कृत के माध्यम से राष्ट्र गौरव की रक्षा तथा राष्ट्रिय-चेतना के उन्नयन के प्रति भी कृतसङ्कल्प था।

*****

सहायक ग्रन्थ-सूची

सहायक ग्रन्थ-सूची

१. अजितोदयमहाकाव्यम् : कवि जगज्जीवनभट्ट, सम्पादक– नित्यानन्द दधीच, प्रकाशक– राजस्थानी ग्रन्थागार, प्रथम संस्करण, विक्रमाब्द २०४३

२. पं० अम्बिकादत्त व्यास – एक : लेखक- डॉ० कृष्णकुमार, प्रकाशक– प्रकाश अध्ययन बुक डिपो, बड़ा बाजार बरेली, प्रथम संस्करण, १९७१

३. अलङ्कार एवं छन्द : डॉ० उमेशचन्द्र पाण्डेय एवं डॉ० रविनाथ मिश्र, विद्यार्थी पुस्तक मन्दिर, गोरखपुर, संस्करण १९८५-८६.

४. अलङ्कार ध्वनि-विमर्श : डॉ० कृष्णचन्द्र चतुर्वेदः, हंसा प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण, १९९५.

५. अलङ्कार प्रक्रिया : डॉ० शङ्करदेव अवतरे, साहित्य सहकार, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९९४.

६. अलङ्कारों का ऐतिहासिक विकास : डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा', बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, प्रथम संस्करण, १९७४.

७. अलङ्कार सर्वस्वम् : राजानक रूय्यक मङ्खक, हिन्दी भाष्यानुवादक डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, १९७९.

८. आधुनिक संस्कृत साहित्यानुशीलन : परिसंवाद सागर विश्वविद्यालय, १९६५, उपाध्यायकृत

९. एकावली : ले० विद्याधर, सम्पादक- डॉ० ब्रह्ममित्र अवस्थी, इन्दु प्रकाशन, दिल्ली, सं० २०४७ विक्रमी

१०. औरङ्गजेब और हिन्दुओं के साथ : अखिलेश जायसवाल, शारदा पुस्तक भवन, सम्बन्ध इलाहाबाद, सं० १९८६.

११. काव्यतत्त्व विवेक : रमाशङ्कर तिवारी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९९६.

१२. काव्यप्रकाश : मम्मट, सम्पादक डॉ० नगेन्द्र, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पञ्चम संस्करण, संवत् २०३१ वि०

१३. काव्यप्रकाश : मम्मट, व्याख्याकार वामनाचार्य रामभट्ट झलकीकार, सम्पादक रघुनाथ दामोदर करमरकर, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, १९६५.

१४. काव्यप्रकाश : डॉ० श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार शिक्षा साहित्य प्रकाशक, सं० १९८१.

१५. काव्यमीमांसा : राजशेखर, सम्पादक- श्री सी०डी दलाल एवं पण्डित आर०ए० शास्त्री, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा, तृतीय संस्करण, १९३४.

१६. काव्यमीमांसा : राजशेखर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सं० १९७७

१७. काव्यादर्श : दण्डी, व्याख्याकार पण्डित रङ्गाचार्य रेड्डी शास्त्री, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, १९७०

१८. काव्यालङ्कार : रूद्रट, हिन्दी व्याख्याकार- डॉ० सत्यदेव चौधरी, परिमल पब्लिकेशन, द्वितीय संस्करण, १९९०.

१९. काशी की पाण्डित्य-परम्परा : पं० बलदेव उपाध्याय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण प्रथम, सं० १९८३.

२०. चन्द्रालोक : व्याख्याकार- डॉ० त्रिलोकीनाथ द्विवेदी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १९९६

२१. चन्द्रालोक : जयदेव, अनुवादक- सुबोधचन्द्र पन्त, मोतीलाल बनारसीदास, तृतीय संस्करण, १९७५.

२२. चन्द्रालोक : जयदेव, संस्कृत व्याख्याकार- विद्यानाथ, गुजराती प्रिण्टिंग प्रेस, बम्बई, १९२३.

२३. छन्दोमञ्जरी : श्री गङ्गादास, टीकाकार- श्री पण्डित हरिदत्त शास्त्री, श्री पण्डित शङ्करदेव पाठक, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी-१ (सं० २०१६)

चतुर्थ संस्करण।

२४. जयोदयमहाकाव्यम् : महाकवि भूरामल, सम्पादक- पं० पन्नालाल, ज्ञानोदय प्रकाशन, जबलपुर, प्रथम संस्करण, १९८९.

२५. तिलकयशोऽर्णव : अणे (माधव हरि), तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठम्, पुण्यपत्तनम्, प्रथमावृत्ति, १९७१.

२६. दशरूपकम् : श्री धनञ्जय, व्याख्याकार- डॉ० सुधाकर मालवीय, चौखम्बा अमरभारती, प्रथम संस्करण, १९७८

२७. दशरूपकम् : श्री धनञ्जय, सम्पादक- डॉ० श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, तृतीय संस्करण, १९७६.

२८. दशरूपकम् : श्री धनञ्जय, व्याख्याकार- डॉ० भालाशङ्कर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, दशम संस्करण

२९. ध्वनिमर्मप्रकाशः : रमेशकुमार पाण्डेय, ओरियण्टल बुक सेन्टर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९९८.

३०. ध्वन्यालोक : श्री आनन्दवर्धन, हिन्दी व्याख्याकार- आचार्य जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, पञ्चम संस्करण

३१. नाट्यशास्त्र : प्रथम भाग, व्याख्याकार- श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, १९७२.

: द्वितीय भाग, व्याख्याकार- श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७८.

३२. नानकचन्द्रोदय-

महाकाव्यम् : देवराजशर्मविरचित, सम्पादक- पं० व्रजनाथ झा, डायरेक्टर, रिसर्च इन्स्टीट्यूट, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९७७.

३३. भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ : तृतीयभाग, वि०दा० सावरकर, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, सं० २०२३ वि०

३४. भारत का बृहद् इतिहास, भाग-२ : मजुमदार, रायचौधुरी, दत्त, मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, १९९८.

३५. मध्यकालीन भारत : हरिश्चन्द्र वर्मा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, तृतीय संस्करण, १९९९.

३६. मनुस्मृति : टीकाकार- श्रीहरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९७९

३७. मुगलकालीन भारत : प्रताप सिंह, रिसर्च पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, १९९८.

३८. मुद्राराक्षस : विशाखदत्त, सम्पादक- डॉ० पुष्पा गुप्ता, इस्टर्न बुक लिंकर्स

३९. मेघदूतम् : महाकवि कालिदास, रमाशङ्कर त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, १९८१.

४०. रसकल्पद्रुमस्य समीक्षात्मकं सम्पादनं : ले० चतुर्भुज मिश्र, सम्पादक- डॉ० भास्कर मिश्र, इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९९१.

४१. रसगङ्गाधर : ले० पण्डितराज जगन्नाथ, व्याख्याकार-पण्डित श्री मदनमोहन झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, १९८७.

४२. रसगङ्गाधर, प्रथम भाग एवं द्वितीय भाग : पण्डितराज जगन्नाथ, व्याख्याकार-श्रीमधुसूदन शास्त्री, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वि०सं० २०२०, वि०सं० २०२६.

४३. रसगङ्गाधर एक अध्ययन : पं० थानेशचन्द्र उप्रैती, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८९.

४४. रसतरंगिणी : भानुदत्त रचित, लेखिका- उर्मिल शर्मा, परिमल पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, १९८८.

४५. वक्रोक्तिजीवितम् : राजानक कुन्तक, व्याख्याकार- श्री राधेश्याम मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सं० २०३७.

४६. व्रजयुवतिविलास महाकाव्य : कवि चन्द्रकमललोचनखङ्गराय, सम्पादक- डॉ० पतितपावनवनार्जी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९९१.

४७. विक्रमाङ्कदेवचरितम् महाकाव्यम् : महाकवि विल्हण, सम्पादक- पं० विश्वनाथशास्त्रि भरद्वाज, संस्कृत साहित्यानुसन्धान समिति, संवत् २०२० वैक्रम

४८. सरकार यदुनाथ : शिवाजी और उनका युग, मदन लाल जैन भाषा, १९६४.

४९. संस्कृत काव्य के पांच प्राण : ले० डॉ० केशव नारायण वाटवे, शब्दकार दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९९४.

५०. संस्कृत वाङ्मयकोश : (प्रथम खण्ड ग्रन्थकार, द्वितीय खण्ड- ग्रन्थ) डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर.

५१. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास : (चतुर्थखण्ड काव्य), प्रधान सम्पादक- पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय, सम्पादक- प्रो० राधावल्लभ त्रिपाठी, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, १९९७.

५२. संस्कृत साहित्य का प्रामाणिक इतिहास : डॉ० रमाशङ्कर त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी, इतिहास वाराणसी, सं० २०५२

५३. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास : डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान, इतिहास तृतीय संस्करण, १९८२.

५४. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : लेखक- पाण्डेय एवं व्यास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, २३वां संस्करण

५५. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, इतिहास वाराणसी, द्वितीय संस्करण

५६. संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा

विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण

५७. स्वराज्य-विजयः : लेखिका- पण्डितासौ० क्षमा राव, न०मा० त्रिपाठी प्रा०लि० प्रिन्सेस स्ट्रीट, मुम्बापुरी २, प्रथमावृत्तिः, १९६२

५८. साहित्यदर्पण : विश्वनाथ कविराज, सम्पादक- डॉ० सत्यव्रत सिंह, १९७९.

५९. शिवाजी और उनका युग : सरकार यदुनाथ, मदनलाल जैन भाषा, १९६४.

६०. शिशुपालवधम् : म०म०पं० शिवदत्त दधीच, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, सं० १९९८.

६१. हर्षचरित : बाणभट्ट, व्याख्याकार पं० जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९७८

६२. हर्षचरित–एक सांस्कृतिक अध्ययन : वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण, १९५३.

६३. हितोपदेश : विष्णु शर्मा, अनुवादक- ब्रजरत्न भट्टाचार्य, कल्याण, मुम्बई।

६४. क्षत्रपतिचरितम् : डॉ० उमाशङ्कर शर्मा त्रिपाठी, शिक्षा मन्त्रालय, दिल्ली, प्रथम संस्करण।

*****